प्रकाशक कविता प्रकाशन, तेलीवाडा, बीकानेर
मूल्य अस्सी रुपये मात्र
आवरण अमित भारती
संस्करण प्रथम् 1990
मुद्रक सविता प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा दिल्ली 32

Iddum (Novel) by Dr RajaNand Rs 80 00

बस इतना ही

(दृष्टि)

वतमान हमेशा अतीत को टटोलता है। यह अपनी मनोदशा या अपने मानस के अनुकूल ऐसे काल-खण्ड को छाटना चाहता है, जिसमे आशिक सादृश्यता, आदश, तथा अपनी पूणता की झलक पा सके। इस प्रवत्ति का एक कारण यह है, कि वतमान अपूणता की मनोव्यथा को झेलता होता है। वह सहारे के लिये, प्रेरणा के लिय, सास्कृतिक साहित्यिक कोपागार की तरफ उन्मुख होता है। क्योकि वही, महद् सजना के रूप मे इसकी सजीवनी सुरक्षित होती है।

ऐसा क्या इसलिए होता है, क्योकि अतीत श्रेष्ठ होता है? इस से तो यह निष्कप निकलता है कि वतमान अधागतिक होता है। यदि ऐसा मान लिया जाए तो सास्कृतिक विकासगामिता तथा मनुष्य की जययात्रा की निरतरता को बट्टे-खाते टूकना होगा।

तथ्य स्थिति यह नही है। वास्तव मे हर 'वतमान,' अपन चित्त चक्षु से अनुभवो व अनुभूतिया के जरिए, अतीत को आकता है, क्याकि वह स्वप्नवत-भविष्य को रेखाकित करना चाहता है। यह भविष्य ही ता है जो उसके परिताप की औपधि है, तथा जीवनी शक्ति का अमृत-तत्त्व। इसका अनुसधान या आविष्कार सजनात्मक ऊर्जा, तथा कल्पनात्मक क्षमता के द्वारा सम्पन्न होता है।

यह विचारणीय प्रश्न है कि राष्ट्रीय स्वतत्रता आन्दोलन की अवधि मे महात्मा गाधी ने भारतीय मानस के सामने 'रामराज्य' की सकल्पना क्या रखी? इसी आदश की प्रतिछायाए साहित्य म मिलती है। गाधी ने गीता की तुलना मे अपने सघष के लिए बौद्धदशन के शालीन, शिष्ठ कोमल, परिष्कृत शस्त्र-अहिंसा, सत्य व व्रत से उद्भूत निबध करुणा तथा प्रम चुने। लोकमान्य तिलक ने गीता का कम प्रधान जुझारु दशन, राष्ट्रीय मानस को प्रस्तुत करना चाहा, परन्तु वह कालान्तर म मात खा गया। वह दशन राष्ट्रीय मानस को स्वीकार नही हुआ। हुआ तो क्रातिकारियो को, जिनके महत्व को उपक्षित किया गया।

पिछले दशको म हमारी राष्ट्रीय मानसिकता तथा सजनात्मक चेतना

'महाभारत' जैसे महद् आख्यानमूलक, दर्शन सम्पन्न, महाकाव्य की तरफ तरह तरह मे क्या जा रही है ? हम उस मानवीय जीवन के सम विषम रूपो की छटा को अभिव्यक्त करने वाले नाट्यात्मक महद काव्य को क्या व्याख्यायित करना चाह रहे हैं ? हम क्यो लगता है कि महाभारत के चरित्रो मे हमारा ही विकल अंत, लाभ शाप तथा दिग्भ्रान्ता भुगत रहा है ? हम कुछ पाना चाह रह हैं, पर मिलत हुए भी, मिल नही पा रहा है।

स्वतन्त्रता के बाद क्रमश महत्वाकाक्षा, सत्ताकाक्षा, भोगेच्छा न राजनीति को कलुषित तथा सिद्धातहीन बना दिया। इसके सार्वत्रिक प्रभाव न मान्यताओ तथा मूल्यो को उच्छेदित कर राष्ट्र के आचरण को तार-तार कर दिया। जीवना दर्श, समाज सापेक्ष, जन मगल केन्द्रित न होकर, भोग केन्द्रित, स्वार्थ केन्द्रित तथा वैयक्तिक और ईर्ष्या उद्भूत, प्रतियोगात्मक हो गय। नतीजा यह हुआ कि व्यक्ति कर्म चक्र की तीव्रगति की लपेट म तो हो गया, पर उसका अतर, विकल, असंतुष्ट, भ्रमित, जिजीविषा चालित, लेकिन भयातुर हो गया। भोगेच्छा की अनन्त तृष्णा न उसे आत्म सयम तथा समरस सतुलन स दूर कर दिया। यानी, वह अपन स ही दूर हो गया। क्षीण सयमी को, परिस्थितिया स भय लगन लगा। उसम इच्छा तथा अस्तित्व के खोजान का आत्म-क्लेशी भय स्थायी हो गया। जसे उसने अपने वस्त्रो म स्वय आग लगा ली हो, फिर बौराया हुआ भाग रहा हो जीवनेच्छा को लिए हुए।

स्वतन्त्राप्राप्ति के बाद, मोहभग स गुजरा, अवशता तथा दिग्भ्रातता को झेलता भारतीय मनस, ठीक उस स्थिति को है, जसी स्थिति महाभारत के व्यक्ति चरित्रो की है। आदर्श, दर्शन, धर्म तथा सांस्कृतिक मूल्य-पुष्ट आचरण की रूप रेखा होत हुए भी, महाभारत का हर चरित्र अपने अस्तित्व की लडाई, अपने अह, अपनी प्यास, अपनी दिग्भ्रातता को लिये हुए लडता है। भीष्म हो या स्वय द्वैपायन सत्यवती हो या अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका, गाधारी, कुन्ती या माद्री धृतराष्ट्र हो पाडु हो, या विदुर, सब युग परिस्थिति के सघर्ष मे हैं तथा आत्म-सघर्ष म। कोई आश्वस्त ही नही है कि उसकी जीवन विधि सही है। और अध्ययन क बीच हमे यह भी स्पष्ट महसूस होता है कि एक ही व्यक्ति चरित्र कही निर्णय म सगत है कहीं उलझ गया है। बल्कि बडा दयनीय प्रतीत होता है।

इसको सक्रान्ति या सक्रमण काल कहकर सुरक्षित रास्ता नही अपनाया जा सकता। महाभारत काल हम 'महाभारत' के महद्ग्रंथ म जीवन्त मिलता है। वह हमारा अतीत होन हुए भी मानवीय जीवन क स्तरो आयामो तथा रूपो को, इतनी रंगता और सम्भावना तथा गहराइया म प्रस्तुत करता है कि अत म वह नितात नर्सगिक, मानव जीवन की शाश्वत लडाई लगता है। काल स बधे होकर, कालातीत सघर्ष की निरतरता। यदि इस आभ्यातरिक तथा बाह्य सघर्ष

के रूप म देखा जाये तो हमे हमारे युग मे प्रासगिक लगेगा। और जैसा मैंने पहले इगित किया भविष्य इसी के माध्यम से पारदर्शी हो सकता है। लेकिन झलक दीख जाना, क्या मूल सास्कृतिक धारा क अनुकूल विकसित हो जाना है? अक्षर और क्षर का पहिचान कर प्रामगिक जा न दशन व जीवन दृष्टि को पाना इतना सहज नहीं है। यह हुइ विश्लेपण की बात—शायद इसम मेरी खोज की दष्टि भी स्पष्ट हो जाय। यद्यपि मैं महाभारत' स प्रभावित हुआ, पर मैंने पूवाध कथा को इस उपन्यास 'इदम' म लिया है। व्यास इस हिस्स मे सक्षिप्त, तथा साकेतिक हैं। वह उदाहरण स्वरूप उपकथाओ या अन्य छोटी छोटी लघु आख्यानिकाए प्रयोग म लत है, परन्तु सवादा म, वह भी तक की शक्ल मे, चरित्रा की बात चीत की पुष्टि के लिये। मूल चरित्रा के चरित्र इन्हीं से साकेतिक होते हैं। पर यह चरित्र स्पष्ट आकृति तथा व्यक्तित्व नही पात है। इनको समझने व जोडने के लिये समझ तथा कल्पना का सहारा लेना पडता है। जैस अम्बा, अम्बिका अम्बालिका का हरण प्रसग। धृतराष्ट्र व पाडु की शिक्षा-दीक्षा, उनका विवाह। पाडु, जिसके चरित्र व व्यक्तित्व ने मुझे विशेषत प्रभावित किया, इतना सक्षिप्त है कि नगण्य पात्र लगता है। गाधारी व कुन्ती का चरित्र कौरवो, पाडवो के बडे होने पर जरूर गहरा होता है, परन्तु उनके विवाह के बाद पुत्रा के जन्म तक के व्यक्तित्व की रूप रेखा बिल्कुल खाके की तरह एकल रखीय है। माद्री तो छितरे प्रसग म पूण चरित्र ही नहीं ले पाती। अम्बिका तथा अम्बालिका व बिदुर की दासी मा का चरित्र नियोग आज्ञा के आज्ञा पालन के प्रसग मे दब गया है। ऐसा लगता है कि महाभारत का रचनाकार कौरवो पाडवा की कथा कहने के लिये, त्वरागति से उस हिस्से तक पहुचना चाहता है।

मैंन 'इदम्' उपन्यास को इसीलिय पूर्वाध कथा तक सीमित रखा है। पाडु पर केंद्रित होकर, उसकी मृत्यु पर उपन्यास समाप्त होता है।

इस उपन्यास क चरित्र जटिल स्थिति मे बार-बार अपन अतर मे उतरत ह, दूसरे चरित्रो से टकरात है, उसी मे उनका व्यक्तित्व स्वरूप लेता है तथा जीवन दष्टि परिपक्वता लेती है। द्वैपायन (व्यास) इस उपन्यास मे स्वय चरित्र के रूप म स्वीकार किय गये है। महाभारत के पूर्वार्द्ध मे वह लगभग केन्द्र मे है। (बाद मे समय-समय पर प्रकट होते है, पर मात्र उपदेशक की हैसियत से), अत मुझे उन्हे पात्र बनाना सगत लगा। जब पात्र बने, तो अन्य पात्रा से सबध सूत्र भी स्थापित होते ही थे।

भैरप्पा के 'पव' उपन्यास की मूल दष्टि से मैं सहमत नही हो सका। वह अपन 'महाभारत' को इतिहास तथा तत्कालीन सभ्यता के अध्ययन का प्रामाणिक दस्तावेज अवश्य बना पात ह, पर प्रश्न यह रहता है कि आय सस्कृति की मूल अतर्धारा-आतम सयम, आश्रमा की प्रधानता, ऋषियो का वचस्व, राजा-प्रजा सबध, यज्ञो की प्रधानता, मत्र शक्ति व उनस परिचालित अभिमत्रित

अस्त्र, स्वय गीता का दशन, क्या इनकी उपेक्षा की जा सकती है ? इस जीवन प्रणाली का अवदान ही हमारी साम्कृतिक दृष्टि की निरन्तरता है। आकस्मिकता ही कहिये कि 'इदम उपन्यास समाप्त करने के बाद, भूमिका लिखने समय, मुझे दुर्गा भागवत का व्यास पव' पढने को मिल गया। उसके अध्ययन, विश्लेषण और चरित्रो की व्याख्या न मुझे चकित किया, तथा आश्वस्त भी किया कि 'इदम' के चरित्र उनकी व्याख्या के रग रेशे लिए हुए ह। कदाचित यह उसी सजनात्मक विश्लेषणात्मक दृष्टि का प्रतिफलन हो जो सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य म महाभारत का व्यक्ति चरित्रो तथा उस समय के प्रभावादी दशन को समझना चाहती हो।

चार पुरुषार्थों (धम, अथ, काम, मोक्ष) म से यदि 'मोक्ष' को हम अपना विश्वास नही दे सकें—क्योकि वह जन्म-जन्मान्तर क गडबड झाले म फसाता है—तब भी धम अथ, काम म तो मनुष्य नही बच सकता। जैस उसकी प्रकृति मे सत्त्व, रजस तथा तमस नसर्गिक है। और शायद इसी वजह से मानवीय जीवन यात्रा, सासारिक मकटो के बीच अपूणताओ स होकर पूणताओ की प्राप्ति की ओर सघष करती हुई बढती है। अथ, अपूणता है, इति पूणता पर इति प्राप्त होती ही नही, उसका अश प्राप्त होता है कि आयु का पटाक्षेप हो जाता है। अथ और काम को सम्भालन वाला 'धम है। यह व्यक्ति व्यक्ति का भी होता है पर समाज तथा युग का भी। कसा हो ? यह समस्या हर काल की शाश्वत समस्या है। क्या आज की नही है ? शायद दोहरे स्तर पर इसकी झलक आपको 'इदम म मिले। अतिम बात मैं इस उपन्यास मे विश्लेष्णात्मक-सजनात्मक तथा काल्पनिक रहा हू, पर श्रद्धा के साथ। महाभारत क पात्र पूव परिचित हैं। मैं मानकर चला हू कि द्वैपायन महर्षि है, भीष्म पितामह हैं। इसलिय भीष्म की जगह, मैं भीष्म पितामह ही कहता हू, राजमाता सत्यवती भी यही सम्बोधन प्रयोग मे लेती है। इसी स मेरी दष्टि पता लग सकती है।

शेष, उपन्यास आपके समक्ष है। अगर आप इसमे महाभारत के पात्रो क साथ स्वय को भी पाने लगत है तथा 'वतमान को भी, तो मैं अपने को सफल मानूगा, क्योकि मेरी भी स्थिति यही रही है। आप ही म से तो मैं भी हू—आपसा। कला क क्षेत्र मे दावे करना अहमन्यता है, अत म नम्रता पूवक आपको इदम प्रस्तुत कर रहा हू। 'इदम' की व्याख्या मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी हुई है, सास्कृतिक परिपेक्ष्य मे भी, इसीलिये उपन्यास का नाम 'इदम्' सगत लगा।

धन्यवाद

22 मई 1989

राजानन्द

(१)

काफी बहस और धार्मिक जिरह् के बाद भीष्म अपनी दूसरी मा और राजमाता सत्यवती को इतना समझाने मे सफल हो सके कि वह समस्या पर अन्य तरह् से सोचें।

सत्यवती मा थी, जिन्ह वह पूण श्रद्धा व आदर देते थे। सत्यवती उसी घनत्व मे उनकी योग्यता, वीरता एव न्याय-बुद्धि पर विश्वास करती थी। कुरुवश का प्रशासनिक सचालन, विस्तार, उनके हाथा मे रहा। रहा, तो यश, कीर्ति, प्रसार, निरन्तर बढता गया। धम और राजनीति के वह साक्षात नवनीत थे जो अनुभव के मन्थन का परिणाम था।

छोटे भाई विचित्रवीय की क्षय रोग से असामयिक मृत्यु ने अत पुर को हिला दिया। पहले चित्रागद की मृत्यु हुई थी। उस आघात से कुरुवश नही उबरा कि विचित्रवीय कालकवलित हो गये।

भीष्म, कैसी विडबना है यह। क्या कुरुवश हमेशा उत्तराधिकार की समस्या से दुखी रहेगा? सत्यवती ने भारीमन से पूछा।

ऐसा नियम, या विधाता का लेख नही हो सकता, पर हम मानवीय अतीत मे भविष्य का अनुमान लगाने के आदी है। मृत्यु कब आये? कैसे आये? यही रहस्य तो मनुष्य का पराजय विन्दु है। सिहासननुमा चौकी पर बठे भीष्म ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

धमज्ञ भीष्म, क्या कुरुवश की सुहागिनो का यौवनावस्था मे विधवा हो जाना भी किसी रहस्य तथ्य के आधीन है?

भीष्म सत्यवती के मुख को देखने लगे। प्रौढता से आगे के चरण ने उनके चेहरे को धारिया और सिकुडनें दे दी हैं। पर उन्ह आश्चय है कि मा निष्कशमूलक धारणायें प्रश्न के रूप मे क्यो रख रही हैं!

आप जैसी विदुषी ऐसे प्रश्न क्यो कर रही है आज? मैं जानता हू विचित्रवीय की मृत्यु से आप विचलित हैं—मैं भी हू पर व्यक्तिगत हानि से उभरकर हमे राज्य के सबध म सोचना चाहिए। विषाद को तितर बितर करके

हमे अत को सगठित रखना होगा।
जानती हू भीष्म। तुम्हार लिए जो स्वभावगत है, मुझे उसको प्राप्त करने म कभी अपने को जगाना पडता है, तभी सम्बल की आवश्यकता पडती है। वह सम्बल तुम्ही रहे हो मेरे लिए।
वह सम्बल आपके साथ आज भी है, फिर इतनी कर्तव्यविमूढ कैसे हो रही हैं? भीष्म कारण जानते थे पर जब सत्यवती ने वर्णना बिदु को टटोल रहे थे।
सत्यवती ने दृष्टि उठाई और भीष्म को एकटक देखती रही—स्तब्ध। भीष्म ने वैसी दीप्त और अन्दर तक मथन करने वाली दृष्टि कभी नहीं देखी। उनका जैसा सयमी तथा निलिप्त, भावोद्वेलन महसूस कर रहा था। धर्मानुकूल समाधान तलाशने के प्रयास म तक वितक करने वाली मा, यकायक भावना और सम्मोहन की गिरफ्त मे क्या आने लगी?
राजमाता, आप इतनी एकाग्र होकर मुझे क्या देख रही हैं? क्या मेरे उत्तर से आपको आघात पहुचा है? अगर ऐसा कुछ हुआ है, तो मैं क्षमा मांगता हू। भीष्म ने नम्रता से कहा।
सत्यवती का ध्यान टूटा। वह आसन छोडकर खडी हो गई हैं। हल्की-सी पीठ का कोण लेकर,एक-दो कदम यू ही चली, फिर कक्ष की वस्तुओ को बिना प्रयोजन देखने लगी। यह प्रयास था अपने को छिपाने का।
मैं क्या समझू, मा?
मुझे मत समझो, परिस्थिति को समझो। जैसा उचित समझते हो, वह कहो। सत्यवती के शब्दो मे कठोरता थी, या हताशा आदेश था या उलझन से उपजा निवेदन, भीष्म नही पहचान सके।
सत्यवती क्षण-क्षण ऐसे कसे बदल रही है। भीष्म के लिये भी उनका व्यवहार अगाध हो रहा है जो अपना अथ नहीं जानने दे रहा।
भीष्म चुप हो गये। वातावरण भारी होता जा रहा था।
पलभर बाद शाति को स्वय न बर्दाश्त कर पाने के कारण, सत्यवती पुन भीष्म को देखते हुए बोलीं—तुमने तो फिर मझधार म पहुचा दिया हमारी नाव को।
आप तो दक्ष है नाव को खे ले जाने मे। दासराज की पुत्री का सम्बन्ध जल, नाव और मझधार पार करने से रहा है।
वह अतीत, आयु के साथ गया। समय बीत कर क्षय हो जाता है। उसकी निरतरता भ्रम है। मैं तुम से भी यही कहना चाहती थी। लेकिन तुम उसको आधार बनाये हुए हो। उसी का हवाला देकर तुमने मेरी कामना को अनुचित ठहरा दिया। यह तुम्हारी जिद है या
मा आगे के अभिप्राय को मुह से मत निकालिये मुझे कष्ट पहुचेगा। मुझे

जो कष्ट पहुचता रहा है, उस ओर कभी ध्यान गया ? मेरे पिता की, मेरे लिए सुरक्षा देखना, मुझे कितन क्रूर अपराध का उत्स बना गई इस पर चिंतन किया कभी तुमने ? भीष्म, मैं मा रही, मा हू। तुम इस कुरवश के सरक्षक होकर कर्त्तव्य के सवदनहीन काठ हो गये, तुम्ह इसकी चेतना हुई कभी ?

भीष्म को मा से इस तरह के व्यक्तित्व केन्द्रित हमले की अपेक्षा नही थी। ऐसा कभी हुआ भी नही। श्रद्धा और विश्वास क इस परस्पर सम्बन्ध मे कसे अजीब प्रश्न कर रही है राजाज्ञी !

आप शायद स्वस्थ्य नही है। मेरी सलाह है आप विचित्रवीय की हानि को दैवी निणय मानें। इतने साहस से जब अन्तिम काय पूण कर दिये, फिर अब उसके प्रभाव को रखे रहना उचित नही। यह गम्भीर समस्या है हम इस पर अन्य निपुणो की राय ले सकते हैं। मुझे आज्ञा है ? भीष्म लगभग खडे हो गये।

मैं अस्वस्थ्य नही हू, चिंतित हू। मेरी चिंता मुझे केन्द्र बना रही है, इससे मुक्त होना चाहती हू। लेकिन पुत्र, तुम भी बहुत कुछ जानते हुए अनजान बने रह कर अपनी मनवाना चाहते हो। क्या यह चातुय नही है ? यदि आज तुम विचार को स्थगित करना चाहते हो तो कर दो, पर कल भी मेरी ओर स विषय इसी बिंदू से शुरू होगा, जहा कडी रुकी है। सत्यवती न धैय दर्शाते हुए कहा। थोडी देर पहले का भाव-अतिरेक सयम मे आ चुका था। उन्होने फिर पूछा—क्या तुम्ह बुलवाना होगा, या स्वय आ जाओगे !

मैं आ जाऊगा। भीष्म ने उत्तर दिया।

हा। विचित्रवीय की मृत्यु से राजनीतिक स्थितिया के प्रति भी सतक होना होगा। खाली सिंहासन की कल्पना अधीनस्थ राजाओ को दु साहसी बना सकती है। सत्यवती राजमाता की तरह, उसी भूमिका म हो गई थी।

भीष्म के शौय को ललकारने का परिणाम राजा, उप-राजा, जानते हैं। भीष्म ने कहा।

मुझे विश्वास है, तुम्हारी आध्यात्मिकता, योग, चिंतन, नीति तथा वीरता पर विश्वास है, इसीलिए तुम पुत्र से अधिक हो मेरे लिए—आरम्भ से रहे हो। विचार और मत्रणा इसी बिन्दु मे शुरू होगी कल।

भीष्म ने उचित अभिवादन किया और अतरग कक्ष से चले आए। सत्यवती उन्हें जाता हुआ देखती रही। फिर वह उदास-सी हुई। पर जब मुडकर चली तो हल्की-सी अथभरी मुस्कान प्रकट होकर गुप्त हो गई।

(२)

सत्यवती जितना अपने को सभालन का यत्न करती उतना मन अन्दर से टूटता। दो पुत्रो की जननी होने के नाते उन्हें गव अनुभव होता था। पति शान्तनु,

की इच्छा के अनुसार वह योग्य सावित हुई थी। उन्होंने विवाह का प्रयोजन एक ही तो बताया था—पुत्र प्राप्त हो, ताकि कुरवश को उत्तराधिकारी का टोटा नही पडे। भीष्म थे, पर क्षत्रीय कुल मे एक पुत्र का होना पर्याप्त नही। युद्धो के बीच रहने वाले क्षत्रीय कुमारो का क्या विश्वास, किस समय विपक्षी के घात का शिकार हो जाये? भीष्म के बाद शान्तनु किस को राज्य सौंपते।

परन्तु सतान का होना तो विवाह का परिणाम होता। शान्तनु आकर्षित हुए थे उसके सौंदय पर।

वह चकित रह गई थी जब शख-ग्रीवा, सुन्दर, पराक्रमी राजा शान्तनु, उसके सामने खडे थे। वह पूछ रहे थे—तुम कौन हो? किसकी बेटी हो? इस वन में अकेली क्या कर रही हो?

राजसी बानक और आभूषण से सज्जित कामरूप भूपो मे श्रेष्ठ भूप को सामने पाकर वह ठिठकी थी। उत्तर बनते-बनते भी नही बन पडा था।

यमुना किनारे, नाव के पास होने से, तुम्हारे मच्छ कन्या होने का भ्रम होता है। पर तुम्हारा रूप तुम्हे राजकन्या की अधिकारिणी घोषित करता है। क्या मेरा अनुमान गलत है?

गलत नही है। मैं दासराज की बेटी हू। उनकी स्वीकृति से धर्मार्थ यात्रियो को पार उतारती हू, नाव पर बैठाकर। उत्तर देकर वह भाग आई थी।

सत्यवती को आश्चर्य था कि उसका अतीत उसे यो क्यो घेर रहा है। राजरानी के सारे सुख भोगने के बाद क्या अतप्ति जैसा कुछ शेष है उसमे?

होना चाहिए था। चित्रागद तथा विचित्रवीय के जन्म के बाद वह अहोभाग्य हुई थी। सतानो के सुख का आनन्द, मन और आत्मा मना ही रहे थे कि राजा शान्तनु यकायक स्वर्गवासी हो गये। पिता ने सुख भी नही पाया सतानो के बडा होने का। कामनाओ के बसत से पतझड आया तो लू लिये हुए। वह सभल भी नही पाई कि उद्यान उजड गया। चित्रागद पहले, बाद मे विचित्रवीय चल बसा।

सत्यवती अम्बिका के कक्ष की तरफ गई। राजमाता का आते देख दासिया और परिचारिकाए आदर मे झुकी।

अम्बिका कहा हैं?

छोटी राजरानी के यहा हैं। वह दो दिन से अस्वस्थ है। दासी ने उत्तर दिया।

मुझे सूचना क्या नही पहुचाई गई?

आपको अतिरिक्त चिंता मे डालना उचित नही समझा, अम्बिका रानी ने। उनका कहना था, विधना का सहना होगा। हम स्वय उससे निबट लें यही कुसमय की अपेक्षा है।

है, पर मैं निश्चित हो पाती तो आती क्यो? आइन्दा ध्यान रहे, सुख-दुख

की सूचना मुझे तुरन्त पहुचनी चाहिए। सत्यवती दासी को आदेश देती हुई अम्बालिका के कक्ष की तरफ चल दी।

दासियो की मौखिक चर्चा विधि से यह सदेश राजमाता के पहुचने से पहले पहुच गया कि वह दोनो बहुओ से मिलने आ रही हैं। रनिवास के अनुशासन के अनुकूल सब शिष्टाचारयुक्त था।

सत्यवती कक्ष म पहुची। अम्बिका ने खडे होकर अभिवादन किया। अम्बालिका अध चेतना मे पलग पर लेटी हुई थी। सिरहाने खडी परिचारिका हल्के-हल्के पखा झल रही थी।

राज चिकित्सक को बुलवाया था ? सत्यवती ने पूछा।

नही। विशेष व्याधि नही है। अधिक विचार करती है तब मूर्छा-सी छा जाती है। अम्बिका ने उत्तर दिया।

एकात म मत होने दो इस। कैसी चचल फुदकती हुई विहगिनी-सी थी, विरग हो गई।

सब चुप रही। वास्तविकता स्वय राजमाता की भावना का समथन कर रही थी।

सत्यवती झुकी, अम्बालिका के लम्बे, घुघराल खुले केशा पर हाथ फेरा। बेटी, बेटी अम्बालिका ! उन्होने पुकारा।

अम्बालिका तनिक-सी गति मे हुई, फिर स्थिर हो गई।

बेटी, आखें खोलो !

अबकी बार जम अधचेतना को भेदकर, सम्बोधन चेतना क्षेत्र तक पहुचा। अम्बालिका न हल्के से पलकें खोली। वह स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास कर रही थी।

अम्बिका ने योग दिया—अम्बालिका, मा आई है हमारे पास।

मा का सम्बोधन सुन सत्यवती अत स काप गई।

अम्बालिका अब तक सचेत हो गई थी। राजमाता की ओर देखा और अचानक बैठ गई।

लेटी रहो ! सत्यवती न स्नेह मे कहा। मर्यादा के साथ पद का आतक शिथिलता को छू मतर करने के लिए काफी था।

बैठिये ! अम्बालिका धीमे शब्दो म बोली।

दासी फौरन ऊची, कटावदार चौकी ले आई। सत्यवती बैठ गई।

अस्वस्थ थी, तो सदेश कहला देती, मैं राज चिकित्सक को बुलवा देती।

वैसे ही हो जाता है। अदर से मालूम नही पडता।

अपनी दशा काच मे देखी है ? कसी थी—कसी हो गइ !

अम्बालिका गदन झुकाये, चुप रही।

विपत्ति की पहाड़ राज परिवार पर टूटा है। जिस पर बस नहीं, उसे सहना तो होगा। हैं, ना! फिर हम तो क्षत्राणियाँ हैं। कोमल, कि जैसे आम की कुसुमित डालियाँ। कठोर, कि स्फटिक शिला।

अम्बिका, अम्बालिका स्तब्ध सुनती रहीं।

तुम दोनों की चहक से तुम्हारी विनवाद और हँसी-उत्सव से, अंतःपुर सदा प्राणवान रहा। क्या वह अब निर्जीव रहेगा?

अम्बालिका की आँखों से आँसू गिरने लगे, जैसे जामुन से रस की बूँद छलक चली आई हो।

नहीं, बेटी! इतना कमजोर मत करो दिल। अच्छी तरह जान सकती हो सुख का आकस्मिक तिरोहित हो जाना आत्मा को कितना सालता है। तुमने तो खिलना भी नहीं जाना कामनाओं का। रंगों और तितलियों ने पीठ दिया सौभाग्य। मैं तो तब उजड़ी जब दो बेटे सामने थे। तब, मैं भी नहीं संभाल पाई थी अपने को। विशाल कंधा और लम्बी बाँहें वाले वह देवता से सुपुत्र, सोते-जागते दीखते थे। फिर अपने को कठोर बनाना पड़ा। राज-काज, चित्रांगद, विचित्रवीर्य का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, प्रति स्थिति ही महत्वपूर्ण हो गयी। उसी में लगा लिया अपने को। अपने में से दूसरी सत्यवती को पैदा किया। तुम्हें भी करना होगा बेटी!

अम्बिका, जो अब तक अपने को साधे खड़ी थी, हूक कर रो पड़ी। यह क्या अम्बिका! राजमाता खड़ी हो गई। उसे अपने से चिपटा लिया। उसकी पीठ पर उनका हाथ ऊपर-नीचे फिरने लगा जैसे शक्ति प्रवेश करा रहा हो।

अंदर से झंझावात से घिरी सत्यवती स्तम्भ-सी दृढ़ खड़ी दोनों को साहस से स्फूर्त करना चाह रही थी।

घड़ी भर के लिए वातावरण एक-सी दशा में घिरा रहा। परस्पर की आंतरिक आत्मीयता एक-दूसरे से प्रेरित होती हुई सामर्थ्य बटोरती रही।

ऐसा ही होता है समान विपत्ति में।

घुमड़ते हुए भावों का दबाव स्फीत हुआ। सत्यवती को महसूस हुआ, वह उस अंकुश को अपने पर नहीं लगा पा रही है जो राजमाता होने के नाते उनको अपने पर रखना चाहिए। भीष्म के सामने भी वह तर्क और विवेक से हटकर भावना की सतह से बात करने लगी थी। उन्हें सन्देह हुआ, कहीं उनके और भीष्म के बीच हुई बातों का संकेत अम्बिका अम्बालिका तक तो नहीं पहुँच गया।

औरत का जीवन कितना उत्तरदायित्व पूर्ण है, लगता है ना अम्बिका? वह बोली।

अम्बिका ने गर्दन हिलाकर स्वीकृति दी पर मन ने कहा यह तो सामान्य कहावत है।

औरत, वासना, विलास और आसक्ति मात्र नही, इसके अतिरिक्त है। क्यो बेटी ? उन्होंने अम्बालिका से पूछा।

मोह और रागो का उत्सव है यह देह, मैंने इतना ही जाना है, मा। पर वह भी छिन गया। अम्बालिका ने उत्तर दिया।

चुप हो जा अम्बालिका, राजमाता की मर्यादा का ध्यान रख।

उसे भयभीत मत करो ! वह वही कह रही है जैसा उसने अनुभव किया। विचित्रवीय अनियन्त्रित आवेग था, मैं जानती थी। अभिषेक हुआ, राजा बना, पर क्या राज्य से उसे सरोकार रहा ? मेरे और भीष्म के होते हुए वह अपने को उन्मुक्त मानता रहा। तुम जैसी दो रूपसियो को पाकर उसका प्रेम मे डूबे रहना स्वाभाविक था। मैंने अतिरेक की तरफ कई बार उसे सकेत किया लेकिन वह

इसमे हम क्या करत मा ? अम्बालिका ने प्रश्न किया।

मैं क्या कर सकी, जा तुम कर पाती। कामदेव-सा दिखता था, पर युवा आयु की लापरवाही और जिद भी तो थी। तिस पर भीष्म का विशेष लाड। मैंने जब भी भीष्म स कहा—इसको समझाओ। राज-काज के काम की समस्याआ से इसकी जानकारी कराओ। भीष्म कहत—खेलने, उत्सव मनान के दिन है। मन भर लेने दो। अभी से क्या पपच मे फसाऊ।

सत्यवती चौंकी। वह फिर बहने लगी अतीत की ओर। क्या हो गया है कि वह नियन्त्रण अपनाती है, लपेट अनचाहे खुलने लगती है। जो कहना चाहती है, वह गौण होकर, प्रमुख विचित्रवीय की स्मृति हो जाती है।

वह फिर सभली और अभिप्राय का सिरा पकडा—तुम काशीराज की पुत्रिया हो। काशी, राग-विराग का तीथ है। मै मानती हू तुम दोना मे सस्कार स्वरूप प्रवृत्ति निवृत्ति दोनो है।

अम्बिका के समझ म नही आया वह क्या कह रही हैं। अम्बालिका खाली भाव-सा चेहरा लिये उन्हे देखती रही।

नही समझ में आया ना। कैसे समझाऊ, मेरी समझ म नही आ रहा है। इतना जान लो कि तुम्हे अब परिपक्व होना है। भावना की ऋतु तुम्हारे लिए शेष हो गइ। विचारवान बनो ! औरत का एक पक्ष प्रेम है। उसका दूसरा पक्ष, वश की कडी को बढाना है। मैं हारी हुई हू कि यह कैसे होगा ? इस कत्तव्य पर भी सोचना चाहिये तुम दोनो को।

हम आपके पुत्र की विधवा हैं, जो अपने वैधव्य को स्वीकार नही पा रही हैं। ऐसा हाता है क्या ? इतनी जल्दी और अकस्मिकता से ? अम्बिका बोली।

अम्बालिका की आखो से फिर आसू बहन लगे।

सत्यवती खडी हो गइ। परास्त होने की अभिव्यक्ति उसके सलवटो वाले मुख पर स्पष्ट थी—स्वीकारना तो होगा। जब दूसरा चारा न हो तो अनचाहा

अपनाना पडता है। आरोपण को स्वाभाविकता की तरह लाद लेना होता है। परिस्थिति को मिलकर नही बाटोगी तो अत पुर त्रासक तनावो का असह्य स्थल बन जायेगा। मैं हू।

जब मैं तुम्हारे साथ हू, तब हौसला रखो।

सत्यवती ने झुककर अम्बालिका के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा। अम्बिका को स्नेहपूर्ण नजर से देखा, फिर उसको हल्के से थपकी दी। वह उद्विग्न-सी चल दी। दासिया पीछे-पीछे हो ली।

(३)

मा सत्यवती ने वश निरतरता की समस्या अभी तक भीष्म के सामने रखी थी। उनका सहज सोचना था कि ऐसी विवशता मे भीष्म को अम्बिका व अम्बालिका से विवाह कर लेना चाहिये।

भीष्म ने अपनी पूव प्रतिज्ञा का ध्यान दिलाते हुए कहा—मैंने तुम्हारे कारण राज्य न अपनाने की शपथ ली थी। तुम्हारे पिता ने यह शका रखी कि कदाचित मेरी भावी पत्नी या उसकी सतान राज का दावा करने लगे। तब मैंने आजन्म ब्रह्मचय पालन की शपथ ली थी। क्षत्रीपुत्र होते अपने वचन को कैसे तोड सकता हू?

सत्यवती अभी आशा किये हुए थी कि वह भीष्म को मना लेगी, इसीलिये उसने कल पुन विचार करने के लिये बुलाया था।

भीष्म की चिंताए और भी थी। प्रात दिनचर्या से निवत्त हो, और वेद अध्ययन करने के बाद थोडी देर तक उन्होने साधना की। दूसरे दिना की अपेक्षा यह साधना अधिक समय तक करनी पडी। वह मन को स्थिर करना चाहते थे। रात भर यह उद्विग्न और अस्थिर रहा। तरह-तरह के विचार मन म आते रहे। बार-बार उन्होंने ग्रथा का सहारा लिया लेकिन अनिश्चय व अनिणय की स्थिति बनी रही।

निश्चित किये हुए समय पर उन्होने मत्रिसभा मे भाग लिया। राजाओ को राय दी कि वे अपने दूत तथा गुप्तचर दोनो को उपराज्या में भेजें और समाचार प्राप्त कर लें कि कही अवज्ञा करने की मानसिकता तो किसी की नहीं बन रही। चित्रागद की वीरगति के बाद जिस तरह हम लोगा ने सतकता बरती थी, उसी तरह अब भी बरतनी होगी।

शान्तिमय सुशासन का एक दोष यह भी होता है कि छोटी मोटी असवुद्धिया या विद्रोह गुणा के प्रसार म ढक जाते है। लेकिन क्या यही छूत की तरह नहीं फलते हैं? भीष्म, जम मन्त्रि परिपद को सजग कर रहे थे।

आपके रहते हुए किसी राजा का साहस नही हो सकता कि विद्रोह करे। मन्त्रि परिषद ने राय व्यक्त की।

इतना अविवेकी और विश्वासी मैं नही हो सकता। धम और नीति के आधार पर मित्रता तथा परस्पर गरिमा के सचार के साथ राज्यो के बीच सम्बन्ध होने चाहिये, मैं मानता हू। पर यह भी मानता हू कि राज्य विस्तार, कोप-वृद्धि की लिप्सा, किसी को भी प्रेरित कर सकती है विद्रोह करने के लिये या हम पर आक्रमण करने के लिये।

वृद्ध क्षत्रीय, भीष्म की इस तरह की उत्साह-हीन बातो पर आश्चय कर रहे थे। आत्म विश्वास के धनी भीष्म का यह कौन-सा रूप था।

पर भीष्म अपनी शकाओ के लिये पुष्टि भी सामने रख रहे थे। चित्रागद शूरवीर था। उसने अनेक राजाओ को परास्त कर, कुरु राज्य के आधीन लिया था। मैं भी उसके सरक्षक के तौर पर था, सब जानते थे। उसी के नाम-राशि गधवराज चित्रागद ने कुरराज पर हमला क्यो किया? क्यो हिरण्यवती सरस्वती के किनारे तीन वष तक उसे युद्ध करना पडा?

राजकुमार यदि चाहते तो हम गधवराज को अवश्य परास्त कर सकते थे। उनका निश्चय था कि वह अकेले उससे निबटेंगे। एक वद्ध मन्त्री ने कहा।

हा, वह अतिरिक्त उत्साही था। तप्त रक्त था। तीखा अहम था। युद्ध कला होती है बुद्धि द्वारा त्रुटिहीन आयोजन। वह सपाट बल प्रदशन मे विश्वास रखता था। उसने इसीलिये हानि उठाई। भीष्म इतना कहने के बाद सोच मे पड गये। चित्रागद के सदभ के साथ, विचित्रवीय भी उभर आया। दोना ऐसे उठ गये जैसे अधपके आम, वृक्ष से टपक गये हा।

मुख्य सैनापति को भी आना था, वह नही आये? भीष्म ने पूछा।

आपके आदेश के अनुसार उन्होंने व्यापक भर्ती अभियान चला रखा है।

सैनिको का चयन अलग-अलग प्रकार की सेना के लिये हो रहा है। पैदल, अश्वारोही, हाथियो के विशिष्ठ महावत। एक मन्त्री ने सूचना दी।

मैं चाहता हू कोप के लिये निरन्तर प्रयास किये जायें। कुरुराज आदश माना जा रहा है क्योकि हम धम के आधार पर राजनीतिक निणय लेते है। धम का आधार चरित्र है। चरित्र दृष्टि से बनता है, और दृष्टि को पुष्ट करता है। नेतृत्व यदि चरित्र-सम्पन्न नही होगा तो निश्चय ही अनुगामी, पथच्युत हो जाएगे।

तभी सूचना दी गई, ब्राह्मण एव विज्ञ पुरोहित वृद आया है। आपने उनको विचार विमश के लिये बुलाया था।

हाँ। बुलवाया था। तब भीष्म मन्त्रि परिषद से बोले—प्रसाशन और सतकता का विचार अधूरा रह गया। मैं बहुत कुछ कहना चाहता था। फिर

कहूगा पर आप सब मेरा मतव्य समझ गये होंगे। आप मुझसे भी ज्यादा आयु वाले और अनुभवी हैं। सत्य पर मैं चलना चाहता हू, आप भी चलिये। विश्वास मैंने आपको समर्पित किया है वैसी अपेक्षा आप सब से रखता हू। मुझे केन्द्र में रखकर निश्चित मत होइये, मैं इतना चाहता हू। आपकी योग्यताए, क्षमताए अनन्त है। अपने अपने उत्तरदायित्व को पूजा की तरह पूरा करिये, देश सशक्त, सयुक्त और शक्तिशाली छवि वाला होगा। आज की सभा स्थगित करें।

आपका विश्वास हम सब की प्रेरणा है। कई स्वर एक साथ निकले।

आपकी श्रद्धा मेरा बल है। भीष्म ने एक हाथ ऊपर उठा दिया। वह आर्शीर्वाद था—सभा के समाप्त होने का सकेत भी।

मत्रिगण अभिवादन करके चल दिये।

भीष्म ने गहरी सास ली और मुख्य सिहासन के पास वाले सिहासन—जिस पर बठे थे—उसकी पीठ से अपने को ठहरा दिया। शिथिल छोड दिया देह को कि अल्प विश्राम पा सके।

द्वारपाल तथा अन्य सेवक प्रतीक्षा कर रहे थे भीष्म की आज्ञा की कि वे वेदपारगत, धमग्रथ के गम्भीर अध्येयता, ऋषि एव पुरोहितो का विचाराथ प्रवेश दें।

इस अतराल म परिचारक दूध तथा फलादि सामने लाया था, जिसे लेने से उन्होने मना कर दिया। झोले नुमा एक वस्तु थी जिसमे उनकी हस्त लिखित सामग्री थी, अगाछा था तथा विशिष्ठ जडी थी।

भीष्म ने, जो वास्तव मे इस समय शान्तिमय विश्राम चाह रहे थे, अपने को चुस्त रखने के लिए जडी को मुह मे रखा और उसके रस का चमन लगे। रस जैसे ही अदर पहुचा उनकी शिथिलता दूर होने लगी।

उन्होने आज्ञा दी, ऋषियो पुरोहितो को प्रवेश दिया जाय। मत्रणा करने मे पूर्व राजा की एक मानसिक स्थिति होती है, यथा योग्य आदर-सत्कार देते हुए भी अपने को दृढ तथा कान्तियुक्त रखना। भीष्म तो स्वय तपस्या तथा विद्वता की प्रतिमूर्ति थे। पर मन कच्चा हो रहा हो तो आतरिक दृढता ढीली पड जाती है। वह प्रभाव नही रहता जो स्वाभाविक स्थिति मे दुगुना रहता है।

उन्होंने सयम को एकत्र किया और मानसिकता को सबल किया।

पुरोहित गण अपने अपने निश्चित स्थान पर बैठ गये।

भीष्म ने आमत्रित करने का कारण बताते हुए कहा—राज्य पर राजनीतिक सकट आया है। इसके साथ साथ धार्मिक बधाव भी समक्ष है। विचित्रवीय के अन्तिम काय के रूप म जो भी आवश्यक यज्ञादि करने थे, वह कर दिये गये। प्रश्न यह है कि अब उत्तराधिकारी कौन हो? सिहासन कब तक खाली रह सकता है?

आप योग्य हैं कौरव कुल के निष्कलक सूय हैं, आपको सिहासन स्वीकार

कर लेना चाहिये। वद्ध राजपुरोहित न कहा।

चित्रागद तथा विचित्रवीय के होते हुए भी आप ही राज्य काय सम्भाल रहे थे। आपकी स्वीकृति के अतिरिक्त विकल्प नही है। दूसरे पुरोहित ने कहा।

परन्तु यह विकल्प भी तो उचित विकल्प नही है। आप लोग मेरे सकल्प और शपथ को जानन हुए ऐसा सुझाव दे रहे है जो कुल के लिये कलक हो जायेगा। मेरी व्यक्तिगत छवि की शक्ति क्षीण हा जायेगी। शत्रु राजाओ को प्रचार करने का मौका मिलेगा कि कुरुवश की आध्यात्मिक राजनीति व नतिकता ढोग है।

आपद काल मे अपवाद को मानना नीति सम्मत होता है। आप के सयम, निर्लोभ और त्याग को सब जानते है—क्या कोई विश्वास करेगा कि राज्य भोग और शक्ति भोग के लिये आपने अभिषेक चाहा? एक युवा ऋत्विज ने विचार रखा।

भीष्म मुसकराये। श्रद्धावान मुनि, मैं तुम्हारी अभिव्यक्ति का आदर करता हू। युवामन की श्रद्धा प्रश्नवती बुद्धि से सलग्न होती है। प्रश्न कभी-कभी विपरीत दिशा भी ले लेते है। तब सत्य भी मिश्रित दीखने लगता है। आज जो मेरे निर्लोभ और सयम से प्रभावित है, कल मुझ पर लोभी और विलासी प्रवृत्तिया-वाला होने का आरोपण कर, मुझे लाछित करेंगे। यह प्रचार कितना घातक होगा।

मेरी आपत्ति है आपकी विचारणा पर। दूसरे वद्ध विद्वान बोले। आप स्वय ऐसे विचारो का तानावाना अपने चारो ओर बुन रहे है जो काल्पनिक है। ऐसा भय त्रस्त और शकालु व्यक्ति होता है, जो आत्मबल से क्षीण हो। आप आत्मस्थ और प्रबल बली हैं।

क्या मैं दुबल मन नही हो सकता?—भीष्म ने प्रश्न किया।

नही! किंचित नही। कई स्वर बोल उठे।

मेरा कहना यही है कि मेरे सामने ऐसा विकल्प मत रखिये जो मुझे कम-जोर करे। सत्य, सयम और न्याय मेरी आत्मा के सबल अश हैं। इन्ही की साधना मैंने की है। इन्ही ने मुझे तटस्थ तथा निर्लिप्त कमवाद सिखाया है। भीष्म इसके बिना सरक्षक और निष्पक्ष विचारक नही रह सकता। राज्य का सरक्षक होना कत्तव्यो को निर्धारित करता है— राजा होने मे अधिकार—दुर्दांत अधिकार, का दोष पैदा हो सकता है। तब कुरुराज्य का सचालन परिषदो के विचार विमश से नही होगा, अधिनायक के आदेशो के अधीन हो जायेगा।

राजपुरोहित तुरत बोले—वह दिन कुरवश के विनाश का दिन होगा।

भीष्म ने तुरत सूत्र को पकड लिया। सौहाद्र, मित्रता, सु-सामज्य की सम्पन्नता दूसरो की स्वतत्रता और गरिमा के आदर करने म है। हमारे राज्य

का विस्तार यदि शौर्य और आतंक के जरिये होता है, तो निश्चित मानिये, वह स्थाई नहीं रह सकता। आतंक में भय है, जो कभी भी विद्रोह बना सकता है। सौहार्द्र में समझ है, अपनत्व है जो दोनों पक्षों का विकसित होने और उत्थान पाने के लिये वातावरण बनाता है।

हम आपके विवेक पर निर्णय छोड़ते हैं। आप समाधान निकाल सकते हैं, हमें विश्वास है। वृद्ध पुरोहित ने कहा, जिनकी मान्यता पूरी परिषद में थी।

आपका आभारी हूं। आपद स्थिति में निश्चित तौर पर असामान्य निर्णय लेना होगा। मैं राजमाता से विचार करूंगा, वह मेरे लिये पूज्य हैं। आप सहमत हों तो आज की परामर्श सभा स्थगित करें। आवश्यकता पर पुन: बुलाऊंगा।

आप धन्य हैं! सब एक स्वर में बोले।

नहीं। मुझे विशिष्टता से बोझिल मत करिये। मैं स्वयं समाधान के बारे में स्पष्ट नहीं हूं। धर्म सम्मत और राजनीति सम्मत मर्यादित हल क्या हो,आप भी खोजने की कोशिश करियेगा। यदि सूझे तो अवश्य मुझे अवगत कराइयेगा।

धन्यवाद!

भीष्म ने हाथ जोड़ दिये। सब आशीर्वाद देते हुए प्रफुल्लित मन चले गये।

भीष्म ने गृह की तरफ प्रस्थान किया।

भोजनादि से निवृत्त होकर वह विश्राम करने के लिये लेटे। उन्हें पता था राजमाता सत्यवती के सामने आज पुन: उपस्थित होना होगा। रात भर मां की वह आकर्षक आंखें उनके सामने थमी रहीं, जिनमें अद्भुत स्नेह था। पर, सम्मोहन भी। मंत्रियों एवं आमात्यों की परिषद हो या ब्राह्मणों की परामर्श दात्री परिषद, सब एक ही सुझाव पर टिके हैं। कितनी परावलम्बता स्वीकार कर ली है कि नवीन दृष्टियों से धर्मग्रंथों को देखते ही नहीं? मुझ पर निर्णय छोड़ना क्या परिश्रम तथा उत्तरदायित्व से बचना नहीं है!

द्वन्द्व से दूर, सुरक्षित किनारे पर खड़ा होकर, दूसरे को द्वन्द्व में डालना कितना आसान है।

मैं आत्मबल सम्पन्न हूं—मान लें सब। मुझे दर्जा दे दें असामान्य मानव का। इससे क्या यह तथ्य सिद्ध हो जाता है कि मैं उन कमजोरियों से परे हूं जो किसी भी व्यक्ति में हो सकती हैं।

भीष्म कितना अन्दर से हिला हुआ है, कौन अनुमान लगा सकता है! वह दूसरों के सामने यदि दृढ़ता का व्यक्तित्व रखता है तो इसीलिये, कि उसकी निराशा या दुःख की झलक प्रकट हो गयी तो आलम्बित हतोत्साह हो जायेंगे।

मां सत्यवती कह रही थीं अम्बिका, अम्बालिका पुत्र कामा हैं, तुम विचित्रवीर्य के भ्राता हो, अतः तुम उनसे पुन: विवाह कर सकते हो।

उन्हें क्या पता इन भाइयों के खातिर कितने अवांछित दोषारोपण सुने हैं!

भीष्म उसी तरह स्थिर लेटे रहे। उनकी दृष्टि उस बीते हुए दृश्य को प्रत्यक्ष करने लगी जिसे वह विस्मृत कर चुके थे किसी कटु अनुभव की तरह।

काशीराज के आयोजित स्वयवर म उपस्थित राजाओ ने कैसे ताने कसे थे।

तीन-तीन कयाआ को वरने की कामना लेकर स्वत जटा और स्वेत दाढी-मूछो वाले भीष्म उपस्थित हुए है। ब्रह्मचय का प्रण क्या ढाग था ? कुरुवश की आध्यात्मिकता, क्या वासना और राज्येष्णा से रगा हुआ दुरगा उत्तरीय है ?

भीष्म फिर भी स्थिर लेटे रहे जसे उद्विग्नता पैदा करने वाली स्मति को दृष्टा बनकर शमित करना चाह रह हा।

अहकार मायावी स्वभाव को होता है। मन के चाचल्य से जुड जाता है। 'मैं' भोक्ता बनन को जम हर समय तत्पर रहता है।

भीष्म को अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका के स्वर सुनाई पडे—यह वद्ध भीष्म, हमारा लोभी होकर आया है। क्या आयु और वश को लजान आया है ?

जिन कयाओ ने मुझ से पीठ फेर ली स्वयवर म, उन्ही को स्वीकार करू। उनके गणित से भीष्म सात वप और बूढा हो चुका है।

भीष्म ने सायास अपने को स्मति स बाहर किया। ध्यानयोग मे प्रवेश कर, अपने पर चेतना शूयता को छाने दिया। इसी प्रयास म उह वास्तविक झपकी आ गई।

(४)

मध्याह्न के बाद जब उनकी आख खुली वह शात थे। भीष्म ने अपनी चिंतन विधि और योग को अपना तरह से अन्वेषित किया था। शास्त्रो का अध्ययन वह निरतर करत थे ताकि मूल विचारो के प्रेरण स वह वतमान के सदभ मे उनकी अनुकूलता तथा उपयोगिता जान सकें। प्रत्यक्ष को सामने रख कर शास्त्रा मे सग्रहित विवेक के प्रकाश मे सोचने से नये माग दीखते हैं। जटिलता की स्थिति म वह मन और मस्तिष्क की सक्रियता को शात करते थे। चेतना शूयता को प्रमुख कर जसे वह अतभूत प्रज्ञा को जाग्रत करते थे। यह प्रज्ञा विश्राम की स्थिति मे आकस्मिक स्वर अत को देती थी—अतर्ज्ञान, प्रज्ञा। यह स्वर हल बोलता है। समाधान देता है।

भीष्म का योग, दष्टा की स्थिति बनाये रखने का प्रयास था। राग नही, सवेदना को ऐसा सस्कार देना था, जो अनुभव का माध्यम होकर भी मन को मुक्त रखे। विवेक के वत्त मे रहे।

भीष्म को ऐसा प्रतीत हो रहा था। जैसे हल और आत्मबल दोना उनके

पास हो गये। वह अब सागर की तरह प्रशात हैं।

वह उठे। बिना किसी भत्य को बुलाए स्वय स्नानागार मे गये और ठडे जल से स्नान किया।

दासा का उनके उठने का पता लग गया। फलादि की व्यवस्था कर उपस्थित हुए।

सूचना मिली की राजमाता ने स्मरण किया है।

कौन आया था ? उन्होन पूछा।

राजमाता की विशिष्ठ सदेशवाहिका। उसको बताया कि आप विश्राम कर रहे हैं। तब वह कहकर चली गई—जागन पर सदेश कह देना।

अच्छा। भीष्म मुस्कराये जैसे मा की आतुरता को स्नेहपूण स्पश दे रहे हा।

सूय प्रखरता को छोड हल्का हो गया था जैसे कोई शिल्पी पत्थर या काष्ठ मे मूर्ति उकेरता उकेरता थक गया हो। सुबह सुबह जैसे शिल्पी ताजा, उत्साहभरा, कल्पनाशील होता है, वैसे ही शायद सूय भी होता है। वसे ही भीष्म इस समय थे जब राजमाता के पास जा रह थे। उनका अग-अग स्फूत था। मन उमग से पूण, द्वद्व मुक्त था।

पहुचकर सूचना भिजवाई राजमाता को। राजमाता ने तुरत अदर बुलवाया। अभिवादन कर भीष्म ने आसन लिया।

मैंने सदेश भिजवाया था, पता चला विश्राम कर रहे थे। सत्यवती न अपने स्थान पर बठते हुए कहा।

हा। विश्राम भी कर रहा था और साधना भी। भीष्म ने उत्तर दिया।

साधना! भीष्म, क्या साधना म अब भी कसर है ? तुमने मस्तिष्क, मन, इद्रिया सबको सस्कारित कर उसमे अद्वितीय सतुलन प्राप्त कर रखा है।

पर यह तीना अपनी मूल चचलता को छोडते कहा है। मेरी स्थिति तो बडी विडम्बनापूण है। उन सारी उत्तेजनाआ के बीच मे हू जो भोगेच्छा को घत देती हैं।

इसीलिए तो भीष्म, भीष्म ह। औरो के लिए वह वेदो को जानने वाला अजेय शासक, मेरे लिए ऐसा वर-वक्ष जिसका छतनार पल्लवन तथा छाव, दोनो जीवन सरसित करने वाल रहे हैं। सत्यवती मोहित भाव से भीष्म को देख रही थी।

मा, आप अतिशयावित कर रही हैं।

हा, श्रद्धा और विश्वास अतिशयोक्ति पर ही ठहरता है। क्या तुम इसे चाटुकारिता तो नही समझ रह हो कि मैं तुमस तुम्हारे प्रतिकूल स्वीकृति चाहती हू। सत्यवती की दष्टि म भीष्म का परिचित तेजस्विता दीखी, लेकिन वह अब

अप्रभावित थे।

आप मुझे इतना सकुचित कूतती है ? भीष्म ने दृढ दृष्टि से देखते हुए उत्तर दिया।

नही। यह मेरे स्वय के हृदय की दुविधा है। तुमने आज मत्रीपरिषद और विज्ञ पुरोहितो की सभा बुलाई थी।

हा। मैं उनस परामश चाहता था।

सत्यवती के होठा पर छेडती-सी हसी आई --परामश नही चाहते थे, अपने पक्ष के लिए सबल वातावरण बना रहे थे।

भीष्म की हसी भी नही रुक सकी--राजमाता और उसके पुत्र के बीच मे सदराजनीति तो पैंतडे नही ले रही ?

तुम्हारा उत्तर, तुम्हारे साथ सलग्न कर दू। यही, कि क्या तुम मुझे इतना सिकुडा समझते हो ? क्या मैं अपनी ममता पर से इतना विश्वास खो चुकी हू कि मान लू तुम मेरे आदेश को मानने से इन्कार कर दोगे ? सत्यवती ने गहरा सास अन्दर भरा जैसे गव अभिव्यक्त कर रही हो।

मैं जानता हू आप अनुचित आदेश नही देंगी। भीष्म ने कहा।

तुम्हारे लिए अनुचित, मेरे और प्रजा के लिए मगलकारी हो सकता हो।

दूरदर्शिता, निश्चय की कसौटी होनी चाहिए। यदि ऐसा समाधान हो जो किसी के आदर्शों की बलि न ले, और दीघकाल मे ज्यादा मगलकारी हो तो उसे अपनाना चाहिए।

अम्बिका और अम्बालिक से मैं मिली थी। भीष्म, यदि तुम उनकी दशा देखो, तो तुम भी विचलित हो जाओ। अम्बालिका सामान्य हो ही नही पा रही है। कसा भोला सौदय है, बिल्कुल कोमल हृदय। जितना हमे उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे सोचना चाहिए, उतना उनके भविष्य पर भी सोचना चाहिए।

मैंने इस समस्या पर पर्याप्त विचार किया, आपने मेरे सामने जो प्रस्ताव रखा, वह सुरक्षित हो सकता है, परन्तु कुरवश के हित मे नही हो सकता। मैंने अम्बिका और अम्बालिका को पुत्री सम माना है--क्या यह उचित होगा कि मैं उन्ह स्वीकार करू ? जिस ब्रह्मचय का मैंने प्रण किया था, सिंहासन से दूर रहने की शपथ खाई थी--उसकी सच्चाई पर रहते हुए भी मैंने इन बालिकाओ के स्वयवर म विचित्र ताने सुने थे। राजाओ ने मेरी उपस्थिति को स्वीकार नही किया था। क्रोध और आवेश म युद्ध करने का तत्पर थे। बहुतो ने वार कर दिया था। जब मैंने राजकुमारियो का विवाह यहा विचित्रवीय से किया तब उनको मेरे प्रयोजन का पता लगा। उनमे से बहुतो ने क्षमा मागने का सदेश भेजा। सोचिये, पुन वह ऐसे समाचार को सुनकर, हतविश्वास नही होग ! इसम मेरी छवि को हानि है। राजनीतिक हानि भी हो सकती है।

तब तुम जो धर्म-सम्मत समझो वही करो। लेकिन भीष्म, मेरी एक जिज्ञासा का उत्तर दे सकोगे। सत्यवती अब खडी हो गई थी। भावो का द्वद्व उनके चेहरे पर स्पष्ट हो गया था।

भीष्म ने धैयपूवक कहा—पूछिये।

मेरे पिता ने तुमसे शपथे ली। तुमने पिता के कारण और कुरुवश के हित के कारण उन शपथो को वद्ध क्षत्रियो के सामने लिया। तुमने जो त्याग किया उसका बोझ किस पर है? किसने तुम्हारे भविष्य की रेखाओ से कीलित किया?

भीष्म चुप रहे।

मैंने। और एक सत्य कटु सत्य, स्वीकारोगे? मेरे योग्य तुम थे, या तुम्हारे पिता शान्तनु?

भीष्म चौक पडे। यकायक मुह से निकल गया—मा यह पाप है। घोर पाप।

क्या? सम आयु का होना? सत्यवती के शब्द दोहरी धार लेते जा रहे थे।

भीष्म! मैंने तथ्य रखा है, यह मत समझो कि मेरी कामना वैसी थी उस समय। तुम रूपवान राजकुमार अवश्य थे, पर तुम्हारी एक के-बाद एक शपथ, मेरी श्रद्धा का विषय बन गई। उसके बाद तुमने अपने जीवन को कडे सयम, साधना और राज्यव्यवस्था मे लगा दिया। तुमने मुझे, चित्रागद, विचित्रवीर्य, को यथा सम्बन्ध अपने मन की भावना दी। मेरी ममता, तुम्हे लेकर बोझिल और अतृप्त नही रही, बल्कि अपने को अपराधी मानने लगी। वह अब भी मानती है। यह कैसे इस अभिशाप से मुक्त हो, बता सकते हो?

भीष्म, जो अब तक दृढ और आत्मबल से सयुक्त थे, यकायक इस प्रश्न से हिल उठे। वह माँ की उन बडी बडी आखो को देखने लगे जिनमे असहाय ममता छलक उठी थी। वह पल भर के लिए अपने श्वेत बाल और परिपक्व उम्र को भूल गये। राजमाता का यह कौन सा रूप था!

वह सभले। फिर दृढ हुए। मेरे पास इसका उत्तर है, राजमाता। ममता अपराधी तब होती है जब उसकी नीयत विकृत हो। वह लाभ, ईर्ष्या, या भोगेच्छा से परिचालित रही हो। आप ऐसी नही रही। मैंने स्वार्थ या कपट कभी नही पाया आपमे। इसके बाद भीष्म बोलते-चालते रुक गये। चिन्तन मे इस तरह हो गये, जैसे सदर्भ से अनुपस्थित हो गये।

सत्यवती आश्चर्यचकित उन्हे देखती रही।

भीष्म, तुम सहज नही लगते मुझे। क्या? उन्होने पूछा।

मैं विचलित था, लेकिन अब नही हू।

अनुपस्थित होकर क्या सोचने लगे थे?

यही कि क्या यह सच है कि मैं अभिशप्त हू मुझे वसिष्ठ ने श्राप दिया था कि मृत्युलोक मे रहकर आजन्म ब्रह्मचारी रहूगा। यह आपका श्राप है,

क्या यह मानू ? तब तो आपकी ममता किसी भी स्थिति की जिम्मेदार नही है।

तुम मुझे सतुष्ट करने के लिए तर्क दे रहे हो। क्या तुम विश्वास करते हो कि अभिशप्त हो ?

नही। पर मैं यही नही सोच पाता, तपस्या के साथ क्रोध क्यो ? श्राप देने की मानसिकता क्या सिद्ध शक्ति का दुरुपयोग नही है ? बात-बात मे बदला लेने के लिए श्राप बोलने वाला ऋषि, अन्तर से स्वस्थ कैसे हुआ ? मैं जीवन के माध्य से मृत्यु तक की यात्रा का समझना चाहता हू। भीष्म गम्भीर हो गये।

सत्यवती ऊब गई। उसने सोचा था आज कैसा भी निर्णय निकालने मे सफल हो जायेगी, लेकिन लगता है रुकावट हटेगी नही। उसने सकेत से परिचारिका को बुलाया ओर कहा—अम्बिका और अम्बालिका को बुलाओ कि राजमाता बुला रही है।

भीष्म के चाबुक-सा लगा। वह चौंके। उन्हे क्यो बुला रही है राजमाता ?

इसलिए कि तुम जान सको मैं किन किन पीडाओ को सहेजे बैठी हू। तुम समस्या को अपने केन्द्र स देख रहे हो भीष्म। वास्तविकता के सामने होओ बुद्धि के बदले मन सोचने लगेगा।

सत्यवती का जैसे अतिम हथियार था, जिसे उसने प्रयोग किया। हथियार लक्ष्यभेदी साबित हुआ। भीष्म फिर एक बार उद्वेग मे आए। वह आसन छोडकर खडे हो गये।

परिचारिका से कहिये लौट जाये। अम्बिका या अम्बालिका नही आयेगी यहा।

जाओ! सत्यवती ने हाथ से इशारा किया। परिचारिका चली गई।

आप स्थिर होकर अपने सिंहासन पर बैठ जाइये। मैं बहुत बडी दुविधा मे था राजमाता कि वह विधि बताऊ या न बताऊ जिससे हल तो निकल आता है परन्तु

परन्तु क्या ? सत्यवती ने सिंहासन पर ठीक से बठते हुए पूछा।

नारी की गरिमा खण्डित होती है। वह पुरुष की सम्पत्ति का दर्जा पा लेती है।

सत्यवती के चेहरे पर तीखी व्यग्यभरी मुसकराहट उभरी—भीष्म, क्या पूरे आध्यात्मशास्त्र और नीतिशास्त्र मे नारी को पुरुष की सम्पत्ति नही माना गया है ? उसे भोग्या के अलावा और कोई दर्जा मिला है ? गरिमा तब खण्डित होती है जब स्वायत्तता प्राप्त हो। क्या प्राप्त है ?

लेकिन भीष्म जैसे अब राजमाता से बात नही कर रहे थे किसी अतीत को उजागर कर रहे थे।

राजमाता, पूर्वकाल मे जमदग्नि पुत्र परशुराम ने हैहय देश के राजा

कातवीर्याजुन की विकट शक्ति को नष्ट किया था, क्योकि हैहय पति प्रजा का त्रासक बन गया था। उस क्षत्री राज के कारण परशुराम ने जितने क्षत्रियराज थ उन सब पर हमला किया। उन पर विजय प्राप्त की। पर महासहार का प्रभाव चतुर्मुख होता है। आर्थिक विपन्नता, धम की हानि, कृषि व व्यापार का नष्ट होना। उससे ज्यादा एक हानि एसी होती है जो पूर्ति नही पाती। युद्ध म पुरुष मरते है—स्त्रिया विधवा होती हैं, बच्चे अनाथ होन है। उस काल म क्षत्रियो की असख्य पत्निया विधवा हुइ। भटक गइ। क्या भटक रह हा भीष्म पूवकाल म। जाओ, मैं पुन कह रही हू विश्राम करो। छाड दो उन दो विधवाओ को उनक भाग्य पर! इन्ही की बहिन अम्बा न जब शाल्व राज से नकार जाने पर तुमसे कहा था—तुम मुझे स्वीकार करो, तुम स्वयवर से हरण कर लाये थे। उस समय भी तुम निरुत्तर हुए थे।

मुझे जो सुझाव देना है उसे सुन लीजिए, उसके बाद निणय आपके हाथ मे होगा। परशुराम द्वारा क्षत्रियो के सहार के बाद उनकी विधवाओ के लिए एक छूट दी गई। वेदो के पारगत ब्राह्मणो के ससग से सतानोत्पत्ति हो सकती थी। सतान उस नारी के पति की मानी जाती थी, क्योकि वह उसका क्षेत्र थी। दीघतमा ने राजा बलि की पत्नी सुदेष्णा को सतान दी। किन्ही श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वारा अम्बालिका, अम्बिका सतान प्राप्त कर सकती है। भीष्म, हुआ होगा ऐसा। धम सम्मत भी होगा। लेकिन लेकिन मैं सोच नही सकती कि अम्बिका, अम्बालिका कैसे स्वीकृति देंगी। अभी विचित्रवीय की स्मतिया उनसे जुडी हुई हैं। सत्यवती इस सम्भावना को पचा नही सकी। वही पूवव्यग्य फिर उनके चेहरे पर प्रकट हुआ। लेकिन वह चुप रही।

मैं अब चलू। आप चाहे तो विन पुरोहितो को बुलाकर उनकी राय ले लें। हम इस तरह से सिहासन का उत्तराधिकारी पा सकेंग।

मैं सोचूगी। ब्राह्मणो से भी स्वीकृति लेनी होगी। राजमाता गम्भीरता म हो गई। भीष्म को अनुमान लग गया, इस नकली गम्भीरता के पष्ठ मे हलचल युक्त नारी मन है।

फिर भीष्म ने देखा राजमाता के चेहरे पर यकायक उदासी छा गई। वह धुधली-सी होने लगी।

मैं जा रहा हू मा। शायद अब मुझे आने की आवश्यकता नही होगी। भीष्म जाने को मुडे।

भीष्म, मैं इस समय सोचने की स्थिति मे नही रही हू। धार्मिक स्वीकृति, धार्मिक परम्परा, यद्यपि समाज को नीति और व्यवस्था देती हैं—लेकिन वह व्यक्ति की इच्छा की गुजाइश रखती है। अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग व्यक्ति करता है कभी बलि चढकर, कभी विद्रोही बनकर। तुम्हारी आवश्यकता मुझे

पड़ेगी। अंतिम निणय तुम्हारी स्वीकृति के साथ होगा।

भीष्म अभिवादन कर चलने लगे। सत्यवती उनके साथ चलने को खडी हुई।

आप आराम करिये। भीष्म ने कहा।

सध्या हो आई है। मैं उद्यान में घूमने जाऊगी।

कक्ष से निकलते ही परिचारिकाए साथ हो ली। सत्यवती उद्यान की तरफ चली गई जबकि भीष्म सीधे मुख्य द्वार की तरफ जा रहे थे।

झुटपुटा अधेरा धीरे धीरे घिर आया, जब तक भीष्म अपने आश्रम-तुल्य महल पर आए।

(५)

सफेद चिट्टे वस्त्र में अम्बिका कमलिनी-सी, अप्सरा के समान युवा सहेलियो के बीच खेल रही थी। वृक्षा की हरियाली के बीच महल का यह वह भाग था जहा हिरन, मोर, विभिन्न प्रकार के पक्षी मुक्त वास करते थे। एक प्राकृतिक झील थी जिसमे विहार के लिए छोटी नावें थी।

नाव तयार है, रानीजी चलेंगी? दासी ने पूछा।

अम्बिका हिरन के बच्चे को गोदी मे लिए उसके चिकने रोओ पर हाथ फेर रही थी। उसकी थुथनी को उगलियो से घेरकर उसकी गोल आखो से अपनी आखो को चचल कर रही थी। वह मग्न थी।

नाव तैयार है, रानी जी। दासी ने फिर दोहराया।

कितना प्यारा है! कैसी परिचित दृष्टि से देख रहा है।

आपकी सुन्दरता पर रीझ रहा है। दासी ने कहा।

हुश। यह क्या रीझेगा। कौतूहल मे है कि हिरनी और रानी की गोद की गरमास एक-सी! गरमास तो लाड प्यार की है। चपत मारकर देखिये, कुलबुला उठेगा छुटकारे के लिए। दासी ने हसकर कहा।

अम्बिका ने अपनी सीपी सी आख उठाई, बोली—अरी, तू तो बडी अकल मदी की बात करती है।

मेरा चम्पू भी ऐसा करता है। मैं सुग्गे से बात करती हू, वह होड मे घुटनो चलकर आता है सहारे से खडा होकर छोटी छोटी उगलिया मुह पर रख देता है। उससे बात करू, सुग्गे से नही।

हा! हा। अम्बिका ने उत्साह मे हिरन के बच्चे का थुथना चूम लिया।

चलिये, नाव तैयार है। अभी ठडी हवा चल रही है। धूप निकल आई फिर घूम नही पायेंगी।

अम्बालिका का इन्तजार कर रही थी। वह आई नही।

वह कभी की आ गईं। दूसरी तरफ भ्रमण कर रही हैं।

भ्रमण कर रही है! मुझे बताया नही?

उनको बुलाने, दूसरी दासी गई है।

चलो। अम्बिका ने शावक को छोड दिया। वह कुलाचे भरता भाग गया। तब दूसरी दासी आई—छोटी रानी कह रही हैं, वह झील नही जायेंगी।

क्या नही जाएगी ? चलो मैं चलती हू।

दासिया के साथ वह उस स्थान पर पहुची जहा अम्बालिका घूम रही थी। अम्बालिका के हाथ मे हरी टहनी थी जिस पर पीले फूल के गुच्छे खिले थे।

मैं तेरा इन्तजार कर रही थी, तू यहा घूम रही है।

इधर निकल आई—चिडिया का कलरव भला लगा था।

चल, नाव तैयार है। झील मे घूम आयें।

अब समय कहा है। सूरज ऊपर आ गया है। अम्बालिका बोली।

बादल भी तो हैं। धूप तेज नही होगी। ज्यादा नही, थोडी देर घूम लेंगे।

जी नही है।

जी बनाने से बनता है। चल ! अम्बिका ने अम्बालिका का हाथ पकड लिया।

अभी एक घटना हुई है अम्बिका। मैं उस पेड के सहारे खडी, मुह उठाए, रग बिरगी चिडियाओ का डाल डाल उडना देख रही थी। मैं एकाग्र थी कि पैरों की उगलियो मे सुरसुराहट सी हुई। दूसरी तरफ देखा तो सफेद और भूरे चकत्तो का एक खरगोश उगलिया चाट रहा था। बडा सुन्दर था। बिना हिले-डुले उसे देखती रही। उसका स्पर्श जो गुदगुदी कर रहा था उस पर सयम ले रही थी। फिर मुझसे रहा नही गया। मैं झुकी उसे पकडने, वह झाडी की तरफ दौडा। मैं पहुची वहा। वह बिल से मुह निकाले हुए था। मैंने हाथ डाला झाडी म, वह अन्दर घुस गया। यह फूलो की डाली टूट गई। देख कैसी सुन्दर है। अम्बालिका ने वह डाली अम्बिका को दी।

हा, सुन्दर है। चल। अम्बिका ने डाली गिराते हुए कहा।

गिराती क्यो हो ? उसने झुककर दोबारा उठा लिया।

देर मत कर। उसने बाह मे बाह फसा ली और अम्बालिका को लेकर झील की तरफ चल दी। नवका विहार म यद्यपि कई डागिया साथ थी और हर डागी से चुहल तथा अठखेलियो की आवाज आ रही थी, पर अम्बालिका जैसे ध्यान मे कही और उलझी हुई थी। वह जल के विस्तार को देख रही थी।

देख, बगुला एक टाग समेटे कैसी गर्दन घुमा रहा है। अम्बिका ने इशारा करके दिखाया। मछली की ताक मे है। मछली देखते ही चोच डुबो देगा पानी मे। फिर मछली छटपटाती रहेगी।

तू क्या छटपटा रही है ? हस कर ! यह उदासी मन को किसी योग्य नहीं छोडेगी अम्बालिका। अम्बिका रोक नही पाई अपने को।

झूठी हसी स अपने को धोखा देकर बहलाने से क्या फायदा। अन्दर सूनापन हो तो राग कैसे बने ? अम्बालिका ने हाथ की डाल को पानी की तरफ झुका

दिया। डाल नाव की गति के साथ पानी को काटने लगी।
मैं तुझसे हार गई।
या अपने से ?
अपने को भुलाना चाहती हू, तेरी उदासी वैसा भी नही करने देती।
सच्चाई से पलायन, सच्चाई को हटा तो नही देता। तुम्हे पता नही कि हमारी भावनाओ के बजाय किस बात की चिंता की जा रही है ?
पता है।
फिर भी विद्रोह नही जागता ?
नही।
क्यो ?
अम्बा ने किया तो क्या पाया ? शाल्वराज के पास यहा से गई, उसने भी स्वीकार नही किया। प्रेम और वचन से ज्यादा पराजय का अह। क्योकि भीष्म पितामह से हार गया था, इसलिए भेजे जाने पर भी नही अपनाया।
और राजमाता उन्ही भीष्म से आग्रह कर रही हैं कि वह हमे अपनायें। हम उत्तराधिकारी दें। तुम सहन कर सकोगी ? अम्बालिका ने अब अम्बिका को प्रश्नवती दृष्टि से देखा। उसके हाथ की डाल यकायक छूट गई और जल की सतह पर पीछे रह गई।
अभी पितामह धर्म और प्रतिज्ञा की दुहाई दे रहे है।
कल वह बाध्य भी किये जा सकते है। हम क्या है ? पिंजडे मे पडी मना। यही है रानी होने की सजा।
तू चाहती क्या है ? अम्बिका ने पूछा।
अपनी तरह से जीना। धर्म के नाम पर बलि चढना नही चाहती। इच्छा के विरुद्ध किसी भी सुझाव को स्वीकार नही करूगी, चाहे
धीरे से बोल। राजमाता से किसी ने कह दिया अम्बिका भयभीत हो गई।
मैं स्वय कहूगी अगर उन्होने बाध्य किया।
चुप हो जा। मुझे नही पता था तू इस तरह का विद्रोह पाल रही है। तू अपने को सकट मे डालेगी, मुझे भी।
तुम स्वीकार कर लेना हर निर्णय, मैं तुम्हे रोकूगी नही। लेकिन नही चाहूगी तुम बडी बहन का दबाव देकर मुझे बाध्य करो। अम्बालिका ने इस तरह निर्णय सुना दिया, जैसे सब वह पहले से सोचे हुए हो।
अम्बिका की सारी खुशी हवा हो गई। दोनो के बीच मे जसे विषय बिखर कर छितर गया। अम्बालिका का जल के विस्तार को देखते हुए अपने मे हो गई। अब अम्बिका भी स्तब्ध थी। उस थोडी दर बाद ध्यान आया। उसने नाव से रही दासी को सम्बोधित कर कहा—हमारी बातें तुम्ही तक रहें, याद रखना।

पहली बार स देह क्यो रानी जी ? दासी ने प्रश्न किया।
मै स्वय भयभीत हो गई हू। अम्बिका ने स्वीकार किया।
अम्बालिका मात्र मुस्करा कर रह गई।
नवका विहार म जस विपयय भाव घुल गया।

(६)

समय टलता रहा। जितनी साधारण तथा सहज हल-युक्त समस्या लग रही थी, उतनी जटिल हो गई थी। अपनी अपनी इच्छाओ और अह को लेकर सब स्थितिया लिए हुए थे। राजमहल का अत पुर खासा तनाव युक्त था। मर्यादाओ के पालन की सतह के नीचे अनोखी हलचल थी। गुप्तचर दासिया अपनी स्वमिनो की भली बनन के लिए हा रह विचारा का सचारित करती रहती थी। प्रजा तथा दूरदराज के राज्यो मे इस बात की चर्चा बढन लगी थी कि कुरुवश सकट म आ गया है। मित्र राज्य चिंतित थे, वरी राज्य प्रसन्न। लकिन अभी भी भीष्म की अद्वितीय वीरता का दवदवा स्थिर था। उनके जीते रहते किसी का साहस नही था कि कल्पना म भी राज्य को अव्यवस्थित करन की बात सके।

भीष्म को सिंहासन स्वीकार कर लेना चाहिये मत्रियो की एसी राय थी, जिसे व चचा म अभिव्यक्त करत थे।

किन्हीं पुरोहितो के सदेश वाहक, द्वैपायन ऋषि व्यास के आश्रम पहुच चुके थे कुरुवश सकट पर राय लेने। सूचना मिली थी, व्यास पवतो की ओर साधना करने गये हैं। आशा की क्षीण किरण भी ओझल हो गई थी।

सत्यवती को भी सुझाया गया कि ऐसी रुकावट की स्थिति म, व्यास ही उचित तथा धर्मानुकूल सुझाव दे सकत ह।

सत्यवती निजी सकट म पड गई थी। एक रहस्यमय अतीत विस्मति की तहो को भेदता हुआ चेतना क्षेत्र म प्रकट हो गया था। वह रहस्य उसका था और गुप्त था। क्या मर्यादा को किनारे रख भीष्म को वह सत्य बताना होगा जिसे उसने स्वय भयानक स्वप्न की तरह भूलना चाहा? राजरानी स राजमाता की यात्रा पूरी करने के बाद आज प्रौढावस्था म उसे वह स्वीकार करना पडेगा जो उसके कौमय भग की दुघटना से सम्बोधित है? भीष्म उस घटना को किस रूप मे समझेंगे? जिस श्रद्धा और मातृ भक्ति से आज वह मुझे दखते हैं, उस दृष्टि मे गिरावट तो नही आयेगी?

क्या सुरक्षित नही होगा कि मैं उन पर निणय छोड दू, वह किसी श्रेष्ठ ऋषि को आमन्त्रित कर लें जो अम्बिका और अम्बालिका को सन्तानवती

करे।

सत्यवती स्वय मे उलझी किसी निर्णय पर नही पहुच पा रही थी। सुर-सुराहट के रूप मे उसके पास यह सूचना भी आ चुकी थी कि अम्बालिका बहुत अन्यमनस्क रहती है। आयु म छोटी होने के कारण वह अम्बिका की अपेक्षा तीव्र आवेश वाली तथा जिद्दी है, इसका भी उसे पता था।

सत्यवती के मानस मे उन क्षणो की भयभीत स्थिति सजीव हो उठती थी जब वह महर्षि पराशर को नाव मे अकेली यमुना पार करवा रही थी और पराशर का गात हो अनियन्त्रित हो गये थे।

सत्यवती कितनी ही रात्रि उनमनी व अनिर्णीत, उहापोह की झझा मे फसी रही। फिर यकायक, अपना ही अतिक्रमण कर, इस निश्चय पर पहुच गई कि वह भीष्म को सब कुछ बताकर अपनी इच्छा प्रकट कर देगी। श्रेष्ठ ब्राह्मण का ही प्रश्न है, तब अपने रक्त को महत्त्व क्या नही दिया जाये।

अब वह दढ थी। एक प्रात उन्होंने भीष्म के पास सदश भिजवा दिया — राजमाता ने स्मरण किया है, वह आवश्यक मत्रणा करना चाहती हैं।

भीष्म तत्काल उपस्थित हो गये। सत्यवती न दासिया और परिचारिकाओ को हटा दिया। कक्ष मे मात्र वह और भीष्म थे।

मेरे बुलाने का मतव्य समझ गय होगे। उन्होने स्थान लेत हुए कहा।

अनुमान है। भीष्म ने उत्तर दिया।

पुरोहित परिषद और प्रजा मे जिस प्रकार की चर्चाए हो रही है, वह भी तुम तक पहुच रही होगी।

ऐसी स्थिति मे अनुकूल प्रतिकूल चर्चाए होती है। पर मैं जानता हू अभी किसी का साहस नही है जो कुरु राज्य की तरफ टेढी दृष्टि रखे।

तुम्हारे रहत ऐसा नही हो सकता, मैं आश्वस्त हू। लेकिन उत्तराधिकार की समस्या को अनिश्चित नही रखा जा सकता।

राजमाता सही सोचती ह। मैंने उपाय बताया था, आपने स्वीकार नही किया।

तुम्हारे उपाय को गुप्त रखा जायेगा या विद्वान ब्राह्मणो की परिषद से स्वीकृति लेनी होगी? सत्यवती ने भोलेपन से पूछा।

भीष्म राजमाता का चेहरा देखने लग। बोले, अनभिज्ञता की बात कर रही हैं राजमाता! गुप्त रखे जाने पर होने वाली सतान जारज मानी जायेगी और अम्बिका, अम्बालिका दुश्चारिणी। स्वीकृति लेनी होगी, और यह भी सिद्ध करना होगा कि ऐसा पूव मे होता आया है। यह आपद स्थिति का विकल्प है, न कि धार्मिक छूट।

भीष्म, तुम धमज्ञ और वेदो के ज्ञाता हो। मैं तुम्हारे सामन एक कथा का

उदाहरण रखती हू। चाहूगी तुम निणय दो कि वह चरित्रहीन हुई या सत्यवती रही।

यमुना के किनारे एक मत्स्य-कन्या आने वाले यात्रियो को धर्मार्थ डोगी म पार उतारा करती थी। एक बार एक ऋषि तीर्थयात्रा करते हुए यमुना तीर आये और उस कन्या से यमुना नदी पार करवाने के लिए कहा। कन्या ने तेजस्वी ऋषि को पार करवाना अपना सौभाग्य समझा। जब नाव बीच धारा म थी तब उसने पाया कि ऋषि कामोत्तेजना स अवश हो रहे है। कन्या भयभीत थी, ऋषि बाध्य कर रहे थ कि वह सहप समपण कर दे। उसके कौमाय की चिन्ता ऋषि को नही थी। ऋषि के तेज का प्रभाव, रुष्ट होने पर शाप दिये जाने का डर, उस कन्या को हतोत्साह कर चुका था। ऋषि ने उस मत्स्य-गधा कन्या को सुगधित किया और उसके साथ ससग किया। उसके गभ रहा, जिसे उसने यमुना के बीच एक द्वीप म रहकर परिपक्वता दी और पुत्र को जन्म दिया। पर यह उसने गुप्त रखा। पुत्र को द्वीप पर छोड दिया। क्या वह कन्या दुराचारिणी हुई जिसके साथ

वह कन्या बाद म महाराजा शान्तनु की रानी और देवव्रत को भीष्म बनाने वाली हुई। भीष्म तुरन्त बोले। राजमाता, एसा प्रश्न पूछकर क्या परखना चाहती है?

राजमाता आश्चय से भीष्म को देखने लगी। भीष्म पूणत शान्त थे। उनका चेहरा हमेशा की तरह शान्त और दैदिप्यमान था।

आश्चय हटा तो सम्मोहन सत्यवती की आखो म तैर आया। वह अपनी उलझन मे जाने किस किस प्रतिक्रिया की कल्पना किए हुए थी। पर भीष्म की प्रतिक्रिया मयमी ऋषि की प्रतिक्रिया थी।

भीष्म, तुम अतर्यामी हो? उन्होने पूछा।

नही! पर यथाशक्ति प्रयत्न करता आया हू कि मन स्थिर और निर्लीप्त रह। विवक, पक्षो से परे होकर न्याय सम्मत रह सके। ब्रह्मचय यही तो है। मोहो और तृष्णाओ स ऊपर उठना। मेरा व्रत कुरु वश का सरक्षण है।

सत्यवती, जो कुछ क्षणो पूव अपने को नि शब्द-सी पा रही थी, बोली—मैं दुविधा म थी कि पुत्र के सामने मुझे अपने विवाह के पहले की दुघटना को स्वीकार करते समय लज्जित होना पडेगा। लकिन

राजमाता मुख्य बात वह जिसके लिए बुलाया है। भीष्म जैसे सत्यवती को प्रोत्साहित कर रहे थ। अपेक्षित प्रभाव पडा और सत्यवती बोली।

वह पुत्र जिसे मैंने द्वीप पर छोडा था कृष्ण द्वैपायन है। वदो क ममज्ञ, परिचित ऋषि। मर गभ स जन्मे होन क कारण वह भी तुम्हार तथा विचित्र वीय क भाई हुए। उनस योग्य और श्रेष्ठ रक्त वाला ब्राह्मण कौन हो सकता

है। कदाचित मेरे आग्रह से वह अम्बिका तथा अम्बालिका को संतान प्रदान करने के लिए राजी हो जायें।

यह उत्तमतर होगा। द्वैपायन की प्रतिष्ठा अद्वितीय है। उन्हें निमंत्रण भेज कर सादर बुलवाना चाहिये। परंतु सूचना है कि वह तपस्या के लिए हिम-प्रदेश की तरफ गये हुए हैं। भीष्म ने कहा।

क्या तुम्हें भी यह सूचना है? सत्यवती के लिए फिर आश्चर्य था।

राजमाता, राज्य संरक्षण का उत्तरदायित्व प्रपंचों से परिपूर्ण होता है। सतर्कता के साथ बहुमुखी और तीक्ष्ण दर्शी होना होता है। फिर अभी तो हम असामान्य स्थिति से गुजर रहे हैं। असामान्य सावधानी रखनी ही होगी। भीष्म ने मुस्कराते हुए कहा।

तुमने मेरे प्रस्ताव से सहमति दिखायी, मेरा एक बोझ हल्का हुआ। मैं चाहती थी कि यदि नियोग अनिवार्य हो गया है तो वंश के अनुकूल प्रतिष्ठावान ब्राह्मण उपलब्ध हो। रक्त की पवित्रता बच सके तो और अच्छा हो। पर अभी भी समस्या इतनी सहज प्रतीत नहीं होती। सत्यवती के मुख पर फिर चिंता छा गयी।

क्या द्वैपायन हमारे निवेदन को स्वीकार नहीं करेंगे? आपको संदेह है! भीष्म ने पूछा।

मैं आश्वस्त हूं, उन्हें मना लूंगी। पर धर्म की इस व्यवस्था को अम्बिका और अम्बालिका स्वीकार कर लें, यह संदिग्ध है।

क्यों? क्या वे संतान प्राप्ति नहीं चाहतीं। कुलवंश और राजाज्ञा का पालन करना उनकी बाध्यता है। हम अपने मन और इच्छा में इतने स्वतंत्र नहीं हो सकते कि मर्यादाओं की अवहेलना करें। मैं जानता हूं काशीराज की पुत्रियां उच्छृंखल और स्वतंत्र प्रकृति की हैं। मैं भी उनके व्यंग्य और ओर उद्दंडता को सह चुका हूं। पर स्वतंत्रता, उतनी ही सभ्य हो सकती है जितनी हानि न करे। भीष्म यकायक कठोर हो गये। आप उनको समझाने-बुझाने का प्रयास करिये। उनकी मानसिकता अनुकूल बनाने का यत्न करिये। पुरोहित परिषद की आज्ञा की अवहेलना दण्डनीय हो सकती है।

राजमाता भीष्म के इस आवेश के लिए तैयार नहीं थी। वह स्वयं हक्की-बक्की रह गई। भीष्म क्षण भर में शांत हो गये। शायद अपने आवेश के औचित्य का ध्यान उन्हें हो आया। सामान्य होते हुए बोले—आप राजमाता हैं। मुझे विश्वास है अंतःपुर से ऐसी कोई समस्या नहीं उठेगी जो हमारी परेशानियां बढ़ाये। मुझे आज्ञा है।

हां! मैंने इस मंत्रणा को नितांत गुप्त रखा है। द्वैपायन के लौटने तक प्रतीक्षा करनी होगी। भीष्म, मुझे कह लेने दो कि मैं तुम पर अत्यधिक, मानसिक,

नैतिक, हर रूप से आधारित है, अपनी सहमति असहमति के बावजूद। सत्यवती लगभग भावुक हो उठी थी ,

भीष्म ने झुककर मां को अभिवादन किया और आज्ञा लेकर प्रस्थान किया।

(७)

हिम पात के आरम्भ की सम्भावना के साथ महर्षि द्वैपायन अपने आश्रम में आये। सरस्वती नदी के पास उनका रम्य आश्रम था जो कुंजों और हरित वृक्षों के कारण दूर से अपनी छटा दिखाता था। वेदपाठी ब्रह्मचारी एवं अनेक मुनि इस प्रसिद्ध आश्रम में अध्ययन करने आते थे। स्थान-स्थान पर यज्ञशालाएं बनी थी। प्रातः स्नानादि के बाद मंत्रोच्चारण आरम्भ होता था। हवन सामग्री की सुगंध से चारों तरफ का वातावरण गंध युक्त हो जाता था जो अध्ययन एवं साधना के लिए मन मस्तिष्क को ग्राहक बनाता था।

कृष्ण द्वैपायन का आश्रम साधारण साधना गृह या गुरुकुल नहीं था, बल्कि वह वैदिक विद्या के अध्ययन का प्रसिद्ध केन्द्र था। इस 'चरण' में वेद, ब्राह्मण, सूत्र आदि का वैज्ञानिक अध्ययन-अध्यापन चल रहा था। पैल, ऋग्वेद का, जैमिनी, सामवेद का, वैशम्पायन, यजुर्वेद का तथा सुमन्त, अथर्ववेद का विशेष तौर पर अध्ययन कर रहे थे।

पराशर पुत्र द्वैपायन के आश्रम में आते ही व्यवस्था पहले से अधिक चुस्त हो गई उनका कृषकाय शरीर श्याम रंग, तप तथा गूढ़ अध्ययन के कारण गाम्भीर्य और तेजस्विता से चमकता चेहरा, ब्रह्मचारियों को प्रेरित करता था। हिम प्रदेश से लौटकर आश्रम आने की सूचना दूर-दूर के राजाओं तक पहुंच जाती थी। दर्शनार्थियों और आशीर्वाद की कामना करने वालों का तांता लग जाता था।

रात्रि ने अपने दो रूपों का वैभव एक साथ दिखाया था। आश्रम के आचार्यों एवं ब्रह्मचारियों को यज्ञ शालाओं, पशु शालाओं तथा अन्न भंडारों को रात में अपनी कुटिया से निकलकर देखने जाना पड़ता था—सब सुरक्षित तथा व्यवस्थित हैं। द्वैपायन स्वयं पशुशाला की तरफ आये थे।

प्रकृति अपने ऋतु चक्र को किस सूक्ष्मता से सम्पन्न करती चलती है इसका आभास तब होता है जब चर अचर उसके प्रभाव को महसूस करते हैं—जितना उन्मुक्त और प्रशान्त वातावरण उतनी प्रखर ग्राह्यता।

मध्य रात्रि में द्वैपायन की आंख खुल गई। अभी भी मानसिकता पर पर्वतीय जलवायु उसके सौंदर्य का वैभव छाया हुआ था। तपस्या के क्रम में अंतर्लीन मन कभी कभी निद्रा में भी समाधि-सा ऐश्वर्य उत्पन्न कर देता था। पूरी की पूरी सृष्टि प्रकट हो जाती थी, जिस पर किसी तेजस्वी शून्य से प्रकाश बरसता सा प्रतीत होता था। द्वैपायन निद्रा में इसी ऐश्वर्य को तटस्थ अस्तित्व की इकाई

वने देख रहे थे—सृष्टि भी थी, तजस्वी शून्य भी था, उनकी प्रतिछाया दष्टा-वली भी। पूरा परिदश्य स्वप्न म था। तभी उन्होने देखा भयङ्कर हिमपात प्रारम्भ हुआ। उनक देखत-देखते पवतीय प्रदेश, उसकी ऊची-नीची चोटिया, श्वेत हिम से ढक गइ। उन्ह प्रतीत हुआ, वह स्वय आधे हिम मे धस गये। हिम की पत बढती गई। गदन तक आ गई। दृष्टि उस शून्य को खोज रही थी जिसका प्रकाश दिख रहा था। परन्तु, वह प्रकाश बिन्दु ओझल हो गया था। हिमपात बढता गया। उन्ही क्षणा मे उनकी आख खुल गई।

स्वप्न और यथार्थ के बीच कुछ पलो के लिए वह इस तरह लेटे रहे जैसे अधचेतना की अनुभूति म कोई देहधारी, आकाश और धरती के बीच उड रहा हो—बल्कि तैर रहा हो। तब वह पूण स्थिति-भग म आये। उठे। उस दीप को देखन लग जो अब भी अपनी मध्यम ज्योति मे जल रहा था। लौ स्थिर थी।

वह उठे, कुटिया से बाहर आये। आकाश की तरफ देखा जिस पर इधर उधर तारे छिटके थे। वह और खुले स्थान पर पहुचे। दखा घटा का गहरापन उपस्थित था।

निद्रा, स्वप्न, चेतना, प्रकाश बिन्दु। कुटी मे जलती अकम्प दीप शिखा। बाहर, छिटके तारे। बढती हुई कलामय घटा।

कैसा मिश्रित है सब। जितना अत म उतना बाह्य प्रकृति मे।

उनके देखते-देखत घटा का विस्तार बढा। निश्चित वृष्टि होगी। हिमपात नही—वृष्टि। वह मुस्कराये।

तभी बौछारें प्रारम्भ हुइ।

आश्रम म हलचल मची। द्वैपायन स्वय पशु शाला की तरफ गये।

बौछारें रुकी नही। रुकी, तब पौ फट चुकी थी।

आश्रम की नित्य क्रिया शुरु हो गई।

वक्ष, कुज नहाकर हल्की वायु म जसे मौन ध्यान कर रहे थे। विभिन्न वण और आकृति के पक्षी चहचहा कर मनोच्चार सा कर रहे थे।

सरस्वती का प्रवहमान जल कल कल कर रहा था।

तट पर ब्रह्मचारिया के यूथ दनिक अध्ययन के लिये प्रतिदिन की तरह तैयारी का उपक्रम कर रहे थे।

(८)

उद्यान के कुजा और वक्षो पर फूल बौर, फल, भर आए थे। अरण्य के वक्षा म हरियाली यू गछ गई थी जस वृक्षा के वश से बाहर हो रही हो। खेतो म फसल लहलहा रही थी। चरागाह हरी दूब से सम्पन्न थे जिनम ढेर के ढेर

पशु विचरत दिखाई देते थे। पक्षी, जगली पशु, उतने ही प्रसन्न थे जितने कृषक। ऋतु राज उत्साही दातार की तरह रग गध बगरा रह थे। कोयल कुहुक कुहुक पचम स्वर अलापती थी। हिरन, रीछ, लोमडी, हाथी, सिंह अरण्य मे मुक्त हो घूमते थे। वृक्षा पर मरकट और लगूर दिन भर कूद-फाद करते थे।

नगर मे राग रग का विशेष वातावरण था। मन का उल्लास उत्सवो तथा विलास मे प्रकट होता था। शक्ति का समय हो, राज्य युद्ध मे न फसा हो, और ऋतु का उद्दीपन हो, तब प्रकृति और मनुष्य दोना उस सस्कृति के नजदीक हो जाते हैं, जो स्वत स्फूर्त होती है—फिर न वर्ण भेद रहता है, न स्तर भेद। मदिर के घण्टे घडियाल, नगाडे, यज्ञशालाओ के मन्त्रोच्चार, हाटो का मेलो-सा भराव, सब वाद्य-वृन्द के समवेत वादन का प्रेरण देते हैं।

सूय डूब चुका था, पर आकाश मे लाली शेष थी। अम्बिका और अम्बालिका प्रासाद के भाग मे उस स्थान पर घूम रही थी जहा से नीचे उद्यान दीख रहा था, दूर का अरण्य दीख रहा था, तथा आकाश की ललासी। नगर की इमारतें और मन्दिर, खिलौना के विस्तार से लग रहे थे। गाया के झुड दिन भर चरकर घरो को लौट रह थे जो सफेद चलते बिन्दुओ से लग रह थे। दासिया इधर उधर छितरी हुई स्वय दृश्य का आनन्द ले रही थी तथा रानियो की उपस्थिति मे रहने का कत्तव्य भी पूरा कर रही थी। अम्बालिका, यद्यपि श्वेत वस्त्र पहन थी, पर उसका सिर खुला था। काले घने घुघराले बाल उन्मुक्त हो हवा के झाको से लहरा रह थे। अम्बिका ने हल्के रग का वस्त्र पहन रखा था। उसके जूडे मे कमल का फूल खुसा हुआ था। दोना के चेहरे पर दृश्य की प्रति छाया सौदय के रूप मे छलक रही थी।

अम्बालिका ने आकाश की तरफ देखत हुए कहा—देखो! पक्षी कसे पक्तिया के आकार बदल-बदल कर उडते चल जा रहे हैं, मौन।

अम्बिका खिलखिला कर हस पडी— वह मौन नही है गा रहे हे। सुनाई नही देता।

अम्बालिका फिर बोली— दूर के अरण्य के वृक्ष कैसे चित्रवत दीख रहे है।

अम्बिका ने उत्तर दिया—वो चित्रवत नही है, निकट जाकर देखो, पात पात हिल रहा होगा। पक्षी गुजायमान कर रहे हागे पूरे वन को।

अम्बालिका न नगर की तरफ देखत हुए कहा—देखो, नगर जैसे गूगा पडा है।

अम्बिका तुरन्त बोली—भ्रम है। वह गतियो और कोलाहल से पूर्ण है। तू इस स्थान स देखकर कह रही है।

अम्बालिका की हसन की बारी अब थी। वह हसत हुए बोली—तुझे स्थिरता और हलचल की पहिचान है?

क्यो ? क्या मैं दृष्टिहीन हू ? या अनुमान नही कर सकती ?

मैंने समझा तू अनुभव से परे काठ हो गई है। या शायद ऐसा हो कि

कैसा हो कि । अम्बिका बीच म बोली। तू मुझ से जानकर छेडखानी करती है। मैं सहज मे उत्तर दे रही थी।

तू बडी है, भला मैं क्या छेडखानी करने लगी।

तूने नही की। बचपन म मुझस झगडती थी। बडी हुई, तो होड करती थी। मैं बीच की थी, बडी का रौब सहना होता था, छोटी की जिद।

बडी तो गई काम मे। न इधर की रही, न उधर की।

अम्बा अब ईर्ष्या और बदले की भावना से ग्रस्त अपने जीवन को अभिशप्त बनाये हुए है।

तुम्हारी दृष्टि स। उसने अपन जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लिया है। वह चाहे पितामह से बदला लेने का ही हो। तेरा क्या लक्ष्य है? मेरे जीवन का क्या उद्देश्य है? अम्बालिका ने प्रश्न किया।

मुझे बहस नही करनी। तू तो छाल की भी छाल निकालती है।

भ्रम से उबरते जाना, छला से बाहर निकलना, क्या बेहतर नही है?

निकलते नही है। एक भ्रम को छोडते है, दूसरे को अपनाते है। अम्बिका ने कहा।

उस चौकी पर बैठ जायें। अम्बालिका ने पत्थर की चौडी चौकी की तरफ सकेत किया।

नही ! तू बहस करके कही-की-कही पहुचेगी। सुहाने समय के आनन्द को खुले मन से स्वीकार कर। उसे सोख कि वह

नकली आनन्द का अन्दर विस्तार कर दे ! मूल वेदना को ढक दे ! अम्बालिका ने कटाक्ष किया।

मैं नही जानती मूल वदना या कृत्रिम वेदना, मूल आनन्द या नकली आनन्द। अम्बिका ने बात को टालने के लिए कहा।

जानने की कोशिश भी नही करेगी ?

नही। बल्कि जब जब यह जिज्ञासा जागी, मैंने सायास उसको दबाया।

तभी तेरे मे किसी तरह की विकलता नही होती अम्बालिका जसे अपने पहुचे हुए निष्कर्ष की स्वीकृति पा, मुस्कराई।

मैं पत्थर नही हू, मैंने अपने को बनाया है। जैसी परिस्थिति हो उसक अनुसार ढलने की आदत अर्जित की है। मैं मझली थी न। इसके मतलब यह नही कि मुझे विकलता नही होती या मेरा मन कामनाओ से रिक्त है।

कामनाओ को मारना कैसे होता है ? अम्बालिका के मुख का भाव उत्तर का आकाक्षी हो उठा।

तू नहीं जान पायगी। न जाने तो अच्छा है। तू अम्बालिका रह। जसी अब तक रही है।

तुम कोई गहरी बात कहना चाहती हो—छिपा रही हो। मैं जानना चाहती हू। अम्बालिका आग्रही हो गई।

देख, वह लाली भी धीरे धीरे झुटपुटे म घुल रही है। चल अपने-अपने कक्ष म चलें। अम्बिका ने टालना चाहा।

ऐसा नहीं होगा। तुम्हें बताना होगा। उसने अम्बिका का हाथ पकड लिया, उसकी दृष्टि के सम्मुख अपनी तीक्ष्ण दृष्टि ठहरा दी।

क्षणभर के लिये अम्बिका को लगा जसे अम्बालिका आठ वर्ष की बच्ची हो गई है—वह भी, उम्र म घटकर बारह वर्ष की हो गई है। अम्बालिका नटखट सी उसका हाथ पकडे किसी बात के लिये जिद कर रही है। वह छुडाने का प्रयास कर रही है अम्बालिका पैर पटक पटककर कह रही है—नहीं छोडूगी। बताओ! बताओ!!

अम्बिका मोहित-सी उसे निर्वाक देखती रही।

क्या देख रही हो? अम्बालिका ने पूछा।

हू। कुछ नहीं। वह चौंकी।

एक टक क्या देख रही हो?

मेरा हाथ तो छोड। वह बुदबुदाई।

नहीं छोडूगी। तुम मुझ से छल कर रही हो।

अम्बिका उसी रौ मे कह गई—तू निरी बच्ची है—नटखट। उसके होठों पर मुस्कराहट थी। इन क्षणो म, उस पल की झलक ने अम्बिका की सारी घुटन को हलका कर दिया।

चल, नीचे चलें। मेरी नन्ही बहिन है ना। बता दूगी। आज मेरे पास सो जाना ठीक है।

अम्बिका की इच्छा हुई वह अम्बालिका को अपने म चिपटा ले। पर उसने ऐसा नहीं किया। दोनो बडी हो गई थी। समय और परिस्थितियो ने बहुत कुछ चाहा-अनचाहा दोनो म इकट्ठा कर दिया था।

रात्रि की वेला। अम्बिका का कक्ष। कई दिये जलते हुए कक्ष म मध्यम प्रकाश कर रहे थे। एक ही शय्या पर दोनो बैठी थी। जाने कहा-कहा की बातें कर चुकी थी, पर अभी भी जमे जी भरा नहीं था।

तू थक गई है। लेट जा अम्बालिका।

थकी नहीं हू। सतुष्ट हुई हू। पर तृप्त नहीं। तुमने अतीत, वर्तमान को याद करा काफी एसा खोला जिस तरफ मैंने कभी ध्यान नहीं दिया। मैं मानती हू, मैं तुम्हारी तरह सतर्क नहीं हू। पर मैं भी तो किन्हीं अंश म अपनी दृष्टि स

सही रही।

तू है। पर भावनाओ और सहजताओ को भी अकुश मे रखना होता है। हम स्त्री है, और राजमहल की रानिया है, जहा लाड-प्यार के साथ राजनीति भी होती है। मर्यादा के नाम पर दलिया चढा दी जाती है। अम्बिका कह रही थी।

असहायता को मैंने अपने ऊपर लादना स्वीकार नही किया। चाहती भी नही। वरना मै क्या रहूगी? मेरा अस्तित्व क्या रहेगा? अम्बालिका कह रही थी।

हमारा आधा अस्तित्व तो उसी दिन समाप्त हो गया जब हमारे पति, सिंहासन के स्वामी, की मृत्यु हुई। वह राजा थे। उनकी स्वेच्छा के आगे राजमाता और भीष्म पितामह को भी किसी सीमा तक समझौता करना पडता था। अब, हमारी आयु और कामनाओ का बहाना लेकर उत्तराधिकारी को पाने की अहम आवश्यकता की पूर्ति की जानी है। आपद धर्म की घोषणा कर, पितामह जैसे के सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि वह हमारे पति बने। क्या मैंने या तूने इस भावना से पितामह को देखा कभी?

वह पिता तुल्य रहे है मेरी दृष्टि मे। इसीलिए मैंने कहा था

अम्बिका ने बीच मे टोका—कहा नही था, तू ने मुझ से प्रश्न किया था, क्या तुम मे विद्रोह नही जागता? धर्म और नीति और राजनीति शाश्वत रेखाए नही खीचती, वह बदल दी जाती हैं। कभी वह न्याय करती है कभी पातक अन्याय। तब व्यक्ति तुच्छ होता है, उसकी स्वतन्त्र इच्छा नगण्य। अम्बा, जीवित उदाहरण है। शाल्व ने क्षत्रीय धर्म का समक्ष क्या रखा? क्या अम्बा का प्रेम और साहसिकता उस धर्म से बडा धर्म नही था। पितामह ने वहा से ठुकराये जाने पर क्यो नही स्वीकार किया? क्या उसका भविष्य इस धर्म से छोटा था जिसका हवाला दिया गया?

तुम अम्बा का उदाहरण बार-बार क्या देती हो? अम्बालिका जैसे इस उपदेश को गले नही उतार पा रही थी। अम्बालिका! मैं इसलिए उसका उदाहरण देता हू कि उसकी दुर्दशा मुझे सालती है। वह भी हमारी बहिन है। तू नाराज नही होगी तब मैं बताऊगी उस प्रश्न का उत्तर जो तू मुझसे पूछने की जिद कर रही थी। मुझे विश्वास दिला, इसे भी परिस्थिति का परिणाम भर मानेगी। अपनी बडी बहिन को गलत नही समझेगी।

सच्चाई को मैं गलत नही समझती। अम्बालिका ने दृढता से जवाब दिया।

'मैं को भी अलग रखकर सुनाऊगी, तब मेरी बात समझोगी। महाराजा विचित्रवीर्य सुदर थे, युवा थे साक्षात इद्र थे। मैंने, तूने, दोनो ने उन्हे मन मे

स्वीकार किया है। वह हम म इतन केंद्रित हो गये कि भोग के अतिरिक्त उनको किसी बात की परवाह नहीं रही। पर फिर भी मेरा था। तू, छोटी थी, किशोर चचलताओ म भरी थी। वह तुम पर अधिक केंद्रित हुए। जाने अनजाने म मेरी उपेक्षा भी की। क्या मुझे उस समय विरक्तता नहीं होती थी? क्या मुझे उस समय तृष्णा नहीं होती थी जब म उन्ह अपने पास चाहती थी, पर वह कई रात कहि निरतर, तेरे पास होते थे? पर मैंने तुझे हमेशा छोटा माना और तेरी तृप्ति स अपने को सतुष्ट कर अपने पर नियत्रण लगाती रही। फिर उस भोग की अति हुई, फिर भी मैंने तुझे नहीं टोका। अत म वह रुग्ण हुए। क्षय ग्रस्त हुए। तब भी मैं अपने पर सयम रखती गई, इस दृष्टि से कि तू मेरे कह को ईर्ष्या न समझ। अपने को काबू करना और मारना, मैंने तभी स सीखा।

तुमने यह अच्छा किया? मैं अगर परिणामो से अनभिज्ञ थी तन-मन की आकाक्षाओ म बह रही थी, तब क्या तुम्हे मुझे टोकना नहीं था? अम्बालिका तुरत बोली।

वह समय, वह बहाव, ऐसा नहीं था जिसे टोका जा सकता था। अम्बिका ने उत्तर दिया।

देह की आकाक्षाए और आग्रह आज भी मेरे साथ। इतनी स्वतत्रता और तृप्ति के बाद, मुझम थोप जाने वाले निर्णय के प्रति विद्रोह जागता है। अम्बिका ने कहा। अबोध मे हुए तुम्हारे प्रति अन्याय को मैं अपराध नहीं मानूगी कि पश्चाताप मे पड जाऊँ। पर यह भी कैसे हो कि किसी को भी अपनी देह से खेलने दू जो मेरे मन को न रुचे? महाराजा विचित्रवीर्य की स्मृतिया मुझम इतनी सजीव हैं कि देह का कण-कण उनमे रागित हो उठता है।

मेरा भी होता है, पर अम्बिका चुप हो गई, जैसे यकायक किसी ने टाके लगा दिये हो जबान पर।

अम्बालिका की आतरिक सबलता पानी-पानी हो गई। वह झुकी और अम्बिका के कधे पर टिक गई। अम्बिका उसकी देह, उसके सिर पर हाथ फेरती रही। उसकी बडी-बडी आखें जलार्द्र हो उठी। पर वह अपने प्रति बेहद कठोर निर्मम हो गई। किसी भी तरह की भावना को उसने छूट नहीं दी कि वह उसको निशक्त कर दे।

(६)

प्रात की सुनहरी धूप विस्तृत प्रकृति को उजागर कर रही थी। बडे क्षेत्र फल मे फैला आश्रम सक्रिय था। हवन तथा प्रार्थना का दैनिक कार्यक्रम हो चुका था। अलग अलग स्थानो पर वृक्षो के नीचे, आचार्यों के निर्देशन म अध्ययन चल

रहा था। व्यवस्था के अनुसार हुए काय विभाजन के अनुकूल, हर विभाग मे काय हो रहा था। कृष्ण द्वैपायन अपनी कुटीर के मुख्य कक्ष म बैठे थे। जिज्ञासु आचाय किसी भी विषय पर चर्चा करन आ सकत थे, ऐसा क्रम निश्चित था। उनके जाने के वाद द्वैपायन स्वय अध्ययन मे रत हो जाते।

पैल अभी अभी ऋग्वेद के किसी जटिल अश पर द्वैपायन की व्याख्या का लाभ उठाकर गए थे। सुमन्त भी उपस्थित हुए थे। द्वैपायन ने इच्छा अभिव्यक्त की थी कि वह चिंतन के आदान प्रदान का सामूहिक सत्र लेना चाहते हैं, जिसमे पैल, जैमिनि, वैशम्पायन तथा सुमन्त चारा उपस्थित हो। उन्होने अपनी धारणा को स्पष्ट किया था—वेद, पुराण, सहिता, शाश्वत आधार होते हुए भी निरतर चिंतन तथा शोध की अपेक्षा रखते है। आध्यात्म का आधार इस सृष्टि का चिंतन है, जो अनन्त रहस्या से परिपूर्ण है। रहस्य उदघाटन ही तो शोध है। जड-चेतन, कीट, पशु, प्राणी, मनुष्य और उनके समूहना से निर्मित व्यवस्था के अत व वाह्य सम्बन्ध, परिवतनशील है। अत, चिंतन विवेचन, इन सबको केन्द्र में [illegible] कर किया जाना चाहिये। द्वैपायन की जिज्ञासाए, उनका प्रश्नाकुल मस्तिष्क, प्रेरक विधि थी, जिसे वह अभिव्यक्त कर आचार्यों तथा शिक्षार्थियों की [illegible] प्रखर रखत थे।

एक वृद्ध ऋषि ने आकर सूचना दी—हस्तिनापुर से अमात्य व [illegible] हैं जो आपसे साक्षात्कार चाहते है।

कव आये ? द्वैपायन ने पूछा।

अलख भोर मे रथ आय थे। हमने अतिथि ग्रह म [illegible] कर दी। वह स्नानादि करके तैयार हैं आपके दशन के लिए।

उन्हे बुला लाओ। द्वैपायन ने स्वीकृति दी।

वृद्ध ऋषि लौट गये।

द्वैपायन को पूण सूचना प्राप्त थी कि [illegible] कुरु राज्य इस समय सकट की स्थिति में है। [illegible] अमात्यो व ब्राह्मणो के आने का क्या प्रयाजन [illegible] ही विश्लेषक मस्तिष्क सक्रिय हो गया और [illegible]। वह मौन मुस्कराये।

वृद्ध ऋषि आगन्तुका को ल [illegible]

प्रवेश करत ही सबन [illegible] वदि दिया। हिम प्रदेश से [illegible] रहे थे। आमात्य न कहा।

हा, मुझे यहा आकर [illegible]

महर्षि, हम राजमाता [illegible]

पुर आने की प्रार्थना करें। राजमाता का विशेष आग्रह है। आमात्य ने सदेश से अवगत किया। राजपुरोहित बोले—महर्षि, राज्य परिषद तथा ब्राह्मणों की परिषद, पर्याप्त विचार चुकी है परन्तु किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकी। राजनीतिक व धार्मिक सकट दोनों उपस्थित हैं।

प्रजा भी चिंतित है तथा हितैषी राज-महाराजे भी। इस परिस्थिति में आपकी अनुकम्पा ही उबार सकती है। आपकी सगत राय अकाट्य होगी। आपका निर्णय लोक-मान्य होगा।

द्वैपायन ने गर्दन हिलाई। उनका बाया हस्त श्वेत दाढ़ी पर गया। उस पर कई बार फिरा।

वह बोले नहीं, बल्कि जैसे दूर कहीं देखने लगे। क्षण भर के लिए आखें मूद ली।

आगन्तुक शांत रहे। क्षणों का यह अंतराल, उनके लिए कल्प के समान हो गया। सबका मस्तिष्क अपनी अपनी तरह से सोच रहा था—'हा' या 'ना'।

थोडी देर बाद द्वैपायन ने पुन आख खोली।

कब चलना होगा? उन्होंने पूछा।

रथों की व्यवस्था करके लाये है। हमसे कहा गया है कि हम शीघ्रातिशीघ्र लौटें। यदि आपको असुविधा होगी तो राजमाता और भीष्म पितामह स्वयं आयेंगे। कृष्ण द्वैपायन निर्भाव-से बोले—उनके यहा आने से प्रयोजन पूरा नहीं होगा। मुझे जाना होगा। सबने एक साथ गर्दन को झुकाकर आभार व्यंजित करते हुए प्रणाम किया।

आज आप लोग आश्रम और निकट क्षेत्र का अवलोकन करें। हमारी ज्योतिष शाला तथा औषधिशाला का भी अवलोकन करिये। हमारे विद्वान प्रभारी व विद्यार्थी कितने मनोयोग से शोध कार्य कर रहे है, इसकी भी जानकारी प्राप्त करें। धर्मानुशासित कर्म, आत्मानुशासित, सर्व-मंगलकारी जीवन दृष्टि से ही सम्पन्नता प्राप्त करता है। अन्याय व अनाचार को दूर कर, हम पृथ्वी को स्वर्गतुल्य बना सकते है। क्या कल प्रात चलना उचित होगा?

अमात्य ने आदरपूर्वक उत्तर दिया—वही समय उचित होगा।

हम भोर वेला में तैयार मिलेंगे। द्वैपायन ने निर्णय देकर जैसे संकेत कर दिया, बात समाप्त हो गई, अब आप जा सकते है।

सबने उठकर पुन प्रणाम किया और बाहर चले गए। कृष्ण द्वैपायन अब उठे और आश्रम के अन्य कार्यों का निरीक्षण करने निकल पड़े। वह किसी भी समूह की तरफ जाते और वहा चल रहे अध्ययन कार्य को देखते। आवश्यकता होती, प्रश्न करते। सम्वाद को अधिक रसपूर्ण तथा उत्तेजक बना देते। शिष्यों की तर्कशक्ति और शास्त्रीय योग्यता की थाह, वह वार्तालाप के जरिय

जान लेत।

वे पशुशाला, औषधिशाला, आहारशाला आदि मे गये। वहा की व्यवस्था वालो से वार्तालाप कर समस्याओ को जाना। कुटिया मे रहने वाली परिवार की महिलाए उन्ह देखकर प्रणाम करती। वह आशीर्वाद देते हुए आगे बढ जाते।

यह क्रम रोज का था। द्वपायन को नही पता था हस्तिनापुर जाकर उन्ह कितना समय लगे। अत उन्होने सम्बधित ऋषियो को अपने जाने के कार्यक्रम से अवगत करा दिया।

(१०)

महर्षि द्वैपायन के आने की सूचना हस्तिनापुर पहुच गई थी। नगर निवासियो ने उनके स्वागत म स्थान स्थान पर विशेष व्यवस्था की थी। स्त्रिया और पुरुष महर्षि के दशन के लिए उत्सुक थे। वैश्यो ने निकट ग्रामो से आने वाले दशनार्थियो के लिए ठहरने व भोजन की व्यवस्था की थी। राजमहल की ओर से उनके उचित सम्मान के लिए भव्य आयोजन रखा गया था। प्रजा मे यह तथ्य स्पष्ट था कि कृष्ण द्वैपायन आमात्यो और ब्राह्मण तथा पुरोहितो की परिषद मे विशिष्ट परामशदाता की तरह भाग लेंगे तथा उनका निणय सवमान्य होगा। ब्रह्मर्षि की व्यवस्था धमसम्मत व हितकारिणी होगी।

रथो का समूह जस ही नगर सीमा तक पहुचा मुख्य पथो पर उत्साह की लहर दौड गई। सीमा पर भीष्म पितामह तथा अन्य मान्य सदस्य, वद्ध-अधेड ऋषि व पुरोहित, अगवानी करन के लिए उपस्थित थे।

स्याम गात पर गेरुआ उत्तरीय, गले मे रुद्राक्ष की माला, चौडे माथे पर चन्दन की रेखाए श्वेत जटा तथा दाढी मे द्वैपायन तेज युक्त लग रहे थे। मुख्य पथो पर चलत हुए पुष्प वर्षा व जय जयकार के बीच वह प्रशान्त, स्थिर, बठे थे। मात्र दक्षिण हस्त आशीर्वाद के लिए आधी ऊचाई तक उठता था।

कई स्थानो पर रथ रोक कर शख तथा घडियाल की ध्वनि के बीच माल्यापण किया गया। पूजन व वदन हुआ।

प्रजा के लम्बे अतराल के बाद पितामह व अन्य राजाओ तथा ऋषियो को देखा। अहो भाग्य की भावना सबके चेहरो पर स्पष्ट थी।

धीरे-धीरे शोभा-यात्रा महल के मुख्य द्वार तक पहुची। वहा भी स्वागत के लिए पूण व्यवस्था थी।

महारानी सत्यवती ने इच्छा प्रकट की थी कि द्वैपायन के ठहराने की व्यवस्था उनके महल म की जाए। वैसा ही किया गया था।

रथ जब अत पुर मे पहुचा तो राजमाता स्वागत करने के लिए उपस्थित

थी। दासी ने माला, अक्षत तथा चदन का थाल राजमाता के आगे बढ़ाया। राजमाता ने रथ से उतर आए द्वैपायन के गले म माला डाली। चदन का तिलक लगाने को उठे हुए उनके हाथ काप रहे थे। वह भरी आखो से द्वैपायन के तेजस्वी मुख को देख रही थी। उन्होने जैसे ही अक्षत छिटके, कृष्ण द्वैपायन ने झुककर उनके चरण स्पर्श कर लिए।

वह सम्पूर्ण काप गइ। पर अतर से अपने को सम्भाले रखा। भीष्म पितामह की गर्दन ब्रह्मर्षि की शालीनता को देख, आदर मे झुक गई।

अन्य उपस्थित लोगो के लिए तथा परिचारको व दासियो के लिए कवि श्रेष्ठ का यह व्यवहार अबूझ पहेली थी।

पर व्यवहार उदात्त था जो गरिमा को और गरिमा दे गया।

कृष्ण द्वैपायन को उनके विश्राम स्थल की ओर ले जाया गया।

(११)

द्वैपायन के दिन के भोजन की व्यवस्था राजमाता सत्यवती के कक्ष मे थी। प्रात के नित्य कर्मादि तथा ध्यान के बाद द्वैपायन दर्शनार्थियो को उपलब्ध थे। पितामह भी द्वैपायन की उपस्थिति म थे। दर्शनार्थियो म विशिष्ट आमात्य व वदज्ञ ब्राह्मण एव ऋषियो को दर्शन की अनुमति थी। आध्यात्म तथा ज्ञान की चर्चा के अतिरिक्त कुरु राज्य की समस्याओ को भी दोहराया गया। द्वैपायन धैर्य से, सगत व सक्षिप्त उत्तर देकर प्रश्नार्थियों को सतुष्ट कर देते थे। उनका समाधान जिज्ञासुओ को सतुष्ट कर देता था।

एकात पाकर द्वैपायन ने भीष्म पितामह से पूछा—आप स्वय ज्ञानी और साधक हैं, इस आपद स्थिति मे क्या सोचते हैं?

पितामह ने स्पष्ट उत्तर दिया—महर्षि, मैं शुद्ध साधक नहीं हू। मेरी परिस्थितिया, मेरे कर्त्तव्य, इतने गृहीत करने वाले है कि निर्विकार तथा तटस्थ हो नही पाता। धर्म सम्मत रह सकू यही पर्याप्त है।

कम से हम भी मुक्त नही है। आश्रम के प्रपच हमे भी साधारण धरातल पर रहने को बाध्य करते है। व्यवस्था से लेकर अनुदान व राज्य अनुकम्पाओ के यत्न करने पडते हैं। आश्रमो म आपस म भी होड विद्यमान है।

पर सबका आधार ज्ञान की श्रेष्ठता है। राज्यो को सरक्षण म रखने के लिए, उन सब युक्तियो का प्रयोग करना पडता है जो भौतिक लालसाओ की वृद्धि करती है। कभी-कभी विचार आता है यह सब क्या? किस हेतु? क्या मेरा जीवन दो नावो म पर रखे रहने के लिए अभिशप्त था? यश और प्रतिष्ठा एक महत्त्वाकाक्षी अजर तृष्णा ही तो है। भीष्म ने द्वैपायन से दृष्टि मिलाते हुए कहा।

द्वैपायन ने तुरन्त उत्तर दिया यह कठिनतर परीक्षा है पितामह। जल मे रहकर यद्यपि सूखे नही रहा जा सकता, पर आकंठ डूबने से बचे रहना, यह अद्वितीय आत्मनियन्त्रण की अपेक्षा रखता है।

धर्म और कर्त्तव्य टकराते क्यो है महर्षि? पितामह ने पूछा जैसे उनमे कोई अविजित अकुलता घूर्णन कर रही थी।

क्योकि दोनो व्यक्तिपरक होते हुए सम्बन्धपरक है। यह टकराव हितो की पूर्ति का है। और सीमाओ का। पितामह आपकी जिज्ञासा किन्ही वेदनाओ से उत्पन्न प्रतीत होती है। भीष्म पितामह जैसे परिपक्व आयु तथा अनुभव वाले सकलवीर की दुविधालु स्थिति आश्चर्य मे डाल रही है। द्वैपायन ने आसन परिवर्तित करके पीठ को सहारा दिया।

हा, महर्षि, मैं अपनी द्वन्द्वात्मक स्थिति का समाधान आप से चाह रहा था। मैंने निवेदन किया था, मैं कभी कभी अपने को जाल मे फसा पाता हू। न्यायसगत होते हुए भी लगता है अपराधी हो गया हू। तब धर्म और कर्त्तव्य, अधर्म तथा कर्त्तव्यहनन लगते है। राजमाता सत्यवती की अपेक्षाओ को पूरा न कर पाने से उनकी ममता का उपेक्षक पाता हू अपने को। अम्बा, जसी अपरिपक्व कन्या ने मेरे धर्म को चुनौती दे दी। मैं यह नही समझ सका, मैंने उसके साथ न्याय किया या अन्याय। सूचना है कि वह क्षुब्ध होकर भार्गव परशुराम के पास गई है। वह सकल्पित है, प्रतिबोध लेने के लिए। पितामह एक रौ मे कह गये।

और भी उलझन हैं? कृष्ण द्वैपायन ने प्रश्न किया।

मुख्य यही हैं महर्षि, जो मेरा अन्तद्वन्द्व बनकर मुझे कमजोर बनाती है।

सम्बन्ध दो तरफा होता है न इसी तरह से धर्म और कर्त्तव्य भी। राजमाता सत्यवती का ममत्व कही आहत होता है तो वह उनका अतिरेक मोह भी तो हो सकता है। उन्हे अधिकार है उसे रखने का, पर तुम्हे भी तो अधिकार है अपने अनुसार निर्णय लेने का। अम्बा का भविष्य अधकारमय हो गया, क्या उसका रोष असगत है? जिस धर्म के अनुसार उसने तुम्हे चुनौती दी थी स्वीकार करने की, वह भी सगत था। यही तो टकराहट होती है धर्म की। दोनो ठीक होते हुए भी एक-दूसरे को दोषी मानते है। दूसरे की दृष्टि को दोष की तरह आरोपित करना, अपने को अपराधी पाना है, जबकि यह गलत है। तुम अपने स्थान पर सगत हो। बिल्कुल धर्मानुकूल। इस पर विचार करना। द्वैपायन कहकर चुप हो गये।

पितामह भी मौन थे। वह सम्मोहित से द्वैपायन को देख रहे थे।

यू मत देखो पितामह। सम्मोहन विश्लेषण को आच्छादित कर देता है। अन्तद्वन्द्व की स्थिति से छुटकारा आत्मविश्लेषण दिलाता है। जिसे आदमी अपना स्वय का दृष्टा होकर प्राप्त करता है। मेरे सुझाव को स्वीकार मत करो, उस पर चिंतन करो।

इसी अवसर पर अंतःपुर से बुलावा आ गया। दासी ने आकर कहा—महर्षि को राजमाता ने स्मरण किया है।

तुम भी चलोगे पितामह। द्वैपायन ने खड़े होते हुए पूछा।

राजमाता आपसे एकांत में मिलना चाहती हैं। आपको पता है, वह क्यों बुला रही हैं। भीष्म ने कहा।

हां, पता है। आश्रम से चला था, तब इतना स्पष्ट नहीं था, अब हूं। ममता की अपेक्षाओं का मुझे भी सामना करना पड़ेगा। मैंने अपनी ओर से उसकी स्वीकृति राजमाता के चरण-स्पर्श करके अभिव्यक्त की थी।

आप अंतर्यामी हैं? भीष्म स्वयं खड़े हो गये।

नहीं। मैंने कहा न, जब आश्रम से चला था तब पूर्णतया स्पष्ट नहीं था, अपनी भूमिका के सम्बन्ध में। अब लगभग हूं।

द्वैपायन जाने के लिए तैयार हो गये। पितामह उनको पहुंचाकर अपने आवास की ओर चल दिये।

द्वैपायन राजमाता के कक्ष में पहुंचे तो द्वार पर उन्हें स्वागत करने हेतु प्रस्तुत पाया। सत्यवती ने चंदन का सिंहासन उनके लिए लगा रखा था जिस पर मृग छाला बिछी थी। द्वैपायन को उस पर बैठने का संकेत दिया।

द्वैपायन ने स्थान ग्रहण किया।

तभी एक पुरोहित माला, कुमकुम, अक्षत सजी हुई थाली, लाया। मंत्रोच्चार से द्वैपायन का पूजन किया। द्वैपायन ने मंत्रों का मंत्रों से उत्तर देकर मंगलकामना की।

पुरोहित चला गया। उसके पश्चात् दूध, फलादि तथा सात्विक भोजन द्वैपायन के समक्ष लाया गया।

हाथों का प्रक्षालन कर द्वैपायन ने ईश्वर स्मरण कर भोजन आरम्भ किया।

सत्यवती पुत्र को स्नेहिल दृष्टि से देख रही थी। हृदय में उदाह-सा उठ रहा था। आंखों में पराशर ऋषि की छवि रह-रहकर उपस्थित होती थी। कितना साम्य था दोनों में। इन क्षणों में पराशर की वह छवि भी प्रिय लगी, जो पहले स्मृति में आकर उनमें घबराहट उत्पन्न कर देती थी। उस स्मृति के साथ विवशता तथा दुविधा कि अनुभूति जुड़ी थी—बल्कि कौमार्य के खंडित होने का आतंक।

द्वैपायन ने जब तक भोजन समाप्त किया, सत्यवती के मस्तिष्क में अतीत, वर्तमान मिल-जुलकर आते रहे।

द्वैपायन निश्चिंत होकर बैठ गये। राजमाता ने दासियों को आदेश दिया कि वह एकांत चाहती है। किसी को प्रवेश न दिया जाये।

कक्ष में अब द्वैपायन तथा सत्यवती थे। सत्यवती कुश का आसन लेकर जमीन पर बैठ गई।

क्या राजमाता अपने सिंहासन पर नही बैठेगी ? द्वैपायन ने कहा।

नही, महर्षि के सामने कुश पर बैठना उचित होगा। बद्रीकाश्रम से आने की प्रतीक्षा कब से कर रही थी। क्या वहा मेरे द्वारा बुलाने की सूचना प्राप्त हुई थी ?

सूचना मिली थी। लेकिन मैं तपस्या छोडकर आ नही सकता था। शिष्यो को पहले यहा के आश्रम मे भेज दिया था। अभी आश्रम अधिक व्यवस्था चाहता है। ऋषियो व मुनियो की सख्या बढ रही है। द्वैपायन ने उत्तर दिया।

व्यवस्था के लिए किसी प्रकार की कमी नही होगी। मैं चाहती थी चाहे थोडे समय के लिए सही, पर राज्य के निकट रहो। तुम्हारी तपस्या मे बाधा नही चाहती, तुम्हारे आश्रम के काम मे किसी प्रकार का गतिरोध भी नही चाहती, परन्तु मैं अब सहारा चाहती हू। सयोग और भाग्य ने मुझे जर्जर कर दिया है। महाराजा शान्तनु का स्वर्गवास फिर चित्रागद की युद्ध मे मृत्यु, फिर विचित्रवीर्य का यक्ष्मा से ग्रस्त होकर देखते-देखते उठ जाना, दुर्भाग्य की कोई तो सीमा है ! पितामह यदि वटवृक्ष की तरह कुरुवश को सरक्षण नही देते तो क्या होता ?

द्वैपायन राजमाता को देख रहे थे। लेकिन राजमाता की जगह सामने बैठी अधेड नारी के शब्दो और चेहरे के भावो से तो ममता छलक रही थी। महर्षि 'तुम' के सबोधन को जान रहे थे।

सुख-दु ख दो ही तो स्थाई भावना है जो जीवन के साथ है। इनको कैसे लिया जाय, यही मन की समस्या है। द्वैपायन बोले।

मैं योगिनी नही हू साधारण स्त्री हू। यही रहना होता है। यहा के वातावरण की वायु, जल, धूल-कण, शून्य और दाह सब चिपटे रहते है। सास दूभर हो जाती है। तब इच्छा होती है सब त्यागकर सन्यास ले लू। पर फिर, इस डूबते-उतराते वश का ध्यान आ जाता है। सत्यवती की घुटन आखो मे झलझला आई।

मैं पा रहा हू पत्थर से कठोर और अडिग व्यक्तित्व भी अस्थिर मन स्थिति वाले हो रहे है—कुरुवश के लिये यह शुभ नही है। जिस राज्य को क्षेत्र मे आदर्श माना जा रहा है, उसकी धुरी इतनी डगमगा रही है ? राजमाता, यह अच्छे लक्षण नही है। भीष्म की भी यही स्थिति है—आपकी भी। द्वैपायन के शब्दो मे कठोरता थी।

सत्यवती का धैर्य टूट गया। वह भावव्यह्वल हो बोली—मुझे बेटा कहने की स्वीकृति दो द्वैपायन, हालाकि यह सम्बोधन तुम्हारे लिए कोई अर्थ नही रखता है। यह सच है कि हम सब सीमा से परे हिले हुए हैं। आशा पर लगातार आघात होता है तब आत्मबल निश्चित रूप से निर्बल हो जाता है। क्या इससे भी अधिक बुरा समय आ सकता है कुरुराज्य के लिए ? मैं राजमाता के अतिरिक्त भी कुछ हू—मा, सास, जिसके सामने दो युवा विधवा बैठी हैं और कुरुवश पर दुर्भाग्य

ा समाधि की गंगा प्रवाह दी। मैंने इस बार गहरे में उतरने के लिए तुम्हें
चुनाया है क्या तुम ने मानसी का रूप पाया? हाँ, कि कृष्ण द्वैपायन में पूछ रहा हूँ।
मैंने आपके चरण-स्पर्श किए थे। द्वापर गहन था।
हाँ, वह स्पर्श मेरे लिए अप्रत्याशित था। उस रात मुझे रात मन में कंपित
था। रात भर वह स्पर्श गम्भीर रहकर मेरी देह में वात्सल्य की सिहरन पैदा
करता रहा। मुझे आभास हुआ कि वह वात्सल्य आज भी किस तरह में दबा था
जो लहरों के आवेग में तरंगित हो उठा।

आपने पर धन्य पादप राजमाता। आप आती हैं तो जबर कर चुका।

पितामह भी यही कहते हैं। तुम भी यही कह रहे हो। पर मन कैसे नहीं
समझाना? ममता दुर्भाग्य की थाती गई, अनिष्ट रहा क्या सावनी है? मैं बाहु
पाऊंगी। पाती हूँ। पल भर का समय दो। सत्यवती ने आंखें मूंद लीं। वह स्वप्न
होकर मन-सा ह्रदय में बुदबुदाने लगी। द्वैपायन उठे, स्थिर दृष्टि से देखते रहे।
यह महर्षि की दृष्टि थी, या कि पुत्र की, यह वही बता सकते थे।
पर पूछने वाला वहां कोई नहीं था। सत्यवती सारा नियन्त्रण को अपने पर
लागू करने के लिए अंत में शक्ति संचित कर रही थी।

अंतराल के बाद उन्होंने आंखें खोलीं।

मैं राजमाता सत्यवती, कृष्ण द्वैपायन ऋषि से धर्म-सम्मत सलाह लेना चाहती
हूं। ऐसी आपाद स्थिति में, जब राज्य वंश का उत्तराधिकारी न हो, स्वर्गवासी
राजा के क्षेत्र से संतान उत्पन्न हो सकती है?

भीष्म पितामह का कहना है कि श्रेष्ठ ऋषियों व ब्राह्मणों के द्वारा, विधवा
क्षत्राणियों ने पूर्व काल में संतानें प्राप्त कीं। वह क्षत्री कहलाईं। पितामह ने सही
कहा है। द्वैपायन ने उत्तर दिया।

ऋषि द्वैपायन को पता है कि वह मेरी संतान हैं। वह श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि हैं। मैं
निवेदन करूंगी कि वह मेरी आज्ञा से अपने कनिष्ठ भ्राता विचित्रवीर्य की
पत्नियों, जो संतान कामी हैं, उन्हें कृतार्थ करें। राजमाता भावशून्यता से इस
तरह से बोल रही थी जैसे वाक्य किसी दूरागत अरण्य से आ रहे हों। नभ वाणी
हो रही हो। या कि अन्त के अतलांत से कोई आत्मा बोल रही हो।

यह सामान्य नहीं, वरन् असामान्य व्यवस्था है। मैं राजमाता के निवेदन को
अवश्य स्वीकार करूंगा, परन्तु इस अनुष्ठान से पूर्व दैहिक और मानसिक शुद्धि
करण अपेक्षित है। वधू द्वय को वर्ष भर तक नियमानुसार व्रत रखकर आराधना
करनी होगी। अपनी आत्मा को इतना निष्काम रखकर संतान कामना करनी
होगी जिसमें वासना तनिक न हो। राजमाता यह यज्ञ की कोटि का अनुष्ठान
है। द्वैपायन की आंखों से तेज विकीर्ण होने लगा।

राजमाता व्यवस्था सुनकर चुप हो गई—एक शब्द नहीं बोली।

किस विचार में पड गई ? द्वैपायन ने उत्तर में पाकर पूछा।

महर्षि, समय भयानक प्रेत छाया सा ठहरा हुआ है। प्रजा का असतोष बढ रहा है। मुझे भय है कि अम्बिका व अम्वालिका वधव्य को स्वीकार कर, वीतराग न अपना लें। जीवन से उदासीन होने के बाद उन्ह मनाना कठिन हो जायेगा। जब कामना नही रहगी, फिर अनुष्ठान कैसे सफल होगा ? वे निराशा से अत्याधिक ग्रस्त है। ऐसा उपाय करिये जो अधिक समय नही लगे।

हो सकता है। क्या मेरी कुरूपता को वह सह सकेंगी ? यह यज्ञ है राजमाता, मैं समागम के क्षणो म भी देह स परे होऊगा। क्या वो देह से, रुचियो से, ऊपर उठकर, शुद्ध समपण कर सकेंगी ? विधनावस्था वाछित फल से वचित कर सकती है।

ऐसा नही होगा महर्षि। आप तत्पर हो शेष मुझ पर छोड दें। राजमाता ने हाथ जोड दिये।

तब आप उन्ह शुद्ध वस्त्र पहनाकर, आभूषणो से सुसज्जित कर, कहिये कि मुझसे समागम की कामना करे। यह कामना जितनी एकाग्र होगी, उतनी ही गुण वाली सतान होगी।

राजमाता के चेहरे पर प्रसन्नता तथा उल्लास झलक आया। जसे घुप्प गुफा के मुह पर आकर किसी ने सूय देखा हो। उनके हाथ अनायास द्वैपायन के चरणो की तरफ बढे। द्वैपायन ने फौरन रोक दिया भूल गइ कि मा ने पुत्र को आदिष्ट किया है ! गति शाश्वत है। सष्टि उसका माध्यम है।

(१२)

दोपहर का समय था। अम्बालिका इससे पूव चौसर खेल रही थी। चौसर की पट्टियो पर अभी भी गोटें लगी थी। हाथी दात के पासे फश पर पडे थे। खेलते-खेलते बीच में उसका जी उकता गया था। वह अधूरी बाजी छोडकर उठ गई थी। साथ मे खेलने वाली परिचारिकाए आदेश पाकर बाहर आ गई थी।

अम्बालिका का मन नही लगा तो गवाक्ष में आकर खडी हो गई। वह महल मे पीछे का दश्य देख रही थी जहा से अश्वशाला व हस्तिशाला दीखती थी। वह यू ही उन पशुओं की लघु आकृति देखती रही। दूर से कितना छोटा आकार दीखता है ! सेवक उगली-उगली भर के दिख रहे है।

कभी-कभी कैसी उमग उठती है कि वहा तक पहुच और एक अश्व चुनकर, उसकी पीठ पर बैठ, सरसराती हुई निकल जाये परकोटे से बाहर। दौडाए उसे, जसे अपने पिता के यहा तब अश्व की सवारी करती थी जब वह तेरह वष की थी। उसे यह शौक अम्बा की देखा-देखी लगा था। अम्बा हद की निडर थी। उसने धनुष-बाण चलाना और तलवार चलाना भी सीखा था। पिताजी से कहकर

विशेप प्रबध करवाया था मीउन ना। उसने अभ्यास के लिए मेरा साथ चुना था। मैं यू ही जोश जाश म उसके साथ लक्ष्यभेद करती। सफलता मिलती तो अम्बा को चिढाती।

ज्यादातर ता अम्बिका का चिढाती। यह सदा स मुमडी रही है। अलग थलग रहती। छोटे छोटे पशुआ म खेलती घोडा को देखती तो रहती, चढने का कहा ता मुह बिचका देती। जबरदस्ती धनुप थमा दो लक्ष्य वहीं होता, बाण कहीं जाता। हसो, ता धनुप फेंककर चल देती। पत्थर-पर पत्थर रखकर किला बनाती। पौधा को मिट्टी म रोपकर जगल खडा करती।

अम्बालिका खडे-खडे सोच रही थी वह भी कितना मुक्त जीवन था! अब जैसे परकोटा कदी गृह बन गया है।

अकुशा का अनुभव वह अधिकतर करती रही है—विशेप-तौर पर तबस, जबसे पति की मृत्यु हुई। देह की तृप्तिया और भोग की लिप्सना तब उस चरम पर थी जब हाश भी भुनाव की छाया म डगमगाता रहता था। झटका लगा और ऐसा हुआ जैसे सजोए हुए फूला-पखुरिया की ढेरी पर कलियाए हाथी ने अपना प्रचुन पैर रख दिया हो—ढेरी कुचल गई। काल न जैसे भयानक जटाआ स ढक लिया हो उसकी कामनाओ की तितलिया को।

अम्बालिका हाथिया क सूड उठान, पर उठान, को देखती रही। किसी हाथी की चिघाड हवा पर तैरती हुई होती। वह जान सकती थी वह चिघाड तो दूर से आ रही है—उसके निकट हो तो स्यात् थरथरा द।

अम्बिका ने उसके कक्ष म कब प्रवेश किया कब वह चुपचाप उसके पीछे आकर खडी हो गई, उसे नही पता चला।

उसने धीर से उसके कधे पर हाथ रखा और बोली—क्या देख रही हो?

वह चौंक उठी। कौन! तुम। उसने गदन घुमाकर देखा।

क्या देख रही थी?

हाथी। और वह काल भी जिसन हमारे मुख पर काली छाप थाप दी।

हा, अम्बालिका मैं भी अपन कक्ष म बेचैन हो रही थी, इसलिए तेरे पास भाग आई। बडा अजीब सा रहस्य वातावरण मे घुल चुका है।

बदियो का वातावरण तो हमेशा स्पष्ट होता, उसम रहस्य कहा। एकरस सुबह, एकरस दोपहर, एकरस शाम और एकरस रात। अम्बालिका गहरी सास भरते हुए बोली।

तूने अपने को इतना बे फिक्र क्या छोड दिया है अम्बालिका? यह भी जानने की कोशिश नहीं करती कि यहा क्या हो रहा है? मेरे साथ आ, मैं बताऊगी हमारे बारे म कितना गलत कहा जा रहा है। अम्बिका हाथ खीचकर उस पलग की तरफ ल गई। बैठो यहा। अम्बालिका बैठ गई। उसकी दृष्टि खिरकी क उस

पिजड़े पर गई जिनमें कई लाल चोंच वाले छोटी चिड़िया फुदक रही थी। एक-दो तोतों ने चोंच घुमाए मोड़ रखी थी।

अब पिजड़ा देखने लगी। अम्बिका मुस्काई।

तुम इतनी उत्तेजित क्यों हो ? तुम तो मुझसे कहा करती हो कि मैं अधीर रहती हूं। अम्बालिका ने बहन को देखते हुए कहा।

महर्षि द्वैपायन को निमन्त्रण देकर बुलाया गया। उन्हें राजमाता के महल में ठहराया गया। उनका स्वागत अतःपुर के द्वार पर किया गया। हमें सारे कार्य क्रमों से अलग रखा गया। पूरे नगर ने दर्शन लाभ किया, क्या हमें अवसर नहीं दिया जा सकता था ? अम्बिका ने कहा। अवसर नहीं दिया गया, तो नुकसान क्या हुआ ? अम्बालिका ने लापरवाही में प्रति प्रश्न किया।

राजमाता ने कल उनसे एकांत में बात की है।

धर्म-कर्म की बात की होगी। ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा बुढ़ापे में अधिक होती है।

तू व्यंग्य कर रही है, या अपना अनुमान बता रही है।

अम्बिका, न मैं व्यंग्य कर रही हू, न अनुमान बता रही हू। मैंने एक चीज जान ली है कि यहा वही होगा जो राजमाता चाहेंगी और पितामह चाहेंगे। जब वही होना है, तो जैसा हो ठीक है। लेकिन जब मेरे पर आ गई, तब मैं अपनी तरह देखूगी। बंदियो का मन भी स्वतन्त्र होता है। विकल्प उनके लिए खत्म कर दिये जायें, पर फिर भी लोग जिन्दगी काट देते है—विकल्पहीनता में, अलग विकल्पो के सहारे। बंदी, विकल्प को मनोजगत में खोज लेते है।

क्या तुझे या मुझे पुत्र की कामना है ? अम्बिका ने पूछा।

मुझे भरपूर जीवन की कामना है। मैं पा सकती हूं ? मुझे कोई उसे पाने की स्वतन्त्रता देगा ? यह तब हो सकता है जब मैं यहा से भाग जाऊ—मुक्त हो लूं। अम्बालिका ने पीछे की गुदगुदी गद्दी के सहारे पीठ टेक दी।

अम्बिका अपनी रौ मे थी—क्यो कहा जा रहा है कि हम 'पुत्रकामा' है। हम अपने जीवन पर छाये अधेरे मे भटक रही है, अपने से लड़ रही हैं

इससे किसी को क्या मतलब ? अम्बालिका ने बीच में टोका।

अम्बिका मुझे सदेह है कि पितामह ने मना करने के बाद महर्षि द्वैपायन को इसीलिए बुलाया है कि वह सुझाव दें। राजमाता के परिसदर्भ में हम नहीं हैं, हमारी भावनाए महत्वपूर्ण नहीं है, उत्तराधिकारी का प्रश्न सर्वोपरि है।

तुम आज बिलबिला रही हो, जब मैंने कहा था मैं विद्रोह करूगी, तब तुम उल्टा मुझे भला-बुरा कह रही थी। अम्बालिका जैसे सम धरातल पर आ ही नहीं रही थी।

क्या तुमसे भी नहीं कहूं ? करना तो वही होगा जो करने को कहा जायेगा।

उससे बाहर जा कस सकत है ?

फिर खामोश रहो। जानती हू तुम्हारे पास गुप्त रूप स सूचनाए आती रहती है— तुम मगाती हो। मैंन परवाह करना छोड दिया। सुन-सुन कर मस्तिष्क ही तो विचलित होता है। अपनी स्थिरता को क्या हलचल म रखा जाय ?

तभी दासी ने सूचना दी, राजमाता आपस मिलने आ रही हैं।

मरा सदेह सही निकला—अम्बिका न कहा।

क्या करना है—अभी भी बोल दो ? अम्बालिका न पूछा।

बचपना मत दिखाना। न विरोध करना। राजमाता और पितागह एक हैं। पितामह जिद्दी भी है, यह ध्यान रखना। अम्बिका ठडी टीप थी, जम अभी जो बोल रही थी वह दूसरी कोइ थी।

सत्यवती परिचारिका के साथ कक्ष म आई। दोना ने खडे होकर अभिवादन किया।

प्रसन्न रहो। ईश्वर तुम्हारी मनोकामना पूरी करे। कसी परी-सी लगती हे मेरी बहुए। जस इद्र की अप्सरा हा। वैठ जाओ—मैं इस सिहासन पर बठ जाती हू।

राजमाता जिस सिहासन पर बठी, उन्ही के पास जमीन पर दोना वठ गइ।

पहल मैं तरे कक्ष म गई। उन्हान अम्बिका म कहा।

आप बुलवा भजती हम आपक महल म आ जाते। अम्बिका बाली।

मरा महल आज कल धम-स्थान और चर्चा-गह बना हुआ है। मत्री, ब्राह्मण, पुरोहित, आने ही रहते ह। सब परेशान है, प्रजा भी। अपनी उद्विगता तो कह ही नही सक्ती।

अम्बिका और अम्बालिका चुप वठी रही।

नारी का जीवन भी क्या अपना जीवन है। बचपन स लेकर बुढापे तक उसस अपक्षा ही अपेक्षा की जाती है। वह दती रहे देती रहे। शायद इसी म उसकी उसकी महत्ता हा।

दोना सिर झुकाए सुनती रही। राजमाता को अहसास हुआ प्रतिक्रिया म 'ह' हा भी नही आ रहा है।

तुम क्या सोचती हो ? स्त्री हवन कुडी से अधिक कुछ है जो आज भी साधती है समिधा भी स्वीकारती है बदल म वातावरण को सुगधित करती है। वह खुद भी कदाचित हवन सामग्री है।

आप सच कह रही है। अम्बिका बोली।

तुम क्या साचती हो मरी चचला ? राजमाता न अम्बालिका क सिर पर हाथ फेरा।

मैंने जिन्दगी में देखा क्या है मा ! जब समझने का समय आया तब पाया कि दुर्भाग्य ने डैने काट दिये। अम्बालिका ने उत्तर दिया।

राजमाता ने उसके सिर को अपने घुटने पर रख लिया। उसे सहलाने लगी।

इतना निराश नहीं हो बेटी ! जो तूने खोया, वह मैंने भी खोया। सपना सपना का फल है। दुःख स्थाई होकर नहीं ठहरता, दृष्टि आशा भरी हो तो वसंत के झोंके भी आते हैं। पत्ता के झड़ने के बाद कोपल निकलती है—पत्तियां नया जन्म लेती हैं।

एक जन्म के बीच में दूसरा जन्म कैसे होता है राजमाता ? अम्बिका ने पूछा। लेकिन उसका अभिप्राय कहीं और था।

राजमाता शायद आशय समझ गई। पलभर के लिए विवर्ण भी हुई। पर अपने को छिपाकर बोली—एक जन्म के अन्दर दूसरा जन्म नहीं होता जीवन परिवर्तनशील निरन्तरता है एकरसता में मन रस का उद्रेक होता है, फिर चुकता है, फिर बनता है। मैं तुम दोनों को मनाने आई थी।

अम्बालिका ने धीरे-से घुटने से सिर हटा लिया था। वह सीधे होकर अब राजमाता को देख रही थी।

आपका आना पर्याप्त है—मनाने की विवशता कहां। अम्बिका ने कहा।

तीनों में विशेष सतर्कता आ गई थी। कहने वाली को पता था क्या कहना है। सुनने वाली भी जानती थी उनसे क्या कहा जाना है।

महर्षि द्वैपायन को मैंने कल अपने कक्ष में भोजन के लिए निवेदन किया था। मैं उनसे धर्मसम्मत सुझाव लेना चाहती थी—कुरुवंश की आपद स्थिति पर। उन्होंने कहा, यदि विचित्रवीर्य की वधुएं किसी ब्रह्मर्षि से समागम प्राप्त करें तो यशस्वी पुत्रों की जननी बन सकती हैं। वह विचित्रवीर्य की संतान कहलाएगी। उन्होंने भविष्यवाणी की है, जो संतान होगी वह दीर्घआयु वाली होगी तथा कुरुराज भारत में शौर्य तथा प्रतिष्ठा वाला राज होगा। मां धन्य धन्य होगी चक्रवर्ती पुत्रों को पाकर।

अम्बिका और अम्बालिका ने एक दूसरे को देखा। राजमाता उनके देखने के दबाव से पलभर के लिये शंकित हुई। पर तुरन्त उन्होंने अपने को सम्भाला।

मैं जानती हूं इस स्थिति को किसी भी स्त्री द्वारा आत्मा से स्वीकार किया जाना कठिन है, पर तुम लोग इसे दान समझो। बलिदान समझकर स्वीकार कर लो। क्या मां की यह इच्छा नहीं मानोगी ? राजमाता आतुरता से दोनों के चेहरों को देखने लगी।

मौन ठहरा रहा।

मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं, ना मत करना। राजमाता की आंखें डबडबा उठीं।

अम्बिका उनके आसू नही देख सकी हिचकाते हुए बोली—मा, आत्मा से अनग देह यदि उत्तराधिकारी दे देता है, मैं स्वीकृति देती हू।

तुम नही बोल रही हो अम्बालिका ?

बोलने की गुजाइश कहा है राजमाता। विकल्प है ही कहा। आप स्वय कह रही ह कि किसी भी स्त्री का आत्मा स स्वीकार करना कठिन है।

पर अनुष्ठान म विघ्न पड सकता है यदि आत्मा साथ न हो। पुत्र-कामना की शुद्ध इच्छा रखनी होगी और एकाग्र-समपण तन मन-आत्मा स होना है। द्वैपायन ने यही कहा है।

यह कैसे सम्भव है ? अम्बालिका बोल पडी। उसके मुख पर यकायक वितृष्णा उभर आई।

बेटी, वितृष्णा दिखाकर मुझे अपराधी मत बनाओ। मेरी स्वय की आत्मा तुम्हारे पास आते हुए काप रही थी। मैं स्वार्थी नही हू। मैं हर्गिज स्वार्थी नही हू। राजमाता का धय टूट गया। वह रो पडी।

वातावरण एकदम भारी हो गया और दोनो को दबाव देने लगा। राजमाता का इस तरह स टूटा हुआ दोनो न बेटो की मत्यु पर देखा था। सत्यवती निढाल सी हो गई।

अम्बिका ने अम्बालिका को हाथ पकडकर उठाया और दोनो राजमाता की अगल-बगल खडी हो गइ। अम्बिका न आखो से आसू पोछे। चुप हो जाइये मा। आपका दु ख हम नही देख सकत। अम्बालिका ने राजमाता का कधा सहलाना शुरू कर दिया। उसके मुह मे शब्द नही निकल रहे थे, जबकि वह भी राजमाता को दिलासा देना चाहती थी और आश्वस्त करना चाहती थी—वसा ही होगा जैसा आप चाहती है। राजमाता चेतना शून्य हो गइ पता नही चल सका।

(१३)

ऋषियो व पुरोहितो की परिषद म विशिष्ट विचार विमश के बाद सम्मति हो गई कि आपद स्थिति को ध्यान म रखते हुए विचित्रवीय के क्षेत्र मे सतानोत्पत्ति का अनुष्ठान किया जाय। पितामह तथा कृष्ण द्वैपायन दोनो इस आपातकालीन बैठक मे उपस्थित थे। कृष्ण द्वैपायन ने पौराणिक सदर्भों क उदाहरण दिये। यह सम्मति प्रजा म प्रचारित कर दी गई। प्रजा स कहा गया कि इस मागलिक अनुष्ठान की सफलता क लिए यज्ञ एव प्राथना आदि करे। यह गुप्त रखा गया कि किस ब्रह्मर्षि द्वारा यह काय सम्पन्न होगा।

राजमाता प्रसन्नत और उत्साह स द्वपायन द्वारा बताई गई व्यवस्थाए पूरी करवा रही थी। द्वैपायन न यज्ञ आरम्भ किया। यह निर्देश उनकी तरफ स दिया जा चुका था कि वह सप्ताह भर तक किसी स नही मिलेंगे। वह कठिन साधना म लीन थ।

अम्बिका तथा अम्बालिका व्रत व पूजन की निर्देशित प्रक्रियाओ से गुजर रही थी। एक ओर शुद्धिकरण का कायक्रम चल रहा था दूसरी ओर दासिया और परिचारिकाओ को यह आदेश था कि सौदय-वृद्धि के लिए प्रसाधनो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया जाये। यथाथ मे अम्बिका और अम्बालिका का सौदय निखर आया था—वैसा ही सौदय, जैसा स्वयवर से पूव निखरा था। जिन मत्रो को जाप करने के लिए उन्हें दिया गया था, उनका अद्वितीय आतरिक प्रभाव व दोना अनुभव कर रही थी। मन का परिवतन क्या इस सीमा तक हो सकता है कि सारे द्वद्व तिरोहित हो जाए तथा भावनाए स्वप्नवत कल्पना को जाग्रत कर दें ! वह कैसी औषधिया थी जिनके सेवन न देह को कुदन कर दिया था और हिमपातित काम को चरम उद्दीपन की स्थिति मे उठा दिया था। आत्मा मे एक अजीब-सा राग निस-वासर बजता रहता था जिसन रोम-रोम झूलता रहता था ! यह अत करण के किसी सुप्त सोते से फूटकर निकला था या कृत्रिम उत्फुरण था !

हरियाले वृक्षो को दोना देखती तो हरीतिमा अदर उगी हुई, लहरती अनुभूत होती। पक्षियो को उडता, चहचहाता, देखती तो उनकी कल्पना मुक्त उडान भरने लगती। हिरण खरगोश, तेज दाडते तो लगता मन उनके साथ कुलाचें भर रहा है।

यह ऋतुराज हममे कहा से घुस गया ?—अम्बालिका ने अम्बिका से पूछा।

सो रहा था, जागकर खेलने लगा है। अम्बिका ने उत्तर दिया।

मधु-सा भरा रहता है आखा मे—अम्बालिका बोली।

मधु नही मद—जैसे मदकोष रख दिया हो किसी ने अन्दर। अम्बिका ने अपनी अनुभूति कही।

राजमाता ने हम पर जादू टोना करवा दिया। अम्बालिका ने कहा।

करवाया कुछ भी हो, सारे विकार तो हट गये। हम जो है, या हो गये हैं, क्या वसा रहना नही चाहते ? अम्बिका न पूछा।

चाहते है। ऐसा ही रहना चाहते है। यही चाहते है कि यह भ्रम छूटे। अम्बालिका तुरत बोली। आवेश मे आकर उसने अम्बिका को कौली मे भर लिया। उसे चूमने लगी। अम्बिका की देह मन सन करने लगी। नसें तपने लगी। उत्तेजना असह्यता की सीमा तक आई तो उसने अम्बालिका को बल पूवक अलग कर दिया।

अम्बालिका काठ-सी उसके हाथा म थी। आखा मे रक्ताभा थी जैसे दूध भरी कटोरियो पर केसर तिर रही हो।

(१४)

अम्बिका का कक्ष। कई निश्चित स्थानो पर रखे दिये कक्ष मे प्रकाश कर रहे हैं। धूप तथा अय प्रकार की सुगधा से प्रकोष्ठ गह-गहा रहा है। पलग पर

शुभ्र चादर बिछी है जिस पर गंधित फूल छितर है। अम्बिका ने मन पसन्द आरपक वस्त्र पहन है जिन पर आभूषण झमझमा रहे हैं।

शृंगार करवाते समय उसने सविका से कहा था—सजाओ। ऐसा सजाओ की आगन्तुक ऋषि का मन भ्रमर की तरह गूंज उठे।

सविका ने जिस समय पिटारी खानकर कलियों से गुथी वेणी और हाथ के सुमन कंगनों को पहिनाया स्वयं अम्बिका अन्तः रागित हो उठी।

मैं कैसी लग रही हूं? उसने सविका से पूछा।

इन्द्र सभा से उतरी मैनका। उसने खिलखिलाकर कहा।

अम्बिका तुरत बोली—तब तो ऋषि अपने जन्म-जन्मान्तर की तपस्या का पुण्य पायेगा। तेरी शृंगार कला को सराहेगा।

किस ऋषि का भाग्य खुला है रानीजी? दासी ने पूछा।

कोई होगा द्वैपायन के आश्रम का तेजवान शिष्य। ब्रह्मचर्य से तेजस्वी होगा उसका मुख मंडल। तेरी भी व्यवस्था करा दूं राजमाता से कहकर? तू भी तो कला की सुंदर है।

दासी लजा गई। ऐसी खिल्ली क्या उडाती है रानी जी।

खिल्ली नहीं उडाती। इन ऋषियों-मुनियों का कोई ठिकाना नहीं। जब मन की लगाम छूटती है तब नारी की चिरौरी करते हैं। भोग के कुछ क्षण, योग की तुला के पलड़े को आसमान में टांग देते हैं। नारी स्थानापन्न ब्रह्म हो जाती है। मुझे आना है जाने की। आगन्तुक के आने का समय हो रहा है। दासी ने हाथ जोड़े।

या अन्दर-कुछ कुछ होने लगा? अम्बिका ने हास्य किया।

दासी फिर लजा गई। उसकी उंगली स्वतः मुख तक गई। उसके दांतों ने उसे चाब दिया तो ऊई कर पड़ी।

जा जा। अब तेरे बस का नहीं है ठहरना।

दासी वास्तव में पलटी और भाग गई। अम्बिका खिलखिला कर हंस पड़ी। फिर वह औषधि पेटिका तक आई उसे खोला उसमें से दो गोलियां निकाली और गिटक गई।

वह बुदबुदाई—उड मन ऐसा उड की देह नयी हुई उडती जाये तेरे साथ। वह पलंग पर बैठ गई। कक्ष-द्वार की तरफ प्रतीक्षा से निहारने लगी। पर चन कहां? थोड़ी ही देर में उकता गई। झरोखे तक आ गई।

नील आकाश पर तारे छिटके थे। कहीं कहीं घटाओं जैसे बादल तैरते दीख रहे थे। झींगरों की झनझन हो रही थी। कोई मोर टुहुक कर रात्रि की शान्ति को हिला देता था।

वह देखती रही विस्मित-सी।

औपधि ने असर करना शुरू कर दिया था । कसी थी वह औपधि ? उत्तेजना जाग्रत करने वाली, या मादकता से आच्छादित करने वाली ।

अम्बिका खडी नही रह सकी । लौट आई पलग तक । पीठ को सहारा देकर बैठ गई । दृष्टि कक्ष-द्वार पर फिर टिक गइ । पलका पर भारीपन महसूस होने लगा था ।

अरी क्या कर रही है ! आने वाला ऋषि है । राजा नही कि तुझ सोती हुई को भी प्यार से सहला कर जगाएगा, पर नाराज नही होगा । गुस्सा इनकी नाक पर रखा रहता है—शाप इनकी जबान पर ।

अम्बिका चौंककर सीधी बठ गई ।

तभी उसे खडाऊ की खट-खट सुनाई दी ।

वह सभलकर खडी हुई । चाप निकटतर आ गई ।

वह दरवाजे तक आवभगत करने के लिए बढी कि द्वैपायन अन्दर थे । खडी की-खडी रह गई अम्बिका !

कस्तूरी-से काले, श्वेतकेशी दाढी वाले वद्ध ऋषि सामने खडे थे । चेहरे पर उभरी हुई बडे बीज सी आखे चमक रही थी । मछली की गध का बफारा देह से छूटकर कक्ष की खुशबू को दबा रहा था ।

सारी कल्पना हवा हो गइ । मादकता, जैसे उसकी हथेली पर रखी हुई थी, ऋषि ने फूक मारी उड गई ।

उसने अपने को सभाला—आधा झुककर अभिवादन किया ।

ऋषि न सकेत से आशीर्वाद दिया । वह पलग की तरफ अग्रसर हुए ।

अन्दर से थर्राती अम्बिका उनके पीछे हो गई । चेहर से कम विरूप पीठ थी ।

ऋषि पलग पर बठ गय । सकेत किया आने का ।

वह काठ की मूर्ति सी सवगशून्य पलग पर बैठ गई—भय और आतक उसे दबोचे जा रहा था । जैस तीतर बाज के पजो मे हो ।

उसने उन्ही क्षणो म आध्यात्म की उदात्तता के किसी स्तर को जागृत करना चाहा, परन्तु कुरूपता इतनी विकपक थी, दुगध इतनी दमघोट थी, कि उसका प्रयास विफल हो गया । ऋषि की दृष्टि पल-पल बदलती भाव छायाओ को देख रही थी ।

अम्बिका ने सुरक्षित समझा लेट जाना और पलको के कपाटो को जकडकर बद करना ।

द्वैपायन के शुष्क हाठो पर व्यग्यात्मक मुस्कान प्रकट हुई, फिर गायब हो गई ।

उन्होंने आख मूदकर मत्र पढा । पुनरावृत्ति की । तब उन्होंने उस सौंदयवती के मुगध देते शृगार को देखा ।

वह फिर मुस्कराए। इस मुस्कराहट मे शायद काम की खिल्ली थी। महर्षि, आख मूदे, सिकुडती अम्बिका के सन्निकट लेट गये।

(१५)

यह सिर्फ राजमाता को द्वैपायन न बताया—अनुष्ठान पूर्णतया सफल नही हुआ।

कैसा विघ्न हुआ ? सत्यवती न चिंतित होते हुए पूछा।

वही, जिसका संदेह था। मुझे देखते ही वह बच्ची भयभीत हो गई। कदाचित यह हमारी कुरूपता सह नही सकी। उसन आखें बद कर ली। सगम काल म वह आखें बद किये रही।

इसका परिणाम क्या होगा ? क्या सतान नही जन्मेगी ? राजमाता ने पूछा।

जन्म होगा। एक हृष्ट-पुष्ट बच्चे का जन्म होगा जो हर तरह से योग्य हो, परन्तु वह जन्माध होगा। द्वैपायन ने उत्तर दिया।

महर्षि ! राजमाता जैसे किसी पर्वत शिखर से फिसल पडी। उनका मुख उदासी की छाया म हो गया। भाग्य जब विपरीत हो तो हर प्रयास प्रतिकूल परिणाम देता है। अंधा उत्तराधिकारी राज्य कैसे सभालेगा ?

यह मात्र भाग्य का प्रश्न नही है प्रक्रिया दोष है राजमाता। मैंने पहले आग्रह किया था। द्वैपायन ने सत्यवती को स्मरण करवाया। ग्राहक यदि ग्रहण के क्षणो म देह मन आत्मा और भावनाओ स उदात्त स्तर तक नही पहुचा होगा, तो ग्रहण अपूर्ण होगा। यही अम्बिका के साथ घटित हुआ।

अम्बालिका भी प्रतीक्षा म है। राजमाता बोली।

सिर्फ प्रतीक्षा नही, उसे यह भी जानना होगा कि उसके लिए कौन प्रस्तुत हो रहा है। आत्मिक और भावनात्मक एकाग्रता से समर्पण करना होगा। द्वैपायन के शब्दो मे आदेश था। समय का अतराल जरूरी है। उन्होंने आगे कहा।

सत्यवती कर्त्तव्यविमूढ सी हो गई। वह जानती थी कि उसन अम्बिका स इस तथ्य को छिपाया था कि कौन प्रस्तुत होगा। अब उसे उसकी प्रतिक्रिया का भी सामना करना पडेगा। अम्बिका अवश्य अम्बालिका को बतलायगी—तब ?

क्या विचार कर रही है राजमाता ? द्वैपायन न सत्यवती को विचारलीन देखकर टोका।

बहुत कठिन स्थिति है, महर्षि ! कृपया यह भविष्य गुप्त ही रखियेगा। अम्बिका को यदि भनक भी पड गई तो वह निराश हो जायगी। ऐसा न हो कि वह गर्भ को नष्ट करने का प्रयत्न करे।

वह कर नही सकगी। द्वैपायन न दृढता स कहा।

मुझे सन्देही समझ ला। मैं उन दाना को जानती हू। अत पुर की कार्यपद्धति,

सभा के निणय, या परिषद की राय लागू करने से भिन्न है। पितामह ने रोष दिखाकर कह दिया था—उन्हे मानना होगा। क्या मात्र आदेश से किसी की कामनाओ को बाध्य किया जा सकता है? फिर आपकी शत में आत्मिक सहभागिता है।

मैं मानता हू राजमाता, पुरुष कितना भी सवेदनशील हो जाये, नारी की कोमलताओ का नही समझ सकता।

तब मुझ पर स्थिति को छोडिये। सत्यवती ने आग्रह किया।

अतराल का ध्यान रखना होगा। जब अनुकूलता पाओ, मुझे सदेश भेज देना। मैं चाहता हू आश्रम चला जाऊ। कल व्यवस्था करवा देना।

जैसी आपकी आज्ञा! सत्यवती ने हाथ जोडे।

ऋषि अवश्य हू राजमाता सम्बन्धो से परे होकर भी लगता है, जड नही कटती। द्वैपायन ने सहज कहा, फिर हाथ जोड दिये।

सत्यवती का अत ऐसा हो गया जैसे दो चट्टानो के बीच मे विकसित पीपल का पौधा झाक उठा हो।

(१६)

पक्ष गुजर गया लेकिन अम्बिका सामान्य नही हो सकी। उस रात्रि का अनुभव दु स्वप्न की तरह उससे चिपट गया। कई दिन तक वह गुम सुम शय्या पर पडी रही। शरीर से शक्ति जैसे सूत ली हो किसी न। वह पडी पडी न जाने क्या सोचती रहती।

अत पुर मे सुरसुराहट-सी फल गई—अम्बिका रुग्ण हो गई।

अम्बालिका अगर पूछती तो उसके आसू बह उठते। वह पलग पर बठी हुई अम्बालिका के अक मे अपना सिर रख लेती। वह धीरे-धीरे उसके बालो म हाथ फेरती, अम्बिका हाथ कसकर पकड लेती।

कुछ भी नही बताओगी? अम्बालिका हताश होकर पूछती।

अम्बिका उसे देखती विवश मेमन की तरह पर शब्द नही निकलत मुह से।

राजमाता को उसकी दशा पता चली थी, वह दूसरे ही दिन उसके पास आई थी। अम्बिका न उन्हे सख्त दृष्टि से देखना चाहा था, पर उनके बेटी कहते ही, उनसे लिपट गई थी।

उन्होने कलेजे से लगा लिया था। उसकी पीठ सहलाती रही थी और लाड से पुचकारती रही थीं। जसे चोट खाई बालिका को मा लेप लगा रही हो।

उन्होने ढाढस बधाया था—तू हिम्मत वाली है वीर है क्षत्राणी है—इस तरह कमजोर होती हैं कही महलो की रानिया? दासी और परिचारिकाए क्या सोचेंगी।

राजमाता ने राज चिकित्सक बुलवाया था और उपयुक्त इलाज करने का निर्देश दिया था।

अंतःपुर में यही बात बनी थी कि अम्बिका अस्वस्थ्य हो गई है। यह घटना का बचाव था। मंदिर में पूजा तथा यज्ञ का आयोजन हो रहा था यह घोषित करने के लिए कि उत्तराधिकार-प्राप्ति का अनुष्ठान सफल हुआ।

राजमाता का हृदय ऐसा प्रकोष्ठ बन गया था जिसमें सच्चाइयां गुप्त थीं। बाहर आने की स्वतन्त्रता उन्हें नहीं थी। लेकिन वह अन्दर उत्पात मचाये रहती थीं।

जब तक अम्बिका कुछ सामान्य नहीं हुई, वह रोज उसके पास आती और पर्याप्त समय तक बैठती। उसे बताती कि उसने कितना कल्याणकारी कार्य किया है—कुरु वंश के लिए, धर्म के लिए, राज्य के लिए व प्रजा के मंगल के लिए। कृष्ण द्वैपायन महर्षि हैं उनकी सन्तान चक्रवर्ती और धर्म ध्वजी होगी।

दुःस्वप्न के समानान्तर राजमाता भविष्य का सुखद स्वप्न अम्बिका की कल्पना को देती कि वह उसमें रमने लगे।

स्वप्न ही तो स्वप्न से जीतते हारते हैं।

समय के बीतने का प्रभाव था, दिए गये स्वप्न का प्रभाव था, या अम्बिका के अंतःकी नैसर्गिक शक्ति—अमर शनैः शनैः हल्का होता गया। पर अब भी जैसे समय-कुसमय की लरज शेष थी।

अम्बालिका यह समझ गई थी कि उस रात कोई अघट घटना घटी है। परन्तु अम्बिका के बताये बिना वह कैसे जाने!

राजा का भोग, आसक्त पुरुष का भोग होता है। सम्भव है अम्बिका ऋषि के तेज को सम्भाल नहीं सकी हो। यानि देह उस तेजस के लिए सक्षम न हो सकी हो।

पक्ष के बाद भी आगे कई दिवस बीत गये। अम्बिका ने शैय्या छोड़ दी थी। वह प्रातः और संध्या उद्यान में घूमने जाने लगी थी। दासियों के अतिरिक्त अम्बालिका उसके साथ होती।

राजमाता भी अब थोड़ी निश्चित हुई थी। उन्होंने सोच लिया था कि वह अम्बालिका से स्वयं नहीं कहेंगी। जानती थीं अम्बालिका, अम्बिका से अवश्य पूछेगी, और वह उसको बतायेगी।

पता चल ही जाना चाहिए। द्वैपायन ने यही तो कहा था कि उसे तन-मन आत्मा और भावना से समर्पण करना होगा।

अम्बालिका की प्रतिक्रियाओं का निरीक्षण करना होगा। उपयुक्त मानसिकता को जानना होगा।

अम्बालिका की आन्तरिक और दैहिक स्थिति अजीब हरकारे पा रही थी।

वर्षा के कभी-कभी मूसलाधार बरसने से वह पूर्ववत उद्दीप्त हो जाती थी। रोम-रोम कामनाओं से खेलने लगता था। नसें उत्तप्तता से तन सी जाती थीं। जी करता पहले की तरह अम्बिका को आलिंगन में भर ले। खिलखिलाकर निष्प्रयोजन हँसे। पर अम्बिका के उतरे चेहरे और ठण्डेपन को देखकर स्वयं अंकुश में आ जाती।

तुम ऐसी ही रहोगी? उसने संध्या के समय उद्यान में घूमते हुए पूछा।

तेरी तरह उछल बछेडी कैसे हो सकती हूँ। मैं मां होने वाली हूं! अम्बिका ने उत्तर दिया।

मां होने के मतलब हर समय मुंह लटकाये रहना नहीं है। पुत्र भी मुंह लटकाये पैदा होगा। देख, वर्षा ने कैसे हंसते फूल दिये हैं उन पेडों को। खुश रहेगी तो ऐसी संतान होगी। अम्बालिका ने कहा।

मन से तो खुश ही हूँ।

तृप्त भी?

हां, तृप्त भी। उसी की भावना में रहती हूँ। वह पिता की तरह सुंदर हो, पराक्रमी हो, धर्मात्मा हो इसीलिए धार्मिक पुस्तकें पढती हूँ। अम्बिका ने शांत भाव से कहा।

पर फिर भी तेरे चेहरे पर उदासी रहती है। अम्बालिका ने कहा।

वह भी दूर हो जायगी धीरे धीरे।

मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ उस रात क्या हुआ था जो तेरी यह दशा हुई? अम्बालिका ने रुककर, अम्बिका को भी रोक लिया।

कल्पना और भावना के विपरीत घटित हुआ था, जिसे मस्तिष्क सम्भाल नहीं सका था। वह क्षण भर का उद्वेलन भयावह स्वप्न बनकर अनुभूति चित्र बन गया। वही कभी-कभी रात में अब भी डरा देता है। लेकिन अब छुटकारा पा रही हूँ। अम्बिका आगे बढ़ गई।

रुक, अम्बिका! वह उद्वेलन क्या था? कौन ऋषि था?

सांवला कूट। सफेद दाढ़ी मूछों से भरा चेहरा। आंखें आग के अंगारे। देह में मछली की गंध। सब मेरी कल्पना के बिलकुल विपरीत था। वह द्वार से जैसे घुसे, मैं डर गई। वह पल भर का दृश्य आज भी प्रत्यक्ष होकर आता है तो मैं आतंकित हो उठती हूं। वह कृष्ण द्वैपायन महर्षि स्वयं थे। अम्बिका एक सांस में कह गई। फिर, जैसे उसे याद आया। मैं उन्हें देख नहीं सकी। जो हुआ, हुआ। मेरी आंखें बंद रहीं। राजमाता ने इसीलिए हमें देखने के लिए नहीं बुलाया था—तुम उस दिन ठीक कह रही थी। अम्बालिका का स्वर बदल गया।

मुझे कहा बताया गया था कि ऋषि स्वयं आएंगे। मैं समझ रही थी उनका

काई शिष्य होगा। मेरी कल्पना में रह रहकर राजा विचित्रवीर्य का रूप घर रहा था।

यह छल था। राजमाता ने ऐसा क्या किया? अम्बालिका के चेहरे पर तनाव आ गया।

छल उनकी तरफ से था या मेरी कल्पना का दोष था, कौन निश्चय करे। सताप यही है कि सतान महर्षि के तप के अश से जन्मेगी। वह पूरी रात्रि मौन रहे और पौ फटने से पूर्व चले गये। मैं जागी, तो अकेली शय्या पर थी। वह फिर आएगे यहा, राजमाता बता रही थीं।

मेरे लिए? अम्बालिका ने पूछा।

राजमाता ने यह नहीं बताया कि क्या। कदाचित्

मैं तैयार रहूगी। महर्षि इस तरह से मौन आकर, मौन नहीं जा सकेंगे। अम्बालिका दृढता से बोली।

अम्बालिका, तू इतनी आवेश मे क्या हो जाती है? मुझे तुझसे भय लगता है। वह महर्षि हैं। महर्षि का वरदान फलीभूत होता है, शाप नाश करता है। अम्बिका जैसे घबरा गई।

तुझ मे मुझ मे अतर है, अम्बिका। वह किशोरावस्था से है। तूने मुझे वह बता दिया जिसे मैं कभी से तुझसे जानना चाहती थी।

चल, अब लौट चलें। पर तू उदास मत रहा कर, मुझे दुख रहता है। अम्बालिका के दोनो हाथ अनायास खुल गये।

अम्बिका उसके हाथों मे पहुच गई जैसे वह सुरक्षा के हाथ हो।

(१७)

माह बीत रहे थे। राजमाता सत्यवती उद्देश्य को मन मे रखे स्थिति को समझ-बूझ रही थी। अम्बालिका के कहन-सुनने की सारी सूचनाए उनके पास पहुचती रही है। अत पुर की सामान्य ज़िन्दगी का भी अपना ताना-बाना है। राजमाता, रानिया, उनकी प्रिय दासिया परिचारिकाए सब अपने अपने कर्तव्यो मे लगी रहती है। ऊपर से ऐसा लगता है एक महल के अतरग जीवन का सबध दूसरे से कटा हुआ है, पर वास्तव मे ऐसा नहीं है। सूचनाए सरपट उडती सम्बधित स्थानो पर पहुच जाती है। गुप्तचरो का पता नहीं चलता कितने द्वारा होती है, सबके निजी छद्म जरिये है।

माह चढ रहे हैं, सत्यवती की चिंता बढ रही है। अम्बिका के सतान होने से पूर्व उस द्वैपायन को निमत्रित करना होगा अम्बालिका के लिए। द्वैपायन के बताये भविष्य को उसने सिर्फ पितामह को बताया—भीष्म, महर्षि कह गये हैं अम्बिका के बलशाली बुद्धिमान धर्मात्मा पुत्र होगा, पर वह जन्मान्ध होगा।

जन्मांध राजकुमार राज्य कैसे करेगा ? समस्या तो वैसी की-वसी रही ।

पितामह भी चिंतित हो गये थे ।

मैंने द्वैपायन से प्राथना की थी कि वह अम्बालिका को भी अनुगहीत करें। उन्होने कहा था—अनुकूल समय पर स्मरण कर लेना, मैं आ जाऊगा ।

कुरु वश के ग्रह अभी सक्ट मे चल रह ह । भीष्म न कहा था । लेकिन फिर आगे कहा—भविष्य उज्ज्वल है राज ज्योतिषी ने बताया है मुझे ।

दिलासा देत रहना तुम्हारी प्रवत्ति है । सत्यवती बोली थी ।

मैं खुद भी भविष्य से बहलता और प्रेरित होता हू । दूसरी प्रेरणा आप है। भीष्म, कभी-कभी तुम मुझे कुशल कूटनीतिज्ञ लगते हो । कभी गम्भीर ज्ञानी, कभी बडे सामान्य-से लगते हो ! सहज ।

मेरी नियति यही है । पितामह न कहा । फिर मुस्कराए ।

क्यो ? मुस्कराय क्यो ? इसमे रहस्य है क्या ? सत्यवती ने पूछा ।

रहस्य नही, लेकिन कुबुद्धो की अज्ञानता जरूर है । मेरे विरुद्ध निरतर षडयत्र चलाया जा रहा है विरोधी राजाओं द्वारा । उनसे सहानुभूति रखन वाले, या उनके क्रीत दलाल, हमारे राज्य म भी मौजूद है । वह गल्पिकाए गढ गढ कर चरित्र हनन के लिए प्रसारते रहते ह । भीष्म ने सहजता से कहा ।

तुम उनसे निपटत क्यो नही ? सत्यवती रोष मे आ गई ।

दड विधान या राज्य प्रहार, दोनो ही उनके प्रचार का समथन होगा । यह फैलाया जा रहा है कि भीष्म कुरु राज्य का नियत्रण अपने हाथ म रखना चाहते है । उन्होने विचित्रवीय की चिकित्सा मे जानकर असावधानी बरती । अम्बा, काशिराज, भगु, ऋषिवग, मेरे विरुद्ध अन्य राज्यो को तयार कर रहे हैं ।

सेना ले जाकर सवक सिखाओ । यह साबित कर दो कि भीष्म का पराक्रम सोया नही है । यह आवश्यक है भीष्म वरना शत्रुओ के हौंसले बढ जायेंगे। काटे को कडा होने से पहले ताडना रणनीति है । सत्यवती आवश म हो गई ।

राजमाता, आप क्या आवेश मे आती ह ? राज्य सचालन मे झूठे-सच्चे आरोपो का सामना करना होता है । मेरे उत्तरदायित्व और सकल्प मेरे साथ हैं। मैं क्या आधारहीन आरोपो की परवाह करता हू ? पितामह न राजमाता को ठडा-सीला करना चाहा ।

भीष्म, तुम्हारा-सा सयम और दढता मैं कैस लाऊ ?

निस्वाथ कम को अपना कर । यह मानकर कि हम निमित्त मात्र हैं । बहु-अश के कल्याणकारी लक्ष्य की पूर्ति मे यदि अल्प लोगो के हित प्रभावित होते हैं, तो यह न्याय कि विवशता है । यदि दूसरे मुझे महत्त्वाकाक्षी मानत हैं तो वह उनकी दृष्टि है । वह क्या समझें कि भीष्म की नियति ब्रह्मर्षि बनन की

हानी चाहिए थी, पर वह फसता रहा है मिथ्या मरीचिकाओं में। यही तो विडबना है जीवन की, भ्रमजाल की। पितामह न गहरी नि स्वास खाची। उनकी दृष्टि जस लोकोत्तर होकर किमी अदृश्य को चाहन लगी।

भीष्म, अतिरिक्त गम्भीर मत होओ, तुम्हारा अद्वितीयपन भी डराता है। राजमाता वास्तव म सहम गइ।

भीष्म, न उन्हे देखा, मधुरता स बोले—राजमाता, कोई स्थान तो हो जहा से अपने स द्वद्व करता हुआ व्यक्ति, मन की कह सके।

भीष्म जब तुम जैस आत्मजयी की यह दशा है तो हम ता

देह धम की अनिवायता है। भीष्म तुरन्त बोले। न्याय और अन्याय, धम अधम, अध्यात्म और भौतिकता, पाप और पुण्य, मनुष्य के ही द्वद्व हैं। इतिहास यदि बनता चलता है तो सस्कृति भी नय सत्या को सामन रखती है। हम निमित्त भी है, और कर्ता नियता भी।

राजमाता को भीष्म कभी कभी सजीवनी सी पकडा दते है। घोर टूटना को सहता हुआ अत बल पा लता है। कर्ता होने का अभिशाप वरदान प्रतीत होन लगता है। तब यह प्रश्न छोटा हाता जाता है कि जो प्रतीत है वह सत्य है, या सत्याभास।

राजमाता न अम्बालिका स बात करने के पूव अम्बिका का सहारा अपनाया। उन्होन अम्बिका से कहा कि वह अम्बालिका को बता दे, द्वपायन को निमत्रण भेजा जा रहा है। उसको भी इत सावकालिक मागलिक काय के लिए तैयार होना चाहिए। इसी म उसका जीवन साथक बनेगा, प्रजा का हित सधेगा।

अम्बिका ने जब अम्बालिका को समझाना चाहा तो उसे लगा वह कही अदर स विरोधरहित ह। मा बनने की कामना को जाग्रत करना चाहा ता लगा वह पहले से पक चुकी है।

अम्बालिका ने उससे कहा—मैं हर परिस्थिति के लिए तयार हू, अम्बिका। देह की कामनाए खली हुई हैं, पुत्र की इच्छा बलवती है। मैं भी उस स्थिति से गुजरना चाहती हू जिससे तू गुजरी है। मैं प्रजाहित या राज्यहित आदि कुछ नही जानती हू बस मरे अकलेपन का सहारा मिलेगा और मा होने का अधिकार प्राप्त हागा, यही पर्याप्त है।

अम्बिका न राजमाता को ज्यो का त्यो बता दिया था। राजमाता को साहस मिला था इस उत्तर स। वह अम्बालिका स मिलने का तय कर एक दिन उसके पास आइ। इधर उधर की बात कर उन्होने मुख्य बात कही।

बटी, स्त्री की साथकता मा हान म है।

मैं चाहती हू। अम्बालिका न उत्तर दिया।

द्वैपायन महर्षि की तप-तपस्या और ज्ञान अनत है। ऐसे ब्रह्मर्षि की सतान अद्वितीय होगी।

आपने यह रहस्य अम्बिका को क्या नही बताया था कि आपने किस ऋषि को नियुक्त किया है? अम्बालिका ने अचानक प्रश्न किया।

राजमाता के लिए प्रश्न अप्रत्याशित था, परन्तु फौरन वोली—कोई विवशता हो सकती हो।

विवशता इस सारी स्थिति म ही है, राजमाता!

तुम्हारी स्पष्टवादिता और असहमतियो का मैं आदर करती हू। परन्तु सब का उत्तर एक है। तुम्हे भी किसी दिन राजमाता की भूमिका लेनी होगी। तब, अपने-आप समझ जाओगी।

अम्बालिका निष्प्रश्न हो गई।

राजमाता ने मीठे स्वर म कहा—द्वैपायन के अनुष्ठान की शत है अम्बालिका कि तुम तन, मन, आत्मा और भावना स उनम एकाग्र होओगी। तभी सफलता मिलेगी। मैं पक्ष पयन्त द्वैपायन को आमन्त्रित कर रही हू। तुम्हारी स्वीकृति है?

प्रयास करूगी, राजमाता। मेर प्रश्नो को अयथा नही लीजियेगा। यह मरी स्वाभाविकता है। आप मेरी मा भी हैं।

राजमाता ने जस गढ जीत लिया। वह हर्षित हो उठी थी। आशीर्वाद दकर चली गई।

(१८)

पितामह अपने आराधना गह मे आसन पर ध्यान मुद्रा मे बठे थे। आखें मुदी हुई थी, हाठ मत्र का सस्वर जाप कर रहे थे।

प्रात का समय ठण्डी बयार व चिडिया की चहचहाहट से सकेतित हो रहा था। नही, वक्षो के पत्तो की मर मर ध्वनि और प्रसार लेता हुआ उजाला, दिन के कली के समान खुलने का आभास दे रहा था। प्रकृति शात, स्वच्छ, और ताजी थी। दूर पशुशाला से गाया की आवाज ताल की तरह कभी इकहरी, कभी सम्मिलित सुनाई पड जाती थी। पितामह की एकाग्रता स्वर माध्यम से मत्र से गुजरित अपने ब्रह्माण्ड मे विचर रही थी। अक्षरा का घोष उस अद्वितीय ब्रह्माण्ड मे निनादित था। फिर पितामह के हाठो ने हिलना छोड दिया। मत्र कदाचित अत म उच्चरित हो रह थे। अत का ब्रह्माण्ड मत्र ब्रह्माण्ड स प्रतिध्वनित हाने-होते एकाकार हो गया था। मत्र क स्वर शात हो गये थे। मानसिक बिम्ब शून्य मे घुल चुके थे। वह तेजस बिंदु भी, जो सूय की लघुतम कण-आकृति की तरह तीव्र गति से घूम रहा था, अब वह तिरोहित हो रहा था। पदमासन म स्थिर दह कदाचित आधार मात्र थी। सास प्राणवायु की लय क अधीन होकर उसकी गति

ले रही थी। देहातीत होकर ध्यान, स्वय म अस्तित्व का चिह्न बन गया था। वह इसी तरह बठे रह।

उसके बाद जैसे वह ऊध्व चढाव धीरे धीरे देह चेतना की ओर उतरने लगा। फिर देह चेतना बढने लगी। इन्द्रिया सक्रिय हुई। पितामह ने आखें खोला। सामने की दीवार दखत रहे कुछ पल। आसन खोला। खडे हुए। गवाक्ष के निकट आकर ताजी सी प्रकृति का देखने लग।

उजाला और उजला हो गया था। सूर्योदय क होने की पूर्व सूचना वातावरण दे रहा था।

पितामह बाहर आ गये। वक्षा के बीच घूमने लगे। फिर वह शस्त्राभ्यास के स्थान पर आ गये। व्यायाम करने के पश्चात उन्होंने धनुष और तरकस उठाया। बाणो से सधान करने लगे। किसी भवरे की गुजार सुनाई दे रही थी, पर वह कहा है, दीख नही रहा था।

पितामह ने गुजार पर एकाग्रता ली, गति और दूरी का मानसिक अनुमान लिया, और बाण छोड दिया।

गुजार बद हो गई।

शस्त्राभ्यास करके वह पुन भवन मे लौट आये।

पितामह अल्पाहार लेने तथा विश्राम करने क पश्चात उस विशिष्ट कक्ष मे आ गये जहा दशन करने वाले अपनी जिज्ञासाओ का समाधान प्राप्त करने की इच्छा रखन वाले, या मत्री अथवा सम्मानित जन आते थे। प्रजा के सामान्य व्यक्ति भी इसी समय पितामह से मिलते थे तथा अपनी समस्या उनके सामने प्रस्तुत करते थे। सेनापति का यदि किसी विषय पर राय लेनी होती थी तो वह इसी कक्ष म आकर मिलते थे। जैसी समस्या होती थी पितामह उसका समाधान बताते थे। आवश्यकता पडने पर व्यवस्था प्रभारियो का आज्ञा देते थ।

पितामह का यह दैनिक कायक्रम था जो बडा व्यस्त तथा विविध होता था। यहा वह अपने से भी भिन्न, कुशल शासक होते थे।

राजमाता ने सूचना करवाई थी कि महर्षि कृष्ण द्वपायन का आमन्त्रित करना है तथा उनके स्वागत की व्यवस्था करनी है। पितामह उसी की व्यवस्था कर रहे थे। उन्होने सबधित प्रभारियो को बुलवाया था। जसे-जसे प्रभारी आत थे, आदश पाते जाते थे।

अन्त म परिषद के मन्त्री और राजपुरोहित आये हैं।

राजनीतिक सूचना म उभर कर आया कि पितामह के विरुद्ध कुछ राजा सगठन बनान का प्रयास कर रह हैं। विद्रोह के लिए उन्होन बना म रहने वाली जाति और उनक सरदारो को भडकाया है।

आप सबकी क्या राय है ? भीष्म पितामह न पूछा।

एक वृद्ध अमात्य बोले—अब शान्ति रखने से काम नही चलेगा। ऐसे राजाओ में से किन्ही दो से अधीनता स्वीकार करान का प्रयत्न किया जाना चाहिए। पहले संधि करने का प्रस्ताव रखा जाये यदि वे नही मानते है तो युद्ध करना चाहिए।

सेना के साथ प्रस्थान करने का समय क्या उचित है? हमारी खुद की प्रजा राजा न होने का असंतोष पाले हुए है। पितामह न प्रश्न किया।

मुख्य सेनापति ने आश्वस्त कराया—सेना किसी दुविधा मे नही है। उनकी आस्था आपके शौर्य म है।

पर मैं अभी नही जा सकता। मेरी इच्छा भी नही है। दुश्मनो को यह कह कर सगठित होने का अवसर मिलेगा कि यह भीष्म पितामह की प्रसार प्रवृत्ति है।

पहले भी कब नही कहा। चित्रागद की असहायता और उनके द्वारा किये गये युद्ध, दूसरो की दृष्टि मे आपकी योजना के हिस्से थे। दूसरे आमात्य ने कहा।

मैं तो अपने म आश्वस्त था। इस समय का रण यदि मुझे करना होगा तो मेरे ही नाम मढा जायेगा। मैं आपको बताना चाहता हू, भविष्य मे भी मैं राज्य के सरक्षक की भूमिका निभाना चाहता हू—राजा की नही। मैं तभी सैन्यसचालन करूगा जब कोई राजा आक्रमण करने की विवेकहीनता दिखायेगा।

राज पुरोहित न पितामह के सामने दूसरे सदर्भ की जन चर्चा रखी। नही कहा जा सकता, यह कुछ विशिष्ट ब्राह्मणो की राय हो। उन्होने कहा—प्रजा म विचार है कि क्योकि अम्बिका व अम्बालिका रानिया अभी युवा आयु की हैं, उनका पुनर्विवाह कर दिया जाये। कुरुवश की बेल फले फूलेगी।

भीष्म पितामह के मुख के भाव बदल गये। उनके चौडे माथे पर सिकुडनें प्रकट हुइ तथा आखो मे गुस्सा झलक आया। वह तीव्र स्वर मे बोले— आपद धर्म मे किसी स्थिति को स्वीकार करने के मतलब यह नही है कि सामान्य मान्यताओ का अतिक्रमण किया जाये। क्या अम्बिका और अम्बालिका का पुनर्विवाह राज वशो मे विधवाविवाह का उदाहरण नही बन जायेगा? प्रजा म यह विचार हो या उसके नाम स कुछ ब्राह्मण पुरोहित अपनी ओर से दबाव डालना चाह रहे हो, ऐसा कदापि नही हो सकता। राजमाता की आज्ञा से महर्षि व्यास द्वारा अम्बिका कृतार्थ हो चुकी है—अम्बालिका के लिए महर्षि आएगे। उनके स्वागत और उनके द्वारा किये जाने वाले अनुष्ठान का प्रचार प्रजा म पूववत किया जाय। रानियो के विवाह का प्रस्ताव मूढता है। क्या कोई भी राजा राजकुमार घर जामाता रह सकना स्वीकार करेगा?

पितामह की त्यवर समझकर राजपुरोहित सन्न रह गये। उन्हे यह कल्पना नही थी कि भीष्म इस कदर क्रोध मे आ जायेंगे। क्षण भर के लिए मौन छा गया।

पितामह, जो अपने को शात करने का प्रयत्न कर रहे थे, अपनी उद्विग्नता

पर काबू नही पा सके। वह उठे और कक्ष छोडकर अन्दर चले गये। एक अभेद्य आतक माहौल पर हावी हो गया। उपस्थित लोगो के पास जाने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नही था।

पितामह विश्राम कक्ष म आकर लेट गये। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि वह इस तरह से सतुलन क्या खो बैठे। उनका अत ऐसा कैसा हो गया है कि इन बहना की बात आते ही उत्तेजित हो जाता है। परिस्थितिया क्या सहज शान्ति को इस सीमा तक छिन भिन कर देती हैं। कही यह उनके किसी तिक्तपूर्ण अनुभव का प्रतिफलन तो नही है।

(१९)

वर्षा भी कितनी मधुर लगती है। अम्बिका बोली।

हा, पर जब कई दिन तक झडी-सी लग जाती है तब जी ऊबने लगता है। अम्बालिका ने उत्तर दिया।

फुहारा म पक्षी, पशु वृक्षो मे छुपे रहते ह, रुकते ही कलरव कर उठते हैं। अम्बिका बोली।

प्रकृति मुग्धा नायिका-सी जा हो उठती है। अम्बालिका न टिप्पणी की।

हस, बतखें, मछुवा पक्षी सरोवरो पर एकत्र हो जाते ह—जल म तरते हैं। उसन आग जोडा।

वह मछुवा-पक्षी कौन-सा होता है। अम्बिका ने पूछा।

बडा सुन्दर होता है। रगीन। लम्बी चोच। पानी की सतह पर उडता है। मछली देखते ही डुबकी मारकर झपट लेता है। चाच मे दबाकर वृक्ष की टहनी पर बैठ जाता है। मछली तडपती रहती है, वह निगल जाता है। अम्बालिका बाली।

देख, एक साथ दो मोर कैसे पख फलाकर नाच रहे हैं। अम्बिका ने नाचते हुए मोरा की तरफ सकेत किया।

मोरनी को रिझाने के लिए। अपन सौन्दय म भटका हुआ है पैरा को नहीं देखता, कितने कुरूप हैं। अम्बालिका ने सुन्दरता म असुन्दरता की व्याख्या की जैस।

सम्पूर्ण सुन्दर कौन होता है—अपूर्णता सृष्ट हुए की नीयति है। अम्बिका न कथन-सा कह दिया। मन क्या कभी-कभी स्वत दर्शन बोलता है—स्वभावत ?

पर अपन को सम्पूर्ण सुन्दर कौन नही मानता। स्वय पर रीझना मनुष्य की विवशता है—चाहे स्त्री हो या पुरुष। इसी रीझ म वह अपनी असुन्दरता को गौण करता हुआ स्व म लिपटा रहता है। न रहे तो जिए कैसे ? दूसरे उस नगण्य करने मे कसर नहीं छोडते। अम्बालिका बाली।

नगण्यता के पूरक, सपने होते हैं। उनके फलन की आशा नगण्यता को निष्कासित कर देती है—तब रह जाते हैं सपने, अभिलाषाए, उनमे रमा रहने वाला मन। फिर पल-पल सुन्दर लगता है। प्रकृति भी सुहानी, चचला, पुष्पवती, लगती है। जैसे पुत्र को जनन की काक्षा म विस्मृत मा। अम्बिका प्रकृति को प्रमुदित हो निहारने लगी। उसी म खो-सी गई।

अम्बालिका अपने विचारो मे खो गई। दोनो मे स किसी को ख्याल नही रहा कि वे बोलते-बोलत रुक गई है और अपन मे खो गई हैं।

दोनो मोर पख फैलाये नाचे जा रहे थे। तभी वृक्ष से उडकर मोरनी धरती पर आई। वह मोरो के पास घूमती रही। कभी रुककर मोरो को देखने लगती थी। कभी चोच घास मे घुसाकर दाना खोजने लगती थी या कीडे।

अम्बालिका दासिया कहती हैं आपके अद्वितीय सुन्दर पुत्र होगा। चक्रवर्ती और अध्यात्म मे ऋषि तुल्य। मैं तो चाहती हू होत ही बडा हो जाय। क्या महर्षि व्यास वरदान से ऐसा नही कर सकते ? अम्बिका कह रही थी।

अम्बालिका अपनी हसी नही रोक सकी।

हस क्या रही है ? मैंन जो पूछा है उसकी पुष्टि कर।

अगर द्वपायन की तरह कुरूप और मछली की गध वाला हुआ तो ? अम्बालिका बोली, फिर हास्य किया। उसको चदन और केशर के उबटन से रगडना, सुगधित जल मे स्नान कराना बडा होते होत शायद सुन्दर और सुगन्ध वाला हो जाये।

तू सीधे तरह से कभी नही बोलती। तू क्या करेगी ? तरे लिए भी तो उनके पास निमत्रण जा चुका ! अम्बिका न खीझकर कहा।

मैं तेरी तरह हवा म नही उडती। मैं क्या करूगी, मैं धार चुकी हू मन म।

अम्बिका ने भयभीत हो पूछा। क्या लौटायेगी उन्हे ?

नही।

तो

मैं अपनी इच्छाओ और कामनाओ को इतना प्रबल करूगी अपनी आत्म शक्ति और सौदयभावना को इतना उत्कृष्ट करूगी

उनका तेज असहनीय है। अम्बिका ने टोका।

होने दे। मैं उनकी कल्पना को रोम रोम मे बसा लूगी।

किसकी ?

जिनका सौदय कामदेव का पराजित करता था—विचित्रवीय। मेरी इस देह के वही स्वामी रह हैं—मेरे मन के भी।

तब चक्रवर्ती पुत्र नही होगा। भोगलिप्सु होगा।

अम्बिका, तुम जितनी शुद्ध हा मन से, उतनी ही अशुद्ध भी। क्या मुझसे ईर्ष्या

पनपा रही हो मन मे ? या अपने दिनामे खोजती रहती हा ? दोनो स्थितिपा हम एक दूसरे म दूर करेंगी। तुम उडी हा मुझसे। अम्वालिका गम्भीर हो गई थी।

अम्बिका को वास्तव म ध्यान नहीं रहा था वह क्या कह गई थी। उसने अम्वालिका को देखा, स्नेह मा झलका आखा म। बोली—मरा चित्त स्थिर नहा रहता, अम्बालिका। कभी कल्पनाओ मे उडता है, कभी सदिग्धताआ म फस जाता है। तेरे सहारे मैं रही हू। तू मुझस श्रेष्ठ है, साहसी है, मैं जानती हू।

बस, अधिक नहीं। वहीं स फिर शुरू हो—वर्षा कितनी मधुर लगती है। पशु, पक्षी वृक्ष मे दुबके रहत है। वर्षा के ठहरते ही सुरभित स्थानों स बाहर निकल आत है। खेलते है, कलरव करत है। मोर पख छितराकर नाचत हैं। कोयल कुहकती है। सगेमर पुर जात हैं। फूल रगो के छीटे बिखेर देते हैं। विधाता ने चाहा तो तरे अद्वितीय सुदर पुत्र होगा—चक्रवर्ती, ऋषितुल्य, जा कुरुवश का तेजस्वी सूय बनकर चमकेगा।

अम्बिका सुन रही थी विस्मित-सी। यह अम्वालिका किन तत्त्वो की बनी हुई है—धरती, वायु, अग्नि, तरलत्व या आकाश।

(२०)

महर्षि द्वैपायन के आने की तिथि की स्वीकृति आ गई। मत्रिया और विशिष्ट ब्राह्मणो का दल उन्हें लाने के लिए भेज दिया गया। नगर म पहले की तरह स्वागत की तैयारी की आज्ञा प्रसारित कर दी गई। प्रजा म कहा गया कि प्रार्थनाए तथा यज्ञ आयोजित कर कि कुरु राज्य मार्तंडवत उत्तराधिकारी प्राप्त करे। द्वैपायन ऋषि छोटी रानी अम्बालिका से नियोग करेंगे।

राज-भवनो और नगर मे अनुष्ठान लहर पुन दौड गई। दूर-दूर के ग्रामो से पुरुष व स्त्री नगर म महर्षि के दर्शनार्थ आने लग। वर्षा की अनिश्चितता के कारण विशेष प्रबध किया गया। वश्या न अपना कोष आवभगत के लिए खोल दिया। ठहरने व मुफ्त भोजन क भडारे स्थापित किय जाने लगे। गज, अश्व, रथ आदि की सज्जा व सामान साफ-सुथरे किये जाने लग।

रनिवास में भिन्न प्रकार की लहर थी। अम्बिका के वक्त बहुत कुछ घोषित होते हुए पर्याप्त अघोषित था। राजमाता किसी अनपेक्षित शका से ग्रस्त थी। पर अब, वह मुक्त होकर व्यवस्था कर रही थी। प्रजा मे यह सूचना भी प्रसार पा चुकी थी कि अम्बिका न गर्भ धारण कर लिया है तथा शीघ्र मा का पद प्राप्त करगी।

अम्बिका स्वय राजमाता सत्यवती क साथ सहयोग कर रही थी। अम्बालिका क शृगार मे नियुक्त दासिया विशेष सेवा म लगी थी कि अम्बालिका का

का सौंदय इन्द्र की किसी भी अप्सरा से उन्नीस न पडे । अम्बालिका खुद भी इस तरफ से अत्यत सचेत थी । इसके अतिरिक्त राजचिकित्सक द्वारा प्रस्तावित औषधि का सेवन निरतर चल रहा था—यह राजमाता की ओर से व्यवस्था थी ।

भीष्म पितामह महर्षि की व्यवस्था अपनी देख-रख म करा रह थे । अब की एक विशेष यज्ञ द्वैपायन द्वारा सम्पन्न किया जाना था जिसके लिए वह आश्रम से ऋत्विक ला रह थे । इनके अतिरिक्त अन्य बहुतो को निमन्त्रित किया गया था, वेदिया बनवा दी गई थी ।

अम्बालिका दहिक, मानसिक व आत्मिक रूप से स्वस्थ अनुभव कर रही थी । उसने अपनी दिनचर्या मे पूजन तथा ध्यान जोड लिया था ।

राजमाता एकात मे प्रायना करती—जगत नियता, अपना वरद हस्त कुरु-वश पर रखो ! ऐसा पुत्र अम्बालिका का प्रदान करो जो भक्ता की कीर्ति को सुदूर देशो तक पहुचाये ।

निश्चित दिन महर्षि कृष्ण द्वैपायन का पदापण हुआ । नगर मे पूववत उनका भव्य स्वागत हुआ । दान-दक्षिणा, यज्ञ-अनुष्ठान का क्रम प्रारम्भ हो गया । द्वैपायन को भवन के अत पुर के भाग म ठहराया गया । पितामह पुरोहित तथा ब्राह्मण वग, कमचारी व दास-दासी वग, व्यवस्था तथा सेवा मे लग गय । राजमाता ने महर्षि के दशन किये । द्वैपायन ने फिर बड़ी अयो को चकित करने वाला व्यवहार दर्शाया । उन्होन प्रथम साक्षात्कार मे राजमाता सत्यवती के चरण स्पश किय । राजमाता ने आशीर्वाद दिया । सत्यवती अब की प्रसन्नचित्त तथा उत्साही थी । दुविधा नही थी तो चित्त मुक्त था ।

महर्षि, अबकी मनोकामना निर्दोष पूरी होगी ? उन्होने विनती की ।

विधाता पर विश्वास रखो । कामनाओ की मरीचिका तो अनन्त है । महर्षि ने उत्तर दिया ।

मन बधता नही महर्षि, पक्षी की तरह भविष्योन्मुख ही उडता है ।

उसके परो म सुनहरी डोर बधी है उसे पहिचाना ? भविष्य हमेशा चित कबरा होता है । इसलिए उसे इसी रूप मे स्वीकारना चाहिए राजमाता !

सत्यवती उदास हो गई । उन्होने समझा महर्षि किसी अप्रिय होनी को छिपा रहे है । वह बोली—महर्षि आध्यात्मिक शक्ति से ऐसा प्रयास करें कि अब निराश न होना पडे । अम्बिका पुत्र की कामना को कल्पनाओ से पोस रही है । उसे क्या पता, वह अधे पुत्र को जन्म देगी । यह सत्य सिफ मैं और पितामह जानते हैं ।

तुम्ह उसे बता देना चाहिए था, राजमाता ! आखिर एक दिन तो वह सत्य

प्रकट होना ही है। अब समय भी परिपक्व होता जा रहा है।

साहस नहीं हुआ, महर्षि। यदि यह सत्य उसे बता देती तो अम्बालिका कदापि तैयार नही होती। वह बच्ची है। पर साहसी है भावनामयी है, जिद्दी है।

द्वैपायन चौंके। क्या उसे भी नहीं बताया है कि नियोग के लिए मैं प्रस्तुत होऊंगा?

बता दिया है। वह पूर्ण रूप से तैयार है।

समर्पण जिस कोटि का होगा फल उसी कोटि म प्राप्त होगा। इतना अवश्य है कि उसका पुत्र कुरु वश का कर्णधार होगा। महर्षि ने जैसे राजमाता को वरदान दिया हो।

राजमाता ने हाथ जोड़े—धन्य धन्य। महर्षि। धन्य धन्य मेरे पुत्र।

द्वैपायन स्थिर रहे—जसे गम्भीर सागर। जैसे रवनहीन नीलाभ।

सत्यवती तृप्त होकर वहा से चल दी।

(२१)

पूरे मास यज्ञ एव अनुष्ठान चलता रहा। द्वैपायन स्वय विशिष्ट साधना मे थे। नियुक्त होने का शुभ दिन आ गया। ज्योतिषियो द्वारा मुहूर्त को प्रबल हितकारी बताया गया। अम्बालिका का कक्ष विशेष रूप से सज्जित एव मनोहारी सुगधो से गधित किया गया था। रात्रि के प्रकाश के लिए दीवटो पर स्थान-स्थान पर दीपक रखे गये थे। अम्बालिका, जो स्वय अद्भुत रूप से सुन्दर थी प्रसाधनो के प्रयोग से और अधिक सौंदर्यवती लग रही थी। फूलो की मालाओ और उनके अलकारो से सजी वह स्वर्ग की अप्सरा-सी दीख रही थी। कदाचित वैसा ही शृगार उस समय किया गया था जब प्रथम बार रूपवान विचित्रवीर्य से उसका मिलन हुआ था। लजीली पलकें उठाकर जब उसने राजा को रेशमी उत्तरीय मे देखा था, वह देखती रह गई थी।

क्या देख रही हो कौशलकुमारी? सामने खडे युवा राजा ने पूछा था।

वह मौन रही थी। पर के अगूठे फर्श पर सिकुड फैलकर सहज हरकत कर रहे थे।

बोलोगी नही।

उसने सिर झुकाये-झुकाये उनकी तरफ गति ली और चरणो मे झुकी थी। विचित्रवीर्य ने बीच मे हाथ फैलाकर साध लिया था और वक्ष से लगा लिया था। इसी तरह की स्मृतिया दिप दिप कर रही थी।

अम्बालिका प्रतीक्षा कर रही थी महर्षि के प्रवेश की, पर उसकी आखो मे विचित्रवीर्य घूम रहे थे।

उसने आखें मूदी और मन मे दोहराया—स्वामी, भोग और तप्ति तुमन दी, अब समर्पित होने जा रही हू महर्पि को। आशीर्वाद दो की अनुष्ठान सफल हो। मेरे पुत्र को तुम्हारा सौंदय और ऋपि का अध्यातम प्राप्त हो।

वह क्षण भर के लिए आखें मूदे रही। तभी उसको पदचाप सुनाई दी। वह स्वागत करने क लिए खडी हो गई।

अम्बालिका की आखा म अब विचित्रवीय का बिम्ब नही था बल्कि वह ऋपि द्वैपायन की कल्पना कर रही थी जिनकी आयु और कृष्ण तन के सम्बध मे उसने सुन रखा था। कल्पना के लिए अधिक अवकाश नहीं मिला। ऋपि प्रत्यक्ष उपस्थित थे। पूरी देह पर अधोवस्त्र, श्वेत दाढी, जटा तथा तेजस्वी आखें स्पष्ट हो रही थीं। शेप शरीर वृक्ष के काल तन सा था।

अम्बालिका ने साहस करके उन्ह देखा तथा अभिवादन किया। उनके निकट आते ही मछली की दुगध का भभका मा आया जो उसके मस्तिष्क मे सीधा प्रवेश कर गया। उसे लगा कि वह मूर्च्छित होकर गिर पडेगी।

उसने सास अवरुद्ध कर जैसे शक्ति को थामा, पर इसी बीच आतक का भाव उस पर प्रभावी होने लगा। वह स्वत पीली पडने लगी।

तुम छोटी रानी अम्बालिका हो ? द्वैपायन ने पूछा।

हा, महर्पि ! आप आसन ग्रहण करिये। उसने उत्तर दिया। द्वैपायन आसन पर बठ गये।

तुम्हारी कामना मे महायोग्य पुत्र है ?

हा, पर कामना मे, कुरुवश को उत्तराधिकारी उपलब्ध करने का उद्देश्य प्रमुख है।

तुम्हारा सौदय अद्वितीय है। क्या इसका गव नही है तुम्ह ? ऋपि ने पूछा।

नही, सौदय का द्रष्टा और भोक्ता पति होता है, वह मैं खो चुकी हू। उनकी स्मति मात्र मेरी पूजी है। अम्बालिका के शब्दा मे बल था।

साहस और भय दोनो सक्रिय है तुम मे—वितष्णा तो नही पैदा हो रही है, मुझसे ? द्वैपायन ने पूछा।

भय अनायास है। वितष्णा नही है, क्योंकि तष्णा भी नही है।

तब समपण कसे होगा ? द्वपायन ने पूछा। अम्बालिका के उत्तर उन्ह भले लग रहे थे।

समपण भाव है, उसम देह बीच मे कहा है ! महर्पि, आपने मेरे सौदय की सराहना की है। क्या आपका ससग आप द्वारा मेरा भोग होगा ? या मोह होगा आसक्ति या अनासक्त क्रिया ?

द्वपायन स्तम्भित रह गये। अम्बालिका के प्रश्न अप्रत्याशित थे। वह आगे बोली—क्षमा करें महर्पि मैं आपके सामने तुच्छ और नगण्य अवश्य हू, पर मैं उस

भाव से प्रमित होकर अपने को आतंकित करना नहीं चाहती, वरना आपका प्रबल दान निश्शक्त तथा हताश ग्राहिका को होगा।

साधु! साधु! निश्चित रूप से तुमने अपनी आत्मा को उन्नत किया है। मेरा अनुमान है, यह अनुष्ठान सफल होगा। कुरुवंश यशस्वी तथा योग्यतम उत्तराधिकारी प्राप्त करेगा तुम से। तुम्हारे पुत्र में तुम्हारे भी सद्गुण होंगे। द्वैपायन प्रसन्न हो उठे थे।

मेरी जिज्ञासा अभी भी अनुत्तरित है? अम्बालिका ने कहा।

पहले तुम भयभीत होने से मुक्ति प्राप्त करो।

वह अनायास और स्वभावगत है, उस पर वश नहीं हो सकता महर्षि, पर मैं मन से प्रबल हूं। देह पूर्णतः स्वीकार करेगी आपका दान। वह दान मोह में होगा आसक्ति के साथ या अनासक्त होकर?

मिश्रित होगा। मेरी शक्तियां से केन्द्रित होगा। तुम उसे ग्रहण करने की योग्य शक्ति में हो। मन, वचन, कर्म से प्रस्तुत हो। अतः

समर्पण आपकी तरफ से भी पूर्ण हो, महर्षि। अम्बालिका ने द्वैपायन के चरण स्पर्श किये। फिर द्वैपायन को हाथ पकड़ कर शैया तक लाई। उन्हें बैठने का निवेदन किया।

द्वैपायन हर्षित थे। मन में योग्य पात्रता से नियोजित होने की संतुष्टि थी। उन्होंने शैय्या पर बैठकर ध्यान साधा। अम्बालिका उनके दीप्त मुख को सम्मोहित सी देख रही थी। शय्या पर जब उसने अपना अधिकार भी जाना और उस पर बैठ गई। महर्षि पर उसने अपना अधिकार जाना और उसके चेहरे पर दन दनाहट आ गई। आसक्ति आंखों में झलक उठी। द्वैपायन ने जब आंख खोली तब दूसरी अम्बालिका को पाया—कामना से भरपूर संगम को आतुर कामिनी।

द्वैपायन ने उत्तरीय एक तरफ रख दिया। अम्बालिका शय्या पर लेटी। द्वैपायन कितने आसक्ति में थे कितने सौंदर्य से अभिभूत, कितने तटस्थ, यह उन को स्वयं नहीं पता था। अम्बालिका की पलकें सम्भावित आनन्द की कल्पना में शनैः शनैः मुंदने लगीं। वह देही होकर जैसे देहातीत हो गई। जैसे रति की जुड़वा भगिनी।

भोर होने पर द्वैपायन कक्ष से जा चुके थे।

(२२)

राजमाता, छोटे मुंह बड़ी बात हो जाय तो हो जाये पर मन पूछे बगैर रह नहीं पा रहा है। एक बूढ़ी औरत, जो सत्यवती के सामने जमीन पर बैठी उनके पैरों की उंगलियों को दबा रही थी, बोली।

क्या ? सत्यवती को लगा जैसे उसी की चिन्तन शृंखला में किसी ने उसे सम्बोधन किया हो।

आपको राज के कामों में व्यस्तता, आपकी पूजा उपासना में बढोतरी के होते हुए, मुझ सविका को ऐसा क्या लगता है कि आप बहुत अशान्त हैं।

हां। जितना शान्ति पाने के लिए प्रयास करती हू, उतनी ही अशान्ति में दबती जा रही हू। सत्यवती ने जैसे उस बुढिया से नही, अपने मे कहा हो।

क्यों, राजमाता ? बुढिया ने पजा को हल्की मुट्ठी से ठुक-ठुक करते पूछा।

क्यों का उत्तर इतना सहज होता तब सुलझाव भी दूर नहीं होता। चक्रव्यूह युद्ध मे रचना पाते हैं, खण्डित होते हैं। उसी तरह भाग्य चक्रव्यूह रचता है। हमे लगता है उसमे से निकलने का रास्ता मिल गया, पर जब रास्ते के साथ चलते हैं, तब लौटकर वही जाते है जहा से चले थे। राजमाता ने बुढिया को देखते हुए कहा।

यह चक्करदार जवाब उसकी समझ मे नहीं आया। बोली—राजमाता, मैं मूढ बुद्धि हू। मेरी समझ मे नही आया। आपको अकेलेपन मे दु ख को पोषते नही पाती तो नही पूछती। फुटके दूध मे फुटकन तैरती दीखती है, क्या हुआ दूध साबित दीखे।

मैंने कहा ना, भाग्य ने जो चक्रव्यूह रचा है उसे तितर बितर करके निकल नही पा रही हू। दु खी नहीं हू, चिन्ता मे हू। पंजो की नसों को अगूठे से दबा, ताकि पीडा बाहर झड जाये।

बुढिया के दोनो अगूठे आदेश के अनुसार चलने लगे। उसकी सीधा-सादा उत्तर पाने की बेचैनी शांत नही हुई। वह कुछ पलो तक पंजे दबाने की क्रिया करती रही। राजामाता अपने सोच मे खो गयी।

आप तो भाग्यशालिनी है। अम्बिका, अम्बालिका दोनो रानियां कुमारो को गर्भ मे पोषण कर रही है। वह दिन जल्दी आने वाला है जब आप दादी का पद पाएगी। महल मे कुमार खेलेंगे।

खेलेंगे क्या ? तुम अनुभवी धात्री भी हो। तुमने अम्बिका, अम्बालिका को जाचा ? क्या विकास तथा स्वास्थ्य विघ्नरहित है ? राजमाता ने आतुरता से पूछा।

बिलकुल विघ्नरहित है। दोनो के स्वास्थ्य पूर्ण है। चेहरे पर अकल्पनीय तेज है। इतनी सुन्दर और सुगढ हो रही है जैसे पका फल। जो देखकर नाच उठता है। राजवैद्य की राय मेरी जाच से मेल खाती है।

तुम मुझे प्रसन्न करने के लिए कह रही हो।

मैं वही कह रही हू, जो मैंने जाच मे पाया है। आपको मेरे अनुभव पर विश्वास होना चाहिए, राजमाता ! दोनो प्रसन्नचित हैं—मा बनने के दिन की

प्रतीक्षा मे सपना म उड रही हैं।

हा, उम्र है। कल्पना का काम है भ्रम म रखना। उसी म घुमाते रहना। सत्यवती के अन्दर स एक हारी हुई-सी ठडी सास निकली, जिस वद्धा धात्री ने तुरन्त पकड लिया।

एसी थकी सास क्यो, राजमाता? उत्साह और खुशी क बजाय आपक बय पन को लगातार देखकर ही मैंने आज पूछन का साहस किया।

धात्री मैं भी बुढापे की दहरी तक आ गई हू। कहा स आए उत्साह? आवग?

छी-छी। राजमाता बुढापे की देहरी अभी कोसो दूर है। भीष्म को देखो जितनी आयु बढ रही है उतना ही तज, उतनी ही बलिष्ठता बढ रही है। वह साधक है। सत्यवती ने कहा।

आप भी तो है।

मैं उनकी तरह इच्छाओ से परे, स्थिरमति, नही रह सकती। वह तो शुरू से सकल्प शार्दुल है।

बुढिया की पकड से बात फिर फिसल गई। पर उसने देखा भीष्म की चर्चा से राजमाता मे थोडा सा उत्साह आया। उसने फिरकी घुमा दी।

राजमाता, जब तक भीष्म जैसा सरक्षक हमारे आपक साथ है, उदासी निराशा, चिंता हमारे पास फटकनी नही चाहिए। आपको पता है भीष्म महर्षि द्वैपायन क आश्रम गये थे।

हा, पता है। द्वैपायन ने बुलाया था। यह नही पता कि किस विशेष काय से बुलाया था।

बुलाया होगा अवश्य किसी खास कारण स।

आप कितनी सुभागी है—द्वैपायन जैस शास्त्र जानने वाले ऋषि, भीष्म जस महान योगी-योद्धा आपकी आज्ञा को तत्काल पूरा करन वाले हैं। वही सबसे बडे और शक्तिशाली सहारे है। पर मैं, मैं भी तो हू। कितना ही परिस्थितियो को लाघती रहू, पर वह अटकती हैं। कस मा होने की कोमलता को काठ बना लू, दुर्भाग्य काम म शकाए टपका-टपकाकर घेरा बनाता रहता है।

शका को विश्वास की मार मारिय वह मार्जारी की तरह भाग जायेगी। बुढिया न विनम्र उपदेश दिया। अब उसके हाथ परो को मसलना छोड चुके थ। वह आसन बदलकर आराम स बठ गई थी। शका मार्जारी की तरह भाग जायेगी। फिर उसी की तरह लौट-लौटकर आएगी। एकात म म्याऊ म्याऊ करेगी कभी अपनी चमकती आखो स डरायगी रोयें फुलाकर घुर घुर करेगी। सत्यवती ने कहा। जाओ धात्री तुम जाओ। तुम्हारा काय समाप्त हो गया। मुझे मेरी कहा

पोह मे रहने दो। वह जैसे इस सदर्भ से उक्ता गई।

धात्री मे ठहरे रहने का साहस टूट गया। सेविका के अपनत्व जतलाने की सीमा होती है। वह जानती है, और अच्छी तरह से भाप लेती है कि एक रेखा के बाद उसका उल्लघन स्वामिनी को क्रोध मे ला सकता है। तब स्वामी हो या स्वामिनी मात्र आदेश बन जाते है। वह उठी और झुककर सम्मान देती हुई चली गई। राजमाता अपने विचारा की भवर म घिरी बठी रही।

शका को विश्वास से प्रताडित करें? किस तरह के विश्वास से? द्वपायन न गभ म पल रहे दोनो शिशुओ के सम्बध मे भविष्यवाणी कर दी है। अम्बिका ने समागम के क्षणो मे आखें मूद ली थी, अत अधा पुत्र पैदा होगा। अम्बालिका भय के कारण पीली हो गई थी, अत पाडुर शिशु जन्मेगा। एक महाबली वीय वन्त, बुद्धिमान होगा, दूसरा श्रीयुक्त वीरा म श्रेष्ठ, प्रतापी होगा। पर विधना खोट तो बाध ही दिये। अधा उत्तराधिकारी राज्य कैसे करेगा? पाडुरोग से ग्रस्त उत्तराधिकारी कितनी आयु लेकर आएगा? विचित्रवीय-सा सुदर पुत्र कितनी आयु तक जी सका है? मा के सिहरने और तप्त होने का समय आया तब छल करके चला गया। कुरवश को क्या यही अभिशाप है कि सम्पन्नता के साथ क्षय आखमिचौली खेलता रहे। कीर्ति बढती रह, परन्तु कीर्तिवान पूरी आयु न पाए? राजरानिया का सुख नसत की तरह आये, दीघ पतझड दे जाये।

सत्यवती राजमाता है पर वह नारी है। प्रौढता, धैय और सहनशीलता को परिपक्व कर सकती है, परन्तु दुख से दुख और त्रास का त्रासक्ता स कैसे अलग करके दखे! राजमाता उदास थी कि सारी उक्तिया युक्तिया उस अधेरे म निशक्त हो जाती ह जिसको भविष्य की रहस्यमयी गुफा पाले हुए है।

(२३)

अम्बिका के पुत्र-जन्म ने महल म खुशी की लहर फैला दी। यद्यपि नवजात शिशु सुदर तथा सामान्य शिशुओ से अधिक बलिष्ठ पैदा हुआ था, परन्तु उसकी दोनो आखें ज्योतिहीन थी। इस रहस्य को अम्बिका तक से गुप्त रखा गया। राजमाता, पितामह, राजपुरोहित, राजज्योतिषी आदि की गुप्त सभा हुई तथा इस विषय पर गम्भीर विचार हुआ कि क्या प्रजा मे सूचना प्रसारित कर दी जाय कि कुरुवश का उत्तराधिकारी नेत्रहीन जन्मा है। भीष्म पितामह का विचार था कि हम सत्य को नही छिपाना चाहिए। हमारे सहयोगी राजाओ को यदि बाद मे पता लगा तब वे भविष्य म हमारी नैतिकता पर शकाए उठाने लगेंगे। राज-ज्योतिषी का मानना था कि पुत्र भाग्यशाली है। कुरुराज्य की प्रतिष्ठा म उससे अब वद्धि होगी।

क्या जन्माध पुत्र का अभिषेक किया जा सकता है? राजमाता का प्रश्न था।

राजा का विचार उनकी आशा प्रजागण के माध्यम से क्रियान्विति पाती
है। क्या यह नहीं कहा जाता कि जिसके बाह्य चक्षु मुंदे होते हैं, उसके अंत
चक्षु तीव्र तथा दूरदर्शी होते हैं? हम शंकाओं से मुक्त होकर उत्सव मनाना
चाहिए। प्रजा को उल्लसित होने दीजिए। दान तथा यज्ञों को राज की ओर से
किया जाय ताकि प्रजा अपने स्तर पर भी करने के लिए प्रोत्साहित हो। वातावरण
को हवि की सुगंध तथा मंत्रों के स्वर से रचित-गुंजरित होने दीजिए। उत्सव के
आह्लाद में प्रजा उत्तराधिकारी के इस दृष्टि-दोष को महत्त्व नहीं देगी।
राजपुरोहित ने ऐसा भावुकता पूर्ण वक्तव्य दिया, जिसने सबकी स्वीकृति
पायी।

अंत में शान्तात्मा भीष्म ने सबकी भावना का सार अभिव्यक्त करते
कहा—राजमाता से निवेदन है कि वह तथ्य को उसी के रूप में स्वीकार कर
अनावश्यक दुश्चिंताओं से मुक्त हों। राजपक्ष की मन की उदासीनता, प्रजा को
गहरी उदासी से ग्रस्त कर देगी। राज की दृष्टि आशाओं की प्रेरक तथा
उत्थान गामी रहनी चाहिए। हम अपने मोहों और कामनाओं से ऊपर होकर
सत्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। प्रारब्ध, संकल्पों से तेजस्विता
पाता है। संकल्प संयम से सिंचित होते हैं। हम उत्सव को पूर्ण भव्यता से मनाना
चाहिए।

कौरव कुल की वंश स्रोतस्विनी का मार्ग शुष्क मरु की ओर हो गया था।
भय था कि काल की गति के साथ रेत का विस्तार उसके अस्तित्व को सोख
लेगा, परन्तु कामना और युक्ति ने प्रवाह को मोड़ दिया। जन्माध शिशु के जन्म
होने से यद्यपि एक कसक महल के वातावरण में ठहरी हुई चुभती रही परन्तु
उत्सव के रंग राग का बंध खुल गया। महल के द्वार पर तुरही व ताल वाद्य
क्या बजे कि नगर सुर राग तथा सुरंग से आमोद प्रमोद से रणित-क्वणित हो
उठा। नगर से सुदूर राज्यों तक संदेश फैलता गया कि कुरुवंश की हरित बेल
पर फूल खिल आया। राजाज्ञा की घोषणा के अनुसार जगह-जगह यज्ञ व
अनुष्ठान होने लगे। प्रजा ने राजकुमार के उज्ज्वल भविष्य के लिए देवी-देवताओं
की प्रार्थनाएं कीं। ब्राह्मणों व शूद्रों में वस्त्र तथा अन्न बांटे गए। राज्य कोष से
नामकरण के दिन तक निरंतर दान-दक्षिणा वितरित की जाती रही।
ज्योतिषियों के समूह ने धृतराष्ट्र नाम घोषित किया।

घटना एक ही होती है पर व्यक्ति अपने संस्कार, अपनी मति और भाव
नाओं के अनुसार उसको समय के दायरे में लेता है। फिर अपने विचारों के अनु
सार प्रतिक्रिया करता है। कितने वर्ण! कितने समाज! कितने राजे।
अपनी अपनी तरह से अंधे राजकुमार के सम्बंध में प्रतिक्रिया अभिव्यक्त कर रहे
थे। चर्चाएं यहां-वहां जहां-तहां बुदबुदों की तरह उठती थीं, फेन की तरह तर

कर तिरोहित हो जाती थी।

अम्बिका के अक मे जब पहली बार शिशु को रखा गया उससे पूर्व उसकी मानसिकता को ऐसा बनाने की कोशिश की गई थी कि उसे आघात न लगे। पर उसने जैसे ही नयन-हीन शिशु को देखा, स्थगित सी हो गई। दृष्टि थिर, भावना थिर, सिहरन थिर। वह देखती रही थी अक म लेटे शिशु को।

परिचारिकाए सयत्न शिशु के आकर्षण उसके तेज की बात कर रही थी। धात्री कह रही थी—कैसा कमल-सा मोहक कुमार है ! मैंने ऐसा शिशु देखा नही। मा को कैसा टकटकी लगाकर निहार रहा है।

शिशु नन्हे हाथ और पाव चलाकर रोने लगा था। अम्बिका के कान म गूजा था, मा मा मा। राजमाता ने कहा था—बेटी अम्बिका, दूध पिलाओ पुत्र को, यह भूखा है। स्नेह से स्पर्श करो, मातत्व के स्पर्श के लिए आतुर है।

निकट खडी अम्बालिका शिशु को देख रही थी, परन्तु जाने क्या सोच रही थी ! कदाचित यही कि क्या उसके गर्भ की सतान भी

धात्री ने अम्बिका को पुचकारते हुए उसका हाथ पकडा था और शिशु के सिर पर रख दिया था।

अम्बिका ! राजमाता न कहना प्रारम्भ किया। ज्योतिषियो न भविष्य देखते हुए कहा है—यह शिशु वीर्यवत, कीर्तिवत होगा। तुम्हारी गोद खेलता रोता शिशु कौरव वश का तेजस्वी भविष्य है। उसको मातत्व से सिक्त करो। इसका नाम धतराष्ट्र रखा जाएगा।

अम्बिका की सवेदना मे उत्पन्न हुआ व्यवधान स्फीत हुआ। उसका हाथ शिशु के काले, घने, मुलायम बालो पर फिरने लगा था। बच्चे का रुदन उसके कानो से गुजरकर अन्त मे 'मा मा' की आवृत्ति म रूपान्तरित हो रहा था। सब प्रसन्न हो गए, जब अम्बिका न आचल से बच्चे का मुख ढक दिया। उसकी पकड वात्सल्य पूरित थी।

इसके पश्चात् अम्बिका मा थी और वह नवागतुक शिशु उसका पुत्र। रात्रि म निकट सोया शिशु स्वत अपना अधिकार लेता जा रहा था। मोह-अदृश्य अकुरो की तरह अत क्षेत्र मे फूट फूटकर ममत्व को भविष्य की सम्भावनाओ म उलझाने लगा। दाता का दान कद मन से स्वीकार करने पर पात्र को अपात्र बना देता है। तब मा पुत्र के लिए दु चित्ती कस हो ! अत करण बहता है तो नसर्गिक दुग्ध धारा-सा बहता है। अम्बिका आघात को पार कर गई।

(२४)

मन की आकाक्षा बहुमुखी होती है। पर परिस्थिति प्राथमिकता चिह्नित करती है। वह आकाक्षा प्रबल होकर चिंतन व चिंता स घिरती है। फलीभूत

होने की सम्भावना के साथ, पूर्ण न होने की शका आकाक्षा के साथ सदा नत्थी रहती है। यही तो उद्विग्न करती है। चिता म रसे रखती है। तटस्थ हो सक व्यक्ति, यह बहुत कठिन है।

अम्बालिका लाख अपने को समझाती है, उसकी सतान खोट मुक्त होगी, परन्तु अम्बिका के नत्रहीन पुत्र होने का यथाथ उसकी कल्पनाओ से टकराता है। न चाहते हुए भी अतद्वन्द्व अथुआकर तह म ऊपर उठ आता है। भावनाए छाया की तरह एकात क्षणो म चेहरे पर दिप बुझ करने लगती है। वह मौन सम्वाद साधती है। कभी विचित्रवीय की छवि स, कभी महर्षि व्यास की स्मति आकृति स।

मैंने तुम्हें कभी नही बिसारा। क्या अपनी सतान को अपना अतुल्य सौंदय नही दोगे?

प्रश्न स्वर्गीय पति की छवि स होता है। वह उत्तर चाहती है अपनी अतरात्मा से।

मैंने तुम्हे पूण तन मन एकाग्रता से अपने को समर्पित किया है महर्षि, क्या अपनी तपस्या शक्ति अपनी सतान को प्रदान करोगे?

वह सुनना चाहती है महर्षि व्यास के स्मति चित्र से आश्वस्त उत्तर। पर जस ऋषि की प्रतिकृति आख मदे ध्यानमग्न रहती है।

तब वह अनिश्चित परिणाम के लिए निश्चित होना चाहती है। आत्मविश्वास का सहारा चाहती है।

नही, वैसा नही हो सकता। अम्बालिका का आत्म-सयम और इच्छा शक्ति वजूद दुविधाओ के गभस्थ शिशु को सस्कारयुक्त करत है। उसको बुनियादी चरित्र देते है। अम्बालिका का पुत्र वसा ही होगा जैसा वह चाहती है। इतिहास का निर्माता होगा—कौरव कुल मातड।

ऊहापोह तथा द्वद्व के बीच ही परिस्थितिया बदलती है वक्त बढता है व्यक्ति निर्मित होता है। द्वद्व कभी बाह्य प्रेरित होता है, कभी अत उत्प्रेरित।

महर्षि व्यास से परामश करने के बाद भीष्म पितामह को आत्मबल मिलता था। उनके अगाध अध्ययन स उन्हे दशन व शास्त्रो को पढने की प्रेरणा मिलती थी। शासन को उत्तरोत्तर धम के अनुकूल दिशा देने के लिए दृष्टि मिलती थी।

जब तक व्यास मात्र आश्रम गुरु व महर्षि थे, तब तक सत्कार व श्रद्धा का सम्बध था। जब स राजमाता द्वारा वह रहस्य उदघाटित किया गया कि व्यास उनके पुत्र है—अर्थात भीष्म के भाई तब स एक सूक्ष्म अत सम्बध उपज आया। सही है कि व्यास सासारिकता स विरक्त आध्यात्मिक पुरुष और महाकवि हैं और भीष्म कुरुवश के सरक्षण का कत्तव्य स्वीकार किय हुए राज-पुरुष पर एक पारिवारिक रिश्ता भी है। वह अनायास सम्बल-सा दता है। अब तो व्यास का

वीर्य कौरव वश की सताना म होगा'। धृतराष्ट्र न जन्म लिया। इसके बाद अम्बालिका का क्रम है।

उन्होंने महर्षि से पूछा था—महर्षि, कौरव वश का भविष्य कैसा है?

वह तुम्हारे पराक्रम तथा प्रयासो से बधा है। महर्षि ने तत्काल उत्तर दिया था।

मैंने जब भी आश्वस्त होना चाहा, तभी दुघटनाओ ने मुझे फसाया है। मेरी बार-बार इच्छा होती है, अतिशय उलझाव से मुक्त होकर, आत्मिक साधना के लिए वन श्री व पवत क्षेत्र म जाऊ, जहा मेरी बाल्यावस्था व्यतीत हुई है।

महर्षि व्यास मुस्कराए थे। ऐसा नही हो सकेगा। तुम राजा की सतान हो। युवराज रहे। तुमन पिता के लिए अधिकारा का त्याग किया। अपने व्यक्तिगत भविष्य को त्याग कर, पिता शान्तनु के विवाह की स्थितिया बनाइ।

इसलिए कि कुरुवश उत्तराधिकारियो का क्रम पा सके। पिता को चिंता थी कि अगर मेरे साथ दुघटना घटी तब

महर्षि व्यास ने भीष्म पितामह की आखा आख दखा। उस दृष्टि म अगाध शाति दिखी थी। देवव्रत, भीष्म हुआ। क्या? भीष्म क साथ अविजित योद्धा हुआ—क्यो? आयु से वह कितना भी रहा हो, उसके निणय और निश्चय प्रौढा स भी अधिक परिपक्व पितामहो जसे रह—क्यो? यह सस्कार है मा गगा के। वह सदा प्रवाहिनी, कल्याणी है। तब तुम्हारा प्रारब्ध अयथा कैसे हो सकता था? पवतो जैसी बाधाओ को काटकर तुम्ही रास्ता बनाओगे। दिग्भ्रमित करने वाले वना के बीच तुम्ही कुरुवश की नदी को प्रवाहयुक्त रखोग। पर अपनी पीडा के लिए हमेशा अकेले होगे। इसी मे तुम्हारी शक्ति होगी, तुम्हारी महत्ता। हर महत्त्वपूण कालजयी पुरुष की नियति ऐसी ही होती है। वह शापित होता है, अपनी इच्छा के विरुद्ध परिस्थितियो के प्रवाह के सहने के लिए। क्या सच मे पिता शातनु मात्र वशवद्धि के लिए विवाह को आतुर थे? क्या आकषण व प्रेम, दग्धता, उस घटना का कारण नही था?

मुझे ज्ञान था। भीष्म ने उत्तर दिया।

महर्षि रहस्यमयी मुस्कान म आवेष्टित हुए थे। मुझे भी ज्ञात था कि मेरी कुआरी मा ने मुझे टापू पर छोड दिया था, लोकभय के कारण। पर मुझे स्मरण किया गया। उसी रिश्ते का आधार लेकर मुझे नियोग करन की आज्ञा दी गई। मैंने स्वीकार किया। क्यो? विचार करो, भीष्म! मेरी और तुम्हारी नियति मे विशेष अतर नही है। तुम भी बधे हो, मैं भी। न तुम छुटकारा पा सकोग, न मैं पा सकूगा, सिफ पदा और कत्तव्या का अतर है। या जन्म का, कि तुम शातनु के पुत्र हुए, मैं पराशर ऋषि का।

इसी तरह के आत्मावलोकन और आत्मसशोधन की प्रेरणा मिलती है भीष्म

को व्यास की निकटता मे। तब जी करता है कहने को—भ्रात।

लेकिन वह तो महर्षि है—महर्षि व्यास। अद्वितीय साधना सम्पन्न। अ ससारी। भीष्म ? कुरवश की उतार-ढलान मे सलग्न राजपुरुष। ऋषि व राजा के युग्म।

(२५)

बाहर कुहासा छाया हुआ था यद्यपि प्रात हो चुकी थी। रात भर कडाके की ठड रही। अभी भी शीत ने वातावरण को जकड रखा था। पर अम्बालिका के महल मे भाग दौड और उत्सुकता व्याप्त थी। राजमाता को जैसे ही दासी न सूचना दी कि रानीजी के पीडा हो रही है वह स्वय व्यवस्था देखने आ गई थी। उपचारिकाए धाय, राजदाई को तुरत बुलवा लिया गया था। कष्ट सहनीय हो, इसके लिए विशिष्ट दवाए दी जा रही थी। शिशु के स्नानादि के लिए गरम जल तैयार था। धात्री अम्बालिका को लाड-पुचकार कर दद सहने के लिए साहस बधा रही थी। अम्बालिका अपूव सयम धरने के बावजूद होश म बार-बार छिन भिन हो जाती थी। वह बल नगाकर सयाजित होन का प्रयास करती। कभी उसकी दत-पक्ति भिची-सटी होती। कभी मुटठी बध जाती। कभी वह नि साहस-सी हो धात्री को पकड लेती। बूढी धात्री को आवेश सभालना मुश्किल हो जाता।

तुम पुत्रवती होन जा रही हा रानी लक्ष्मी पति विष्णु का ध्यान दो।

अम्बालिका की मानसिक एकाग्रता थिर होती तो उसकी आखो मे विचित्रवीय की छवि झिलमिला जाती। जसे गहरे तल से उठती हुई रगीन मछली सतह पर ठहर रही हो।

राजमाता न श्रेष्ठ ब्राह्मणो को बुलवाकर मत्रोच्चार करने के लिए कहा था। वह मत्रोच्चार कर रहे थे।

इधर कोहरे की तह मे ऊपर उठकर सूय आकाश मे दृष्टिगोचर हुआ, उधर महल म थाली और मादन की झनझनाहट गूज उठी।

शार हुआ—रानी न पुत्र को जन्म दिया। अम्बालिका के अनुपम सौंदय वाला पीत हजारे-सा शिशु हुआ है।

राजमाता प्रसन्न थी। रत्नो और मोतियो के इनाम बाटन के लिए वह स्वय थाल मगा रही थी और स्पश कर भज रही थी। नवजात शिशु को धात्री ने स्नान कराके मरगाई रेशमी कपडे म लपटकर मा की बगल मे लिटा दिया था।

सूय हल्के धूसरई रग म स्वच्छ आकाश म स्पष्ट हो आया था। जस-जस दिन पूरा कियाए शुरू हुई व्यस्तता हाट-बाट म धडकन लगी। छोटी रानी के पुत्र

होने की खबर चौक-चौक प्रसारण पाती गई। फिर राजकीय उदघोषणा ने सूचना को पुख्ता कर दिया।

राजमाता, पुत्र साक्षात् इन्द्र-सा सुन्दर है।

हा। होना चाहिए।

राजमाता पुत्र सूरजमुखी फूल-सा पीत वर्ण है।

हा, होना चाहिए।

राजमाता-ज्योतिषियों का कहना है सतान शुभ मुहूर्त मे जन्मी है अदभुत पराक्रमी तथा सूर्य देवता-सा यश अर्जित करने वाली होगी।

हा, होना ही चाहिए।

राजमाता के हर हुकारे के पीछे कामना थी कि वैसा ही हो जैसा ज्योतिषी कह रहे हैं। वह खुश थी। अन्दर से भावनाओ का हिल्कोरा उठता था। पर कोई घट से जैसे उस हिल्कोरे के आवेग को कुतर देता है। वह इसे हटाकर मुक्त प्रसन्नता को पाना चाहती हैं, लेकिन निरन्तरता नही बनती।

महर्षि व्यास ने अम्बालिका के सदर्भ मे कहा था—पुत्र सर्वगुण सम्पन्न होगा। महान यशस्वी और कीर्तिवान होगा। परन्तु पाडुर रोग से जन्मना ग्रस्त होगा। अम्बालिका समागम के क्षणो मे भयभीत होकर पीली पड गई।

राजमाता अटल सकल्प लिये हुए थी कि वह निष्णात वैद्यो के द्वारा उसका प्रारम्भ से उपचार कराएगी। रोग को अकुरित अवस्था मे उच्छेदित कराने का उपाय नियोजित करेंगी। लेकिन व्यास का कथन शिशु के प्रारब्ध की पहले ही घोषणा कर चुका है। उसे वह कैसे टालेंगी। अम्बिका के पुत्र के लिए उन्होंने कहा था—वह जन्माध होगा। धृतराष्ट्र नेत्रहीन जन्मा। राजमाता कैसे उन्मुक्त आनन्द मे आनन्दित हो। जब उनका खुद का अतीत विडम्बनाओ से घातित रहा है। चित्रागद कम पराक्रमी था। विचित्रवीर्य इन्द्र पुत्र-सा लगता था, जिसको देखकर मन जुडता था। जब अखण्ड सुख और सतोष प्राप्ति का समय आया, तब कुघात हुआ। विवाह के सात वर्ष के बीच यही यक्ष्मा रोग क्रमश बढ़कर काल बन गया। सारे उपाय विफल हो गये।

अतीत को राजमाता सत्यवती कैसे बिसरा दें! वह अतीत हर प्रसन्नता के क्षणो म काली घटा-सा आच्छादित करता है अन्त को, बाट देता है उसे दो हिस्सो म। एक आतकित हुआ सिकुडा रहता है, दूसरा सुख के प्रभाव म लहरित होने को आतुर होता है।

पर यह द्वन्द्व सत्यवती का है, इससे उत्सव क्या बाधित हो!

शिशु के आगत का वही झेले, जिसे ज्ञात हो। अज्ञान मे स्वाभाविक सुख का धारावाही रहना ही चाहिए। प्रजा राजकुमार के जनमने से प्रसन्न तथा बावली होती है तो उसे होने दिया जाय। दान, दक्षिणा, यश, उत्सव, [

इदम्

राजाओ की उपहार स्वीकृति मन अवसर क अनुकूल होनी चाहिए।
राजमाता न अबकी भीष्म को भी नही छेडा। उनस भी नही पूछा कि क्या होना चाहिए क्या नही। भीष्म और सभासदो के निर्णय पर छोड दिया।
भीष्म पितामह न हर्षोल्लास के आयोजना की निर्बाध छूट दी। मित्र राजाओ क यहा सदेशवाहक भज दिय गय। शायद यह भी राजनीति की अनिवार्यता थी और धतराष्ट्र के नेत्रहीन होने स जो धारणाए पनपी थी उनक शमन की युक्ति थी।

(२६)

चित्रागद तथा विचित्रवीय की मत्यु क बाद कुरुवश पर कु-ग्रहो का साया पड गया था। बाहरी तौर पर यश और कीर्ति अखण्ड थी, पर राज मन, प्रशासन बुद्धि तथा सहज स्फूर्त जनपदीय आत्मा क्रुद्ध थी। भीष्म जसे स्थितिप्रज्ञ तथा धम अनुगामी समय-समय पर विचलित होते रहे तथा स्वय अपने व्यक्तित्व म भावो का विद्रोह तथा डोलन अनुभव करते रहे। गागेय की दशा उस गगा सी रही जो ऊपरी तह पर मदगति म प्रवहमान होती है, पर कभी ग्रीष्म के ताप स अथवा वर्षा क आधिक्य स सिकुडती या विस्तरित पाट ल लेती है। भीष्म का सकल्प कुरुवश का सरक्षण था उसकी अनुकूल प्रतिकूल प्रतिक्रियाओ का व्यक्तित्व पर असर पडना लाजिमी था।

धतराष्ट्र और पाडु के ज म ने भीष्म को आश्वस्त किया। उन्होने राज पुरोहितो व श्रेष्ठ ब्राह्मणो को बुलाकर धार्मिक तथा नैतिक स्थिति पर विचार विमर्श किया। ब्राह्मणो की राय थी कि यज्ञ विधानो को तथा उनके अनुष्ठानो को अधिक विस्तार दिया जाये। राज्य द्वारा स्वय ऐसे यज्ञ किये जायें जिनमे सूय, अग्नि, इन्द्र वरुण, रुद्र आदि देवताओ के प्रति प्रजा की श्रद्धा जागे।
हा, प्रजा को श्रद्धावान होना चाहिए, परन्तु मैं आप सबकी दष्टि मुख्य बिंदु की ओर आकर्षित करना चाहता हू। महर्षि वेदव्यास अपने आश्रम म वेदो पर शास्त्रीय काय सम्पन्न करा रहे हैं। वह स्वय वेदो का विषय एव प्रवत्ति की दृष्टि स किय जा रहे विभाजन की देख रेख करत है। आर्यों का सास्कृतिक चरित्र तथा उनके सामाजिक सस्कार यज्ञो तथा उनमे ऋत्विको द्वारा बोली जाने वाली ऋचाओ स निर्मित होता है। ऋत्विको की आत्मा से उच्चारित श्लोक ही श्रोताओ की आत्मा को जाग्रत कर सकत है। अत यह प्रयास किया जाय कि आश्रमो को पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलती रहे। राज्य म चलने वाली पाठशालाए व विद्या केन्द्र एस ब्रह्मचारियो को तयार करें जो विद्वता म परिपक्व हो। उनका सयम तथा आत्मशुद्धता का आदर्श प्रजा को नतिक प्रेरणा दे।

हमारी जानकारी मे ऐसा ही हो रहा है। एक वद्ध ब्राह्मण बोले।

दूसरे प्रौढ ब्राह्मण ने विचार रखा—यज्ञ का कार्मिक भाग बहुत अधिक व्यय साध्य होता जा रहा है। इसे राजा महाराजा या धनिक वग ही सम्पन्न कर सकते हैं। साधारण प्रजा के लिए ऐसे धार्मिक विधान होने चाहिए जो उह नैतिकता की ओर बढाए। अधिक कमकाडो की जकडन मूल उद्देश्य को गौण करती जा रही है। यह मरा अवलाकन है। राजपुरोहित न दूसरा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया—कुरुवश की ऐतिहासिक गति म जहा हमारा वचस्व तथा प्रभाव क्षेत्र बढता गया है, वही हम अय प्रकार के धर्मों तथा सस्कृतियो से घिरत जा रहे है। मेरु पवत के निकट के जनपदो कम्बोज, बाल्हीक, कपिशा, गाधार की भौतिकवादी सम्कृति तथा दक्षिण की पाशुपत, शव व पचरात, भागवत, दशनो से पोषित सस्कृति हमारी वैदिक जीवन विधि को दूषित कर सकती है। इस ओर से हमे सतक होना चाहिए।

भीष्म ने अभिव्यक्त विचारो को ध्यान मे रखकर अपने मन की बात कहना आरम्भ किया। कुरुवश का प्रभाव काल की गति के साथ उत्तरोत्तर विस्तार पाता रहा, उसका मूल कारण पूवजो का शौय तथा पराक्रम मात्र नही है उसकी शक्ति धार्मिक आस्था, चारित्रिक दढता, प्रजा वत्सलता एव यायप्रियता मे रही है। यह इसलिए सभव रहा है कि हमने आदश तथा व्यवहार मे अतर नही रखा। यज्ञ की मूल भावना आत्मिक शुद्धता प्राकृतिक क्रम नियम के अनुकूल जीवनयापन तथा सयम प्राप्त कर क्षुद्रताओ से बचना है। दान व आहुति इसकी आत्मा है। मैत्री व सावजनिक मागलिकता इसका व्यवहार पक्ष है। मैंने आप सबको इसीलिए कष्ट दिया है कि मुझे इस पवित्रता तथा श्रेष्ठता मे ह्रास दीख रहा है। कृत्रिमता तथा आडम्बर के साथ यज्ञ औपचारिक रूप ले रह है। हमारे शक्ति के केद्र मे जो सूय किरणो की जाज्वल्यता है, यदि वह क्षय की ओर बढी तो परिणाम क्या होगा, आप स्वय निष्कष तक पहुच सकत ह।

आपकी आशका व सदेह सगत है। एक श्वत दाढी व जटाओ वाले वृद्ध बोले।

सम्पूण श्रद्धा व आदर के साथ कहना चाहता हू कि मुझे आशका या सदेह नही है, पर सचेत रहना हम सबका कतव्य है। चिंतन तथा उसके व्यावहारिक उपयोग के लिए हमारी इस परिषद को सजग रहना चाहिए। आप विद्वानो की सक्रियता तथा आदश प्रजा के लिए प्रेरणाप्रद होगा। राज से जसा भी सहयोग चाहेंगे उसे तत्काल उपलब्ध कराने की व्यवस्था मैं करूगा। मैं आप लोगो की क्षमताओ के प्रति आश्वस्त हू तथा उसका आदर करता हू।

भीष्म कहते कहते रुक गये—जसे सोचने लग। उपस्थित सदस्यो को लगा वह उनकी तरफ स विचारो की स्वीकृति या अस्वीकृति चाहत हैं। राजपुरोहित बोले

—आपकी चिंता सारयुक्त है। जनपद का प्रत्येक वर्ग जब तक जनपद व राज्य के कल्याण के लिए अपने स्वार्थ को गौण नहीं करता है, तब तक आन्तरिक शक्ति का स्रोत अजस्र नहीं रह सकता। यह धर्माचरण से प्राप्त होगा। हम अपनी क्षमताओं को इस महत उद्देश्य की प्राप्ति में लगाएंगे। कुरुवंश की राजशक्ति कभी भी राजा में केन्द्रित नहीं रही, वह महर्षियों, विद्वानों की सभाओं तथा उच्च कोटि के अनुभवी लोगों की मन्त्रिपरिषद में निहित रही है। उनके जरिये प्रजा में।

मैं यही चाहता हूं कि हम आगामी समय को चारित्रिक श्रेष्ठता, आर्थिक सम्पन्नता, व कला शिल्प के उत्थान में लगाएं। राजपुरोहित जी ने अन्य प्रकार की संस्कृतियों तथा धर्म की जो बात कही है, वह सत्य है। पर हमारी मूल नीति मैत्री भाव की रही है। हमने गणराज्यों में सम्पर्क किया, उन्हें मित्र बनाया। हम किसी राज्य को अनीति से हड़पना नहीं चाहते। हम चाहते हैं आदान प्रदान बढ़े व्यापार का आदान प्रदान विद्या का आदान प्रदान। ऐसी स्थिति में संस्कृति तथा धर्म समन्वय की प्रक्रिया से नहीं बच सकता। हमारा श्रेष्ठ, हमारी रचना का तत्व रहे, दूसरों का श्रेष्ठ हममें जुड़े तो हमारी वृद्धि ही होगी। इसलिए जब तक धृतराष्ट्र और पाण्डु युवा आयु को प्राप्त नहीं कर लेते, हम कुरु राज्य तथा उससे मैत्रीभाव रखने वाले राजाओं गणराजाओं को सबल सूत्र में बांधेंगे। चतुर्मुखी विकास हमारा उद्देश्य होगा। यह समय आन्तरिक व बाह्य रूप से दृढ़ता पाने के प्रयत्नों में लगना चाहिए। सैन्यविजय के बजाय सांस्कृतिक व धार्मिक विजय हमारा संबल हो।

विद्वत-परिषद को लगा कि भीष्म के विचारों ने उन्हें स्फुरित कर दिया है। पूर्व सभाओं में यद्यपि समस्याओं पर ही चर्चा होती थी पर अनुभव होता था, जैसे राज्य किसी अदृश्य दबाव से दबा हुआ है—स्पष्ट दिशा नहीं दीख रही थी। चित्रांगद का भीष्म की अवज्ञा कर अपनी जिद में राजाओं से निरन्तर संघर्ष करना और अन्त में अपना जीवन गंवाना, विचित्रवीर्य का अपनी रानियों में मग्न रहना और अतिशय भोग के कारण अकाल, क्षयग्रस्त होकर मरना, जैसे भीष्म पितामह की महद्शक्ति को कुंठित किये हुए था। पहली बार लगा कि भीष्म अपने आन्तरिक दबाव से मुक्त हुए। वह तेज सम्पन्न हो उठे—भविष्य को दिशा देने वाले द्रष्टा।

परिषद् भावी कार्य क्रम का रूप लिये विसर्जित हो गई।

(२७)

राजमाता सत्यवती ने यह सूचना मिलने पर कि महर्षि द्वैपायन बदरीका आश्रम से लौट आए हैं उनके दर्शन पाने की इच्छा भीष्म पितामह तक पहुंचाई।

पितामह स्वय महर्षि के दशन करना चाहते थे। हिम शिखरो पर रहकर एकात साधना एव वेदो का तात्विक अध्ययन व वर्गीकरण निश्चित उन्हे अदभुत अत-यात्राओ स गुजारता होगा। उन यात्राओ के भणाश की झलक का वणन पाना ही कृत-कृत्य कर सकता है। उन्होने राजमाता की इच्छा मे अपना निवेदन जोडकर मुख्य अमात्य एव परिषद के सम्मानीय भद्रो के साथ निमत्रण भेजा।

अमात्य जी, महर्षि से निवेदन करियेगा कि मैं स्वय उनके दशन-लाभ के लिए आता, पर कुछ योजनाए ऐसी हैं जिनको अन्तिम चिंतन देना है। सुना है गाधार तथा विध्य की ओर आने वाले शिल्पी एव चित्रकार भी पहुच चुके हैं।

हा, श्रीमन ! वह आपके साक्षात्कार के लिए इच्छुक है।

सबधित प्रभारियो को आदेश दे दीजियेगा कि मैं स्वय नगर-योजना को उत्कृष्टता से सम्पन्न करने के लिए विचार विमर्श करना चाहता हू। पहले वह दक्ष शिल्पियो से उनमे योग ग्रहण कर निश्चयात्मक रूप से निर्धारित कर ले।

जैसी आज्ञा, श्रीमन !

आज्ञा नही अमात्य जी, मात्र विचार अभिव्यक्ति। आज्ञा की उस समय आवश्यकता पडती है जब रुकावट, शैथिल्य, या छल दीखे। जब सब कतव्यनिष्ठ हो तब आज्ञा के स्थान पर निर्देशन पर्याप्त होता है। आप तो वैसे भी मेरे लिए आदरणीय है।

अमात्य भीष्म की शालीनता से प्रफुल्लित हो उठे जो उनके मुख के भाव से स्पष्ट था।

आप महर्षि के आश्रम जा रहे हैं, स्वय जानकारी प्राप्त करियेगा कि आश्रम मे व्यवस्थागत किन परिवतनो या सुधारो की आवश्यकता है। महर्षि व्यास सकोचशील हैं। उनके आश्रम को श्रेष्ठ गायें उपलब्ध करवाई जाए। उनके आश्रम की सम्पन्नता हमारे लिए गव का विषय होना चाहिए।

ऐसा ही होगा, श्रीमन !

दशन के आग्रह को प्रभावी भाषा म उनके समक्ष रखियेगा। उनस यह भी कहियेगा कि वह अधिक से-अधिक समय का वास हमारे लिए निकालें। हमे उनसे बहुत से कार्यो मे दिशा पानी है।

अमात्य भीष्म से सकेत पाकर तैयारी के लिए चल दिये। वह आश्चयचकित थे कि भीष्म महर्षि के सम्बन्ध मे कितने नत और भावुक हैं।

राजमाता सत्यवती ने महर्षि व्यास को मात्र दशन के लिए नही बुलाया था। उनके मन मे इच्छा थी कि अम्बिका से एक पुत्र का जन्म और हो जाये। वह सोचती, अन्धे पुत्र के होने से अम्बिका अवश्य मन मे दु खी होगी। वह सहनशील और सीधी है। अन्दर-ही अन्दर घुटती भी होगी तो कहती नही। अम्बालिका

की तरह अपनी भावनाओ को कह देना, अपनी इच्छा के लिए जिद कर जाना, अपने विचारो को तर्क से मनवाने की कोशिश करना, अम्बिका का स्वभाव नही है।

लेकिन अब वह इस कार्य के सम्पन्न होने मे सदिग्ध हैं। वह द्वैपायन से कैसे कह सकेंगी कि वह एक बार पुन अम्बिका का अनुग्रहीत करें। द्वैपायन कह सकते है कि यह आधारहीन तृष्णा है। दोनो रानियो को पुत्र प्राप्त हैं फिर भी

महर्षि का तेजस्वी चेहरा और उभरी आखें उनमे भय उत्पन्न कर देती थी। मा के जिस सम्बध की प्रस्तावना बनाकर व्यास को उन्होंने कर्त्तव्य और धर्म से बाध्य किया था, क्या वह उसको तीसरी बार अस्वीकार नही कर सकते ?

अम्बिका के सम्बन्ध मे जैसा वह सोच रही है, वह उनका सोचना मात्र हो सकता है। कदाचित अम्बिका अपने भाग्य से सतुष्ट हो।

क्या वह उससे पूछकर देखें ? राजमाता का साहस नही होता।

पर तुलना तो स्वाभाविक है। क्या अम्बिका यह नही सोचती होंगी कि उसका पुत्र नेत्रहीन है और अम्बालिका का इतना सुदर स्वर्ण-सा ?

ज्योतिषियो ने उसका नाम पाडु निकाला। उन्होंने यह भी बताया कि राजकुमार जितना अतुल्य सुन्दरता वाला है, बडा होकर उतना ही यशवाला होगा कुरु राज्य की पताका देश देशातर तक फैलाने वाला। वह दयालु, दानवीर तथा पराक्रमी होगा।

किसी ने क्यो नही बताया कि पाडुर रोग से ग्रस्त होकर अल्पायु होगा। राजमाता सोचती हैं कि राज्य के ज्योतिषियो की क्या अपनी विद्या मे सिद्धि नही है ? या वह अशुभ प्रकट नही करना चाहते ?

धृतराष्ट्र अब दो वर्ष का हो चुका है। पाडु एक वर्ष का होने को आया। दोनो मे से किसी भी रानी को दूसरी सतान के लिये तैयार करना लगभग असम्भव लगता है। उनकी बात जा सकती है।

राजमाता का सदेह सगत था। अम्बिका के बाहरी व्यवहार से किंचित भी नही लगता था कि वह नेत्रहीन सतान के कारण खिन्न है। सत्यवती ने धात्री से कहा था, अम्बिका के अत की टोह ले।

क्यो राजमाता ? क्या आपको सदेह है कि बडी रानी अपने ही पुत्र से दुराव रखती होगी ? धात्री ने पूछा था।

मा दुराव नही रखा करती, पर परोक्ष मे बालक उपेक्षा का विषय हो जाता है। सत्यवती ने कहा था।

नही, ऐसा कुछ नही है राजमाता। बल्कि बडी रानी धात्री व परिचारिका के अतिरिक्त भी धृतराष्ट्र का ध्यान रखती हैं। वह यू ही उससे बोला करती हैं।

उसे कहानिया सुनाती हैं। भला वह नन्हा शिशु अभी से क्या समझे। उसको पौष्टिक दवाए देती हैं, राज्य वैद्य से मगवाकर। जरा-सा अस्वस्थ हो जाये, सेवक को दौडा देते है राज्य वद्य के लिए। वैद्य तो कई हैं, कभी किसी को बुलाती हैं, कभी किसी को। जैसे विश्वास नही ठहरता किसी एक पर।

यह सब ठीक है धात्री, लेकिन तुम उसके व्यवहार पर मत जाओ। हम राज महलो की रानिया राजमाता, वही नही होती, जो व्यवहार मे दिखती है। हमारा मन अन्त कक्षो की दीर्घा के किसी गुप्त कक्ष मे रहता है—वह अकेले मे होता है, प्रसन्न होता है। शेष मर्यादाए होती हैं और परिस्थितिया।

इतना तो हम नहीं समझ सकते, राजमाता! धात्री ने उत्तर दिया। वह राजमाता का मुख देख रही थी। उसे कैसा भी ढकाव या कत्रिमता नही लगी।

तुम पता लगाना, कही वह अम्बालिका के सुदर पुत्र से तुलना तो नही करती।

यह जानना असम्भव है, राजमाता! इससे तो आप स्वय पूछ लें।

धात्री ने जैसे बनते पासे को उलट कर हार वाला कर दिया हो। राजमाता अब क्या कह? कैसे कहे कि धात्री अम्बालिका या अम्बिका के अतरमन म सेंध लगाए?

धात्री को स्मरण आया। वह आश्वस्त होकर बोली। राजमाता, बडी या छोटी दोनो मे से कोई दु खी नही हैं सतान को लेकर। छोटी रानी, राजकुमार पाडु की सुदरता की प्रशसा हरेक से करती है। कहती है, बिल्कुल अपने पिता सा है—बडी बडी आखें, लम्बी नाक कमल सा कोमल। बडी रानी एक दिन मुझसे कह रही थी—धात्री, यह बडा होगा, तब मैं इसको उगली पकडकर चलाया करूगी। इसकी आखें मैं ही हू ना।

राजमाता धात्री की अतिम बात सुनकर करीब-करीब निराश हो गईं। नही लगता कि उनके मन की साध पूरी होगी।

धात्री से फिर भी उन्होने कहा, तुम दोनो के निकट रहती हो, मैंने जो कहा है उसका पता अवश्य लगाना।

धात्री ने आज्ञाकारी सेविका की तरह कह दिया था, प्रयत्न करूगी।

(२८)

मध्याह्न का समय। अम्बालिका प्रकोष्ठ के सामने के आगन मे हल्की धूप का सेवन कर रही थी। अभी-अभी वह पाडु को पालने मे सुलाकर आई थी। काले बाल कटि तक लहरा रहे थे। उनमे हल्की-सी सीलन थी। परिचारिका सुगधित तेल लगाने व केश विन्यास करने के लिए उपस्थित थी। तोते व चिडिया कभी मुडेर पर बठती, कभी आगन म आ जाती। वह तोता और लाल पूछ

वाली काली चिड़ियों को देखकर प्रसन्न हो रही थी।

देखकर आ, पाडु जाग न गया हो। अम्बालिका ने परिचारिका से कहा।

अभी अभी सोये हैं, इतनी जल्दी काहे को जागेंगे। दूसरी सेविका उसके पास है।

वह जाग जाता है। उसकी नींद भी अजीब है। कभी सोता रहता है, कभी पल म उठ जाता है। सोते-सोते चौंक पड़ता है। वद्यजी को बताना होगा।

छोटे वच्चा को पूरव जनम की याद आती है, छोटी रानी !

पूरव जनम म भी अवश्य राजा रहा होगा।

कैसे जाना, रानी जी ?

मन कहता है। या फिर ऋषि होगा।

हा, स्वामिनि ! सत् कम करे होगे पूव जनम मे तभी राजकुमार के रूप म जन्म लिया है। पर स्वामिनि ! आयु के अनुसार कमजोर हैं। बडी रानी के पुत्र धृतराष्ट्र कितने सुगठित और बली है। ऐसा दीखते है जस कितने बरस के हो !

सुदर तो मेरा ही पुत्र है। इसके पिता भी ऐसे ही थे—दुबले-पतले, पर मगया मे इस तीव्रता से शिकार करते थे कि देखते बनता था। धनुष से निकला बाण अचूक सधान करता था। यह भी उन्ही की तरह धनुधर होगा। देख लेना। मलग पुरुष मुझे अच्छे नही लगते। तूने बातो मे लगा लिया। मैंने कहा उसे देख कर आ।

परिचारिका कक्ष की ओर चली गई। वह लौटी तो सच मे दूसरी सविका अक मे पाडु को ला रही थी।

यह सच मे जाग गये, रानी जी। परिचारिका ने निकट आकर कहा। वह मा की सहज आत्मा पर मुस्करा रही थी।

ला, मुझे आचल मे ले लेन दे।

यह हस रहे है, खेलने दीजिये।

नजर मत लगा। अम्बालिका ने बाहे फैलाकर उसे ले लिया। बच्चा टुकुर-टुकुर उसे देख रहा था तथा विहस रहा था। उसके हाथ और पैर चल रहे थे।

आ तो गया, फिर भी शैतानी ! उसने आचल स ढक लिया।

परिचारिका ने केशो को हाथ से स्पश कर अनुभव किया, वह फुरफुरे हो गये थे। एक-एक बाल रेशम की तरह अलग थे।

स्वामिनि ! केश सूख गये है, तल का उपयोग करू ?

हा !

परिचारिका ने दोनो हाथो मे सुगधित तेल चुपडकर केश मे सुखाना शुरू किया।

अक का शिशु गतिशील था।

तभी अम्बिका की परिचारिका सामने से आती दिखी। उसने निकट आकर कहा—बडी रानी, आपसे मिलना चाहती हैं, वह आ जाए ?

हा-हा, कई दिन हो गये उनसे मिले। उनसे कहो मैं प्रतीक्षा कर रही हू।

परिचारिका लौट गई।

अब चिपटा ही रहेगा। देख, देख, देख कैसे सुन्दर तोते हैं। अम्बालिका ने पाडु को आचल से बाहर किया। उस गोदी मे बिठाकर पक्षियो की तरफ सकेत करने लगी। शिशु उधर देखने लगा।

वह उसकी गदन मे कठी है, नीली-नीली, जैसे तेरी गदन मे है।

शिशु क्या समझे ! यह भी क्या पता कि वह सुग्गा को तथा आगन मे फुदकती चिडियो को देख रहा था।

परिचारिका धीरे-धीरे केश काढने लगी।

इसे लो ! उसने दूसरी सेविका से कहा।

सेविका न शिशु को ले लिया।

साधारण जूडा बना दो, अम्बिका रानी आ रही है। धूप गरम भी हो आई। अन्दर जाना होगा।

परिचारिका के हाथ जल्दी-जल्दी विन्यास करने लगे।

दो सविकाओ के साथ सामन से अम्बिका आती हुई दिखी। एक सेविका की गोद मे धृतराष्ट्र था।

आओ, मैं स्वय तुमसे मिलने को आतुर थी। यह कई दिन से अस्वस्थ हो रहा है। अम्बालिका ने खडे होते हुए जैसे बडी बहिन का स्वागत किया। फिर वह सेविका की गोदी के धृतराष्ट्र को पुचकारने लगी—कहिये महाराज, किस विचार मे मग्न है।

बच्चे न पलकें झपझपाकर आवाज का अनुसरण किया।

मैं तुमसे ही बोल रही हू, महाराज !

अब की बालक सेविका की गोद से बाहर होने के लिए कसमसाने लगा। अम्बालिका ने उसे गोदी मे लिया।

श्रीमान जी, जल्दी बडे होइये, ताकि अपने आप यहा आ सकें। वह खेलने लगी।

अम्बिका पाडु को थपथपा रही थी, उसके गद्दे बालो पर स्नेह से हाथ फेर रही थी।

अन्दर चलें या यही बैठोगी ! अम्बालिका ने पूछा।

अन्दर ठीक रहेगा। धूप तेज हो गई है।

हा, मुझे भी लग रही थी। केश धोये गये थे ना, इसीलिए यहां बैठी थी।

दोनों अन्दर आ गईं।

क्या विशेष मतव्य से आई हो ? अम्बालिका ने पूछा।

हां, परिचारिका से अलग होना होगा। अम्बिका ने उत्तर दिया।

अम्बालिका ने परिचारिकाओं को बाहर रहने की आज्ञा दी।

बैठो! उसने कोमल पीठिका की ओर सकेत किया। अपनी भी खिसकाकर उसके निकट ले आई।

बूढी धात्री तुम्हारे पास भी आती होगी ?

हां, कभी-कभी आती है। अम्बालिका ने उत्तर दिया।

राजमाता ने महर्षि व्यास को निमत्रण भिजवाया है और उन्होंने आने की स्वीकृति भेज दी है। उनके लिए फिर राजमाता के महल क्षेत्र में व्यवस्था की जा रही है।

मुझे भी सूचना है।

बूढी धात्री इधर-उधर की बाते करके जानना चाहती है, क्या मैं धृतराष्ट्र के नेत्रहीन होने के कारण असतुष्ट हू।

वह यह भी जानना चाहती थी कि क्या तुम पाडु के सम्पूर्ण अगो और अति सुदर होने की वजह से मुझसे दुराव रखने लगी। वह मुझसे ऐसी बातें करती थी जिससे मेरे मन का कोई असतोष प्रकट हो। राजमाता कहीं फिर से। अम्बालिका ने वाक्य पूरा नहीं किया।

अम्बिका ने उसके अनुमान का समर्थन किया। मुझे भी लगता है कि फिर भीष्म तथा राजमाता ने हमे राज्य के नाम पर साधन बनाने की मत्रणा की है। अम्बिका किसी भी तरह से घबराई हुई या हताश नहीं थी, जैसे पहले ऐसी स्थिति में हो जाया करती थी।

राजमाता हमें मा की भांति स्नेह करती हैं। हमारी सुविधाओं का ध्यान रखती हैं। हमसे अत पुर की समस्याओं पर परामर्श भी लेती हैं। पर कभी-कभी रहस्यमय क्यों हो जाती है? क्या हम इतनी भोली हैं कि उनका मतव्य नहीं समझ सकतीं! अम्बालिका के मुख पर तनाव झलकने लगा था।

गुस्से में होने की आवश्यकता नहीं है, तुम बड़ी जल्दी उत्तेजित होने लगती हो। अम्बिका ने टोका। फिर वह आगे बोली—हम उनके मतव्य के प्रति आश्वस्त कैसे हों। यदि भीष्म की राय हुई तब विवश हो जाना होगा। उसका भय हल्का-सा प्रकट हुआ।

तुम आश्वस्त नहीं हो, पर मैं हू। मुझे सदेह नहीं है कि राजमाता की इच्छा क्या है। भविष्य के प्रति स्पष्ट तौर पर सदेहशील हो जाना क्या मानसिक विचलन नहीं है? यदि मेरे सामने आकस्मिकता में भी ऐसी परिस्थिति आई तो अवज्ञा करूगी, चाहे भीष्म का कोपभाजन होना पड़े। अम्बालिका के स्वर ने

आना होगा, जब तक अनचाही उत्पन्न की गई परिस्थितियों को विघ्न नहीं कर पाती।

(२९)

परिषद के विशिष्ट वृद्ध मंत्री, अन्य सम्माननीय वृद्ध, राजपुरोहित व विशिष्ट प्रतिनिधि क रथ श्रेणी अनुसार पंक्ति म माग पर चल रहे थे। पीछे क छोर स तीन चार रथ पूर्व महर्षि व्यास रथ म विराजमान थे। उनके और उनके शिष्यो क रथ पर ध्वज फहरा रहा था। रथो का यूथ सरस्वती नदी के किनारे किनारे हस्तिनापुर की तरफ अग्रसर हो रहा था। दो अश्वारोही पहले रवाना कर दिये गये थे कि भीष्म पितामह राजमाता व नगर को पूर्व सूचना मिल जाय। रास्ते म पडने वाले ग्रामो को मौखिक प्रचार स सूचना प्राप्त थी कि महर्षि नगर जा रहे है। ग्रामवासियो की ओर स कहीं-कहीं श्रद्धा अभिव्यक्त करने क लिए आयोजन रखे गये थे। पुरुष, नारी, बालक-बालिकाए दशनाथ उपस्थित हो जाते। उनके लिए यह दृश्य भी अदभुत और अलभ्य जैसा था। जिस ग्राम मे पडाव होता, वह पुण्य प्राप्ति स निहाल हो जाता।

वन सघन और हरे भरे थे। कृषि सम्पन्न व भरपूर थी। तृप्ति का भाव ग्रामवासियो क चेहरे पर था। श्रेष्ठता और सम्पन्नता की श्रेणिया होना मानवीसमाज की रचना म है। सृष्टि म है। प्रकृति म है। पर एक सतुलन है। वह सतुलन ऋत के कारण है। ऋत की पहचान धम की पहचान है। उसका व्यवहार धम और नीति है। निरकुश राज्य म इसी का असतुलन होता है। वह वहा की प्रजा के मुख पर दुख व उदासी के रूप मे झलकता है। अत कुद होता है तथा ऊर्जा शापित हो जाती है।

महर्षि व्यास गतिवान रथ म सम्पन्न कृषि को देख रहे थे, तो उस उत्साह को भी जो कम म लगे ग्रामीण नर-नारियो म था। यह छिपता नही, उछालें और छपके लेता है। गायें व अन्य पशु स्वस्थ थे। कुए और सरोवरो पर जल भरते, पुरुष स्त्रियो मे गति थी।

फिर रथो का समूह नगर म प्रविष्ट हुआ। भीष्म पितामह तथा अन्य भद्रजनो की उपस्थिति आगमन को महिमा मडित कर रही थी। मुख्य द्वार पर स्वागत का आयोजन था। श्रेष्ठ ब्राह्मण व पडित महर्षि के पूजन करने की प्रतीक्षा म थे। पूरा नगर द्वारो से सजा था।

स्वागत हुआ। भीष्म पितामह ने नमन किया। आशीर्वाद पाया। जय जयकार गूज उठी। पुष्प और अक्षत उछलने लगे। शोभायात्रा का माग दशनाभिलाषियो स भरपूर था।

गवाक्षों से नारिया तथा बच्चे सुमन पखुडिया की वरखा कर रहे थे। महर्षि की सौम्य मुद्रा पर गाम्भीय था। सिफ एक हाथ आशीर्वाद के लिए उठता था। शिष्य वृ द नगर की शोभा व श्रद्धालुओ के उत्साह को देखकर महर्षि की महिमा से अभिभूत हो रहे थे। राज्य द्वारा प्रदत्त आदर नागरिको के लिए वैसे भी विशेष प्रतिष्ठा योग्य हो जाता है।

शाभायात्रा निश्चित मार्गों स गुजरती हुई महलो के क्षेत्र मे पहुच गई। फिर उस स्थान पर पहुच गई जहा ठहरान की व्यवस्था थी।

विशिष्ट व्यवस्थापक अपने-अपने काय मे तत्पर सुविधाए उपलब्ध कर रहे थे। ब्राह्मण व पुरोहित आदेश लेने को उपस्थित थे।

राजमाता हर्षित थी। अम्बिका भयभीत। अम्बालिका भावना और आवेश से ओत प्रोत। राजमाता जानती थी, अम्बिका मे उनकी आज्ञा न मानने का साहस नही है। उन्ह आश्वस्त होने के लिए एक स्वस्थ, पूण, रोगहीन उत्तराधिकारी की आवश्यकता थी। वह अम्बिका से हो तो बडी रानी की सतान होने के नाते सिंहासन पर बैठ सकता है।

अम्बालिका ने अम्बिका के पास आकर उससे पूछा था—क्या विचार किया बडी रानी? राजमाता का आदेश आ गया ?

अभी तो नही आया। पर मैं स्थिर नही हो पा रही हू।

तब तुम अवश्य आज्ञा मानोगी और

नही, यह भी नही होगा। मैं महर्षि से विनती करूगी कि वह मेरी अनिच्छा को जानें। जानकर मुझ पर दया करें। बाकी जैसा भाग्य मे होगा उसे मैं भी कसे टाल सकूगी।

अम्बालिका हसी थी। विनती करोगी महर्षि से। राजमाता को स्पष्ट मना नही कर सकती। कसी हो तुम। साहसहीनता के लिए भाग्य का बहाना चाहती हो। तुम खुद कुछ नही हो।

मैं कब कुछ हो सकी ? नही हो सकी अम्बालिका। न पति के सामन हो सकी, न राजमाता के सामने। अभागी थी तभी तो ज्योतिहीन सतान मिली। यह भाग्य नही तो क्या है ?

ओढ लो अपने पर तुच्छपन। फिर कोई तुम्हारा साथ भी देना चाहे तो कैसे देगा ? सोचती हू राजमाता के विरुद्ध तुम्हारे लिए खडी भी होऊ तो क्या पता किस क्षण तुम उनके व्यक्तित्व के सामन अस्त्र जमीन पर फेंक दो।

गिर ही हैं। अम्बिका ने कहा था। परिस्थिति के वक्त जो सूझ गया, वही इस पार या उस किनारे करेगा। तुम मुझे मरी हालत पर छोड दो। अम्बिका की आखे डबडबा आई थी जसे निरीह पक्षी उस खिलवाडी बदर से डरा हुआ कोटर म सिकुडा हो, जो अपना हाथ बार-बार कोटर म डाल रहा हो।

अम्बालिका लौट आई थी। उसके जोश पर अम्बिका ने ठडे जल के छीटे डाल दिये थे।

(३०)

महर्षि द्वैपायन प्रात की सध्या वदना से निवृत्त होकर अध्ययन म व्यस्त थे। उन्हे भीष्म की प्रतीक्षा थी, जिन्होंने दशन व विचार विमश हेतु समय निश्चित किया था। अन्य शिष्य सुविधा का स्थान देख, वक्ष के नीचे बैठे, अध्ययन कर रहे थे। या, जिज्ञासुओ से चर्चा कर रहे थे। यह जिज्ञासु भी सामान्य ब्राह्मण व पुरोहित नही थे, बल्कि विशिष्ट श्रेणी के थे, जिन्हे राजमहलो मे प्रवेश प्राप्त था। व्यवस्था मे लगे हुए परिचारक तथा उन पर निगरानी करने वाले अपने अपने काय मे लगे हुए थे। भोजनशाला मे ब्राह्मण शुचिता से सात्विक भोजन तयार कर रहे थे। महल म आवास होने के बावजूद स्थान खुला हुआ था। दश्य आश्रम जैसा वातावरण उपस्थित कर रहा था।

धूप मे चमक थी। वायु मन्थरगति से बह रही थी। वृक्षो मे फुदकते पक्षियो का कलरव जैसे श्लोको का गायन कर रहा था।

भीष्म के आगमन की सूचना आते ही सवत्र सजगता हो गई। द्वार से दो रथो ने प्रवेश लिया। पीछे वाले रथ मे भीष्म विद्यमान थे। बानक राजसी नही था। श्वेत एव पीत वस्त्र थे। गले मे रुद्राक्ष की माला शोभा दे रही थी। भाल की विशालता व चेहरे का तेज भव्य व्यक्तित्व के अनुकूल था।

रथ रुका। अभिवादन शुरू हुआ। स्वभावत हर ओर की दृष्टि उन पर केन्द्रित हुई। भीष्म रथ से उतरे। उन्हे उस तरफ ले जाया गया जहा द्वपायन विराजमान थे।

सामने होते ही भीष्म ने चरण-स्पश किया।

तेजस्विता प्राप्त करो। आपकी प्रतीक्षा मे था। द्वैपायन ने आसन पर बठने का सकेत किया।

भीष्म बैठ गये। असुविधा तो नही है, महर्षि ? भीष्म ने पूछा।

व्यवस्था बहुत अच्छी है। कैसी भी कभी नही है। आप जैसा धम सम्पन्न राज्य का सरक्षक हो, तो किसी भी स्तर पर श्रेष्ठता क्यो न प्राप्त हो।

महर्षि, निवेदन है कि आप मुझे सम्मानसूचक सम्बोधन न दें। आपके समक्ष म जिनासु अध्येता बना रहना चाहता हू। आपका वरद हस्त व मागदशन जब तक कुरुवश को प्राप्त रहेगा, वह श्रेष्ठ राज्य ही रहेगा। भीष्म ने नम्रता से कहा।

यह तुम्हारी शालीनता है। मैं मात्र औपचारिकता मे नही कह रहा हू। यह सत्य है। मुक्तता और उत्साह है प्रजा के हृदय मे कि व्यवहार तथा वाणी म छलकता है। एक राज होता है जो राजा के द्वारा चलाया जाता है, एक स्वत

चलता है, क्योंकि कर्तव्यों की व्याप्ति होती है उसमें। न्याय भी सहज स्फूर्त होता है।

प्रयास के रहते भी सतोषप्रद फल नही दीखते। मैंने राज्य विस्तार की भावना को लगभग रोक दिया है। ऐसा अनुभव होता है कि धर्म शुष्क क्रियाओ मे बदलता जा रहा है। लोग मूल सस्कारो से हट रहे है।

तुम्हारा सदेह है। मन ऐसा नही पाया। राज्य विस्तार भी राज्य का निहित धर्म है। क्या उससे मुख मोड़ना प्रभाव को सकुचित करना नही होगा? सैन्य शक्ति सुस्त होकर अपनी दक्षता खो देगी। महर्षि ने भीष्म को देखते हुए पूछा।

भीष्म पल मात्र को चुप हो गये। उनके पास कई उत्तर थे—व्यक्तिगत, परिस्थिति सापेक्ष, तथा नीतिगत। क्या महर्षि ने जानकर इस खोजी प्रश्न को रखा है? सारी स्पष्टताओ के होते हुए भी भीष्म कही न-कही अपने को उलझा हुआ पाते हैं। चित्रागद की अहम्मन्यता भरी राज्यविस्तार की भावना ने उन्हे ठेस पहुचाई थी। उसकी जिद सीमा का उल्लघन कर अप्रत्यक्ष रूप से भीष्म की उपेक्षा बन गई थी। वह क्या करते जब वह चेतावनियो को भी ध्यान दिये जाने योग्य नही समझता था। राजा तो वह था ना। सरक्षण की स्थिति ऐसे मे स्वत तटस्थता ले लेती है।

किस विचार मे हो गये? द्वैपायन ने अबकी मुस्कराकर पूछा।

महर्षि, क्या राज्य विस्तार के लिए निरन्तर युद्धो मे सलग्न रहना जन धन की हानि नही है? जनपद एक तरफ प्रभुत्व अर्जित करता है, तो दूसरी तरफ अशाति की मानसिकता भी सहता है। और पराजित राज्य प्रसन्नता से तो अधीनता नहीं स्वीकार करता। भीष्म ने उत्तर दिया। लेकिन उन्हे लगा यह उत्तर वैसा नही था जैसा वह देना चाहते थे। यह उनके मतव्य से परे हो गया था।

राज्यधर्म और क्षत्रिय धर्म युद्ध से सलग्न है। यह अलग नहीं हो सकते। जैसे वैश्य व्यापार विस्तार के क्रम से तथा ब्राह्मण प्रज्ञा की जागृति के कर्तव्य मे। शूद्र को सेवा धर्म करना ही होगा, वरना समाज शक्ति व सवर्धन कैसे प्राप्त करेगा? सतुलन नही रहा तो ठहराव उत्पन्न होगा या विघटन। पर तुम्हारी यह बात सही है कि कोई भी राज्य निरन्तर युद्धकामी नही रह सकता। युद्ध के अतिरिक्त भी उपाय हैं, अन्य राजाओ व जनपदो को अपने वर्चस्व मे लेने के।

भीष्म को जैसे वह बिन्दु मिल गया जिसके सहारे वह अपनी नीति व मतव्य बता सकें। वह तुरन्त बोले—महर्षि के प्रति निष्ठा रखते हुए मैं अपने विचार रखना चाहता हू, इस आशा मे कि वह मेरी दृष्टि को सशोधित करें। मैं प्रथमत मानता हू कि क्षात्र धर्म हो अथवा राज्य धर्म, उसे प्रज्ञावान तत्त्ववेत्ता ऋषि तथा आचार्य से निर्देश लेना ही होगा। नदृष्टा की प्राप्ति तटस्थ चिंतन से होती है। राजा क्योकि घोर यथार्थ के बीच परिस्थितियो की प्रतिक्रियाओ मे उलझता रहता है, अत उसके निष्कर्ष दोषपूर्ण तथा स्वार्थ केन्द्रित हो जाते है।

साहस नही जुटा पायी। मुझसे कहा कि मैं उनकी इच्छा तुम्हे बता दू। वह मेरी स्वीकृति के बारे मे भी सदिग्ध है।

जसा आपका निणय हो। भीष्म ने आहत उत्तर दिया।

भीष्म क्या सोचते है? व्यास ने पूछा।

तष्णा सीमाहीन होती है। भवितव्य को क्या इससे घेरा जा सकता है? भीष्म चिन्तन मे हो गय थे। कही उनको दु ख था कि राजमाता न अपना मन्तव्य उनसे छिपाया क्या?

मैं स्वय अपन को तैयार नही पा रहा हू। यह तष्णा ही है। परन्तु सुरक्षा की भावना भी। लेकिन यह कैसी सुरक्षा की भावना? वियोग अपरिहाय स्थिति मे समाधान है, वह सामान्य इच्छा की पूर्ति नही हो सकता। तुमने यह समाधान सुझाया था, एसी स्थिति मे क्या सोचत हो?

महर्षि ने जसे अपना सकट भीष्म को हस्तातरित कर दिया। भीष्म कुछ क्षणो के लिए स्तब्ध रहे।

अम्बिका के साथ पहले भी अन्याय हुआ था। उस राजमाता ने पूव सूचना नही दी थी कि मैं प्रस्तुत होऊगा। द्वपायन ने कहा।

वह राजमाता हैं और मा भी। भीष्म ने अपनी भावना अभिव्यक्त की।

हा, मा के सम्बध को मेरे सामन भी रखा गया था। वह अब भी मात आज्ञा के रूप मे प्रस्तुत है।

आप अस्वीकृत कर सकत हैं। मेर सस्कार की बाध्यता है कि मा की अव हेलना नही कर सकता। भीष्म विकल्पहीन थे।

द्वपायन न आपत्ति उठाई। मात आज्ञा यदि अनुचित हो तब। क्या विवेक को झुठला दिया जाये?

आपकी स्थिति भिन्न है महर्षि। पर निद्वद्व तो आपको भी होना होगा।

क्या मुझे अपने विरुद्ध स्वीकृति दनी चाहिए? तुम सही कहत हो। निद्वद्व स्थिति म ही निलिप्त अवस्था हो सकती है अत की। आतमा की। इसक लिए अपने स दूर होना होगा।

यह साध्य तो आपके वश म है। भीष्म ने समस्या पूव बिन्दु पर ढकेल दी।

महर्षि मुस्कराए। राज्य सस्कार एक विशेषता और विकसित करता है—निणय अनिणय की स्थिति मे समय को टाल जाना। यही है न तुम्हारी स्थिति।

अब जसे विचार विमश मे स्थिरता आ गई थी। एक स्थिति सामन थी जिसका समाधान स्पष्ट था। परन्तु धार्मिक गुत्थी म उलझा हुआ। भीष्म ने अपनी सहमति असहमति प्रकट नही की। श्रद्धा दर्शा कर आज्ञा लेनी चाही महर्षि न आशीर्वाद देत हुए आज्ञा द दी।

वह जान रह थे, भीष्म का जानकर अपनाया गया मौन पलायन था।

लेकिन भीष्म जैसे संयमी और विशद अध्येता से ऐसा नहीं हो सकता। द्वैपायन ने बीच में टिप्पणी की।

भीष्म महर्षि की तरह साधना सम्पन्न एवं आत्मजयी नहीं है। शक्ति का केन्द्र होना विचलित होने की सम्भावना हर समय पोषित करता है।

सामान्य राजा के लिए। व्यास ने विश्वास अभिव्यक्त करते हुए अपने मन की बात कही—भीष्म युवा अवस्था से सकल्प का धनी है, उसने कामनाओं को अंकुश में रखा है उन्हें धर्म के मार्ग और प्रजाहित में लगाया है। मुझे किंचित भी सदेह नहीं है कि वह न्याय का अपने लिए अप उपयोग करेगा।

इसीलिए महर्षि, मैं शक्ति और धन को मैनिका, भद्रा, वैश्या व कुपका में, सवका व समस्त प्रजा में विकेन्द्रित करना चाहता हूं। कुरु राज्य की चारित्रिक श्रेष्ठता और सम्पन्नता ऐसा आकर्षण है। उस क्षति के लिए अतिरिक्त शक्ति और सम्पन्नता होनी चाहिए। अभी कुरु राज्य को उस शक्ति को अर्जित करने की आवश्यकता है।

वेदव्यास को भीष्म में नयी दृष्टि दिख रही थी, उन्होंने उसका समर्थन किया। लेकिन फिर भी जैसे चेतावनी दी—पितामह का चिंतन सही है। पर भौतिक सम्पन्नता, अकर्मण्यता व भोग को बढ़ाती है। यह शासक और प्रजा को बेपरवाह बना सकती है। सतत सजगता का धारहीन करके नैतिक बचावा के बहाने ढूंढती है। इसके प्रति भीष्म को स्वयं, तथा प्रजा को सतर्क व सचेत रहना होगा। कुरु राज्य का भविष्य इसी पर निर्भर करेगा।

महर्षि का मार्ग दर्शन, उनकी प्रज्ञा सम्मत सलाह मिलती रहेगी तब भविष्य सदिग्ध नहीं रहेगा। भीष्म के शब्दों में अगाध श्रद्धा थी।

मेरा आशीर्वाद है। परन्तु

परन्तु क्या महर्षि? भीष्म चौंके।

कुछ नहीं। स्वयं मेरे सामने भी स्वीकृति और अस्वीकृति की दुविधा प्रस्तुत हो गई है। कदाचित तुम परामर्श दे सको।

मैं। आपको!! भीष्म आश्चर्य में थे।

प्रवृत्ति और निवृत्ति का द्वन्द्व है। साथ में कर्तव्य का प्रश्न भी है। महर्षि अतिरिक्त गम्भीर हो गये थे। सामान्य व्यक्ति की तरह धुंधले।

भीष्म बोल नहीं पाये।

द्वन्द्व तो धर्म के साथ स्वाभाविक है। आत्मजयी भी निर्द्वन्द्व नहीं है। राजमाता ने चाहा है कि मैं पुन अम्बिका में नियोग के लिए स्वीकृति दूं। धृतराष्ट्र और पाडु क्या उत्तराधिकारी होने के लिए पर्याप्त नहीं हैं?

राजमाता ने अपनी इच्छा मेरे सामने प्रकट नहीं की। ऐसा क्या? भीष्म अचम्भे में हुए जो उनके चेहरे से अभिव्यक्त था।

साहस नही जुटा पायी। मुझसे कहा कि मैं उनकी इच्छा तुम्हे बता दू। वह मेरी स्वीकृति के बारे मे भी सदिग्ध है।

जैसा आपका निर्णय हो। भीष्म ने आहत उत्तर दिया।

भीष्म क्या सोचते है? व्यास ने पूछा।

तृष्णा सीमाहीन होती है। भवितव्य को क्या इससे घेरा जा सकता है? भीष्म चिन्तन मे हो गय थे। कही उनको दु ख था कि राजमाता न अपना म तव्य उनसे छिपाया क्यो?

मैं स्वय अपने को तयार नही पा रहा हू। यह तृष्णा ही है। पर तु सुरक्षा की भावना भी। लेकिन यह कसी सुरक्षा की भावना? वियोग अपरिहाय स्थिति मे समाधान है, वह सामा य इच्छा की पूर्ति नही हो सकता। तुमने यह समाधान सुझाया था, ऐसी स्थिति मे क्या सोचत हो?

महर्षि ने जैसे अपना सकट भीष्म को हस्तातरित कर दिया। भीष्म कुछ क्षणो क लिए स्तब्ध रहे।

अम्बिका के साथ पहले भी अयाय हुआ था। उस राजमाता ने पूव सूचना नही दी थी कि मैं प्रस्तुत होऊगा। द्वैपायन ने कहा।

वह राजमाता हैं और मा भी। भीष्म ने अपनी भावना अभिव्यक्त की।

हा, मा के सम्बध को मेरे सामन भी रखा गया था। वह अब भी मातृ आज्ञा के रूप मे प्रस्तुत है।

आप अस्वीकृत कर सकते हैं। मेरे सस्कार की बाध्यता है कि मा की अव हेलना नही कर सकता। भीष्म विकल्पहीन थे।

द्वैपायन न आपत्ति उठाई। मातृ आज्ञा यदि अनुचित हो तब। क्या विवेक को झुठला दिया जाये?

आपकी स्थिति भिन्न है महर्षि। पर निर्द्वद्व तो आपको भी होना होगा।

क्या मुझे अपने विरुद्ध स्वीकृति दनी चाहिए? तुम सही कहते हो। निर्द्वद्व स्थिति म ही निर्लिप्त अवस्था हो सकती है अत की। आत्मा की। इसके लिए अपने मे दूर होना होगा।

यह साध्य तो आपके वश मे है। भीष्म ने समस्या पूव बिन्दु पर ढकेल दी।

महर्षि मुस्कराए। राज्य सस्कार एक विशेषता और विकसित करता है— निणय अनिणय की स्थिति म समय को टाल जाना। यही है न तुम्हारी स्थिति।

अब उनमे विचार विमश म स्थिरता आ गई थी। एक स्थिति सामन थी जिसका समाधान स्पष्ट था। पर तु धार्मिक गुत्थी म उलझा हुआ। भीष्म ने अपनी सहमति असहमति प्रकट नही की। श्रद्धा दर्शा कर आज्ञा लेनी चाही महर्षि ने आशीर्वाद दत हुए आज्ञा द दी।

वह जान रह थे, भीष्म का जानकर अपनाया गया मौन पलायन था

पलायन या अपने को परिस्थिति स बाहर लेने का प्रयास।

(३१)

अम्बिका के महल का अत पुर। अम्बिका धृतराष्ट्र के निकट बठी थी। धतराष्ट्र काष्ठ के खिलौना को लुढका कर खेल रहा था। लुढकी हुई वस्तुओ तक वह घुटनो के बल चल कर जाता और अनुमान से उनको टटोलता। मिलने मे परेशानी होती तो गुस्से म फश पर हाथ पटकता। परिचारिका उस की सहायता के लिए उपस्थित थी। परिचारिका ने देखा महारानी गम्भीर चिंता म खोई हुई है। जैसे वह कही और विचर रही हो।

परिचारिका विशिष्ट थी। अम्बिका की प्रिय थी। शरीर से स्वस्थ्य, अमित सौंदयवती थी।

स्वामिनि! किस कल्पना म डूबी है? उसन पूछा।

कल्पना मे नही, सोच म।

कैसे सोच मे? उसन धतराष्ट्र को खिलौना पकडाते हुए पूछा। नेत्रहीन धृतराष्ट्र ने खिलौने क बजाये उसका हाथ पकड लिया और उस हिलाने लगा।

अर अर राजकुमार, मेरा हाथ है। यह यह है खिलौना। पर धृतराष्ट्र कलाई को पकडे अपनी ओर खीच रहा था। मेरी कलाई मोच जायेगी राजकुमार, छोडो!

धृतराष्ट्र छोडने का तैयार नही था। पकड म जबदस्त ताकत थी। अम्बिका न सहायता के लिए हाथ बढाया। छोडो राजकुमार! अरे छोडो!! उसन अपनी उगलिया फसाकर, पकड खोली।

धतराष्ट्र टटोल-टटोलकर खिलौन फेंकने लगा।

गुस्स हो गय! आओ, मेर पास आ जाओ। अम्बिका ने अपनी गोद मे ले लिया। परिचारिका अपनी कलाई सहला रही थी, जो लाल हो गई थी।

बहुत कडी पकड है। वह बोली।

जिद भी है। विवशता है न, न दख पाने की।

कितना सुदर रूप पाया है। ब्रह्मा गरीबो के साथ तो अन्याय करता है, राजाओ के साथ भी खेल रच दता है। भला नयन दे देता तो क्या बिगडता उसका? परिचारिका न कहा।

तब यह तुझे दौड-दौडकर पकडता। तू चिल्लाती रहती पर यह छोडता नही। अम्बिका ने मुस्कराते हुए कहा।

अभी भी पग ध्वनि पहिचानत हैं।

हा, लाड भी तो तू ही लडाती है।

स्वामिनि, मर सतान नहीं है। इसलिए प्यार उमडता है। राजकुमार म

खेलते हुए अपने को भूल जाती हू।

मैं भी अपन को भूल जाती हू। सोचती हू जल्दी वडा हो जाए। पर इस सुख म भी बाधा पहुचे, तो मन कस चैन पाये ?

इस सुख मे बाधा कैसी, रानी जी ! यह तो अपका सुख है—मा होने का सुख।

अम्बिका फिर सोच म हो गई। उसका हाथ गोदी म लेटे धतराष्ट्र पर स्वत फिर रहा था।

रानी जी, कोई खास चिता की बात है ? परिचारिका ने पूछा।

हा, तुम्हारी स्वामिनी मर्यादा की देहरी लाघने का साहस नही जुटा पाती ना, इसलिए उसको सीधी गाय समझकर किसी तरफ भी हाक दिया जाता है। अम्बिका का स्वर गिरा हुआ था। उसने दीघ सास अदर ली।

कैसी गाय ? कैसा हाकना, रानी जी ? अपनी चिता को स्पष्ट करिय।

जो चिता सहने के लिए हो, उसे कहने से क्या फायदा ? मैं इतनी अभागी क्यो हू ? जी म आता है धतराष्ट्र को लेकर भाग जाऊ किसी अनजाने वन मे, अपरिचित होकर आश्रमवासिनी हो जाऊ शाति तो पाऊगी।

परिचारिका को ऐसे भावनात्मक विस्फोट की आशा नही थी। वह अचम्भे मे स्वामिनी को देखने लगी। पल भर का अतराल लेकर बोली—रानी जी, आप के पुत्र भविष्य के राजा है। आपको ऐसा नही सोचना चाहिए। आप बताइय तो, मैं आपकी ओर से राजमाता से आपके कष्ट के सम्बध म कह सकती हू। धाय के ज़रिये उन तक आप की चिता पहुचवा दूगी। छोटी रानी से भी कह सकती हू।

किसी से कहने से कुछ नही होगा। एक यातना भुगती है, दूसरी और भुगतनी होगी। या फिर

आपको मेरी सौगध है रानी जी, आपको बताना होगा। छोटी हू, हीन हू, पर आपने मुझे स्नेह दिया है। मैं विधाता को साक्षी करके कहती हू आपके लिए यदि जीवन भी देना पड जाये, दूगी। खुशी खुशी दूगी।

अम्बिका सहानुभूति पाकर और बिखर गई। उसकी आखो से आसू टपक पडे। गोदी मे निंदियाए धतराष्ट्र पर जैसे फुहार गिरी हो। वह कसमसाया।

राजकुमार को मुझे दीजिये। लिटा दू।

अम्बिका ने परिचारिका के फले हाथो मे धतराष्ट्र को सरका दिया।

वह उसे लेकर पलग तक गइ और लिटा कर लौटी। अम्बिका ने आवेश को रोक लिया था। आचल के सिर से आसुओ को सोख लिया था। राजमाता को इतनी दया भी नही है कि धतराष्ट्र छोटा है। कैसी स्वार्थी है उनकी आना और तृष्णा।

परिचारिका अम्बिका के निकट आकर बैठ गई थी। उसने देखा अम्बिका

शून्य सी उसको देख रही थी।

स्वामिनि !

उसे उत्तर नहीं मिला। दृष्टि उस पर निरर्थी सी ठहरी थी।

रानी जी, ऐसे कैसे देख रही हैं। बताइये न अपनी समस्या ?

सुन ! अचानक जैसे अम्बिका के दिमाग में विद्युत कौंधी घटा को चीर कर।

कहिये। परिचारिका ने तुरंत हामी भरी।

तू अतुल सुंदरी है।

परिचारिका चुप रही।

तू मेरा स्थान ले सकती है। अम्बिका ने टकटकी लगाये उसे देखते हुए कहा।

आपका स्थान ! क्या कह रही हैं स्वामिनि !!

हां हां, मुझे समाधान मिल गया। अचानक। अभी।

बताइये।

यह सिर्फ तू जानेगी, या मैं। पर तू मान जायगी ना ?

मैंने अभी सौगन्ध खाई है विधाता की।

उसे छोड़। यह उलझन दूसरी है। राजमाता ने मुझे संतान प्राप्ति के लिए महर्षि वेदव्यास के सामने फिर से प्रस्तुत होने की आज्ञा दी है। मैं नहीं चाहती। उन से भय लगता है। उनकी कुरूपता की याद कंपा देती है। फिर कोई अंधी, विकलांग संतान होगी मेरा भाग्य फोड़ने को। अम्बिका ने परिचारिका को इस तरह से दोनों हाथों से पकड़ लिया जैसे वह सहेली हो। मेरी जगह तू जा सकती है। मैं अंधेरे की विशेष व्यवस्था कर दूंगी। बता, जा सकती है ना उनके सामने ?

रानी जी, ऐसा कैसे हो सकता है। भेद खुल गया तो मुझे मृत्यु दंड मिलेगा। महर्षि को क्रोध हो गया तो वह शाप से भस्म कर देंगे। राजमाता आप पर क्रोध करेंगी।

कुछ नहीं होगा। दंड की भागी मैं होऊंगी। मृत्यु के उन क्षणों को सहने से अच्छा होगा, छल के अपराध को स्वीकार करना।

मेरे धर्म पर कुलक्षणी होने का कलंक नहीं लगेगा ? परिचारिका ने अपने मन के भय को डरते डरते कह दिया।

इसकी व्यवस्था भी उन्हीं को जाननी होगी जो मुझे आज्ञा दे रहा है महर्षि के समक्ष प्रस्तुत होने की। महर्षि को भी व्यवस्था जाननी होगी। तुम स्वयं निःसंतान हो, और दासी का कर्तव्य निभा रही होगी। अम्बिका की जिह्वा पर जैसे चुनौती देवी रूपा होकर साक्षात अधिष्ठित हो गई थी। क्या चुनौती भी कोई शक्ति रूपा देवी है ?

परिचारिका ने स्वीकृति दे दी।

अभी दो दिवस शेप हैं। तुम आत्मा से सबल होकर परिस्थिति के लिए तयार हो जाओ। महर्षि यदि पहिचान भी लें, तो सत्य कह देना।

कह दूगी स्वामिनि ! इतना आश्वासन प्राप्त करन के बाद मैं साहस से नही डिगूगी। यदि दड भी दिया गया तो दासी होकर स्वीकार कर लूगी।

अम्बिका सतुष्ट थी। उसने त्राणदात्री परिचारिका को अपने गले का आभूपण उतारकर दे दिया।

यह रहस्य तुम्हारे और मेरे बीच म रहे। तुम्हे मैं स्वय रानी की तरह सजाऊगी। अम्बिका ने कहा।

आप निश्चित हो, स्वामिनि ! परिचारिका न झुककर अभिवादन किया। अम्बिका न कृताथ होने के भाव मे उसे स्पश किया। अब उसके चेहरे पर स्वाभाविक दीप्ति झलक आई थी। जैसे उसने पराजित कर दिया था 'होनी' को।

(३२)

किसी श्रेष्ठ नाटक की नाटय स्थिति, जिसका अभिनय होने जा रहा हो। किसी उत्कृष्ट कथाकार की कथा का रोचक अश, जिसम नायिका अपनी दासी को रानी के रूप म सुसज्जित व अलकृत कर, तपस्वी ऋषि को छलने के लिए प्रस्तुत कर रही हा ।

अम्बिका ने उस रूपवती दासी को रानी की तरह आभूपणो से सज्जित किया। उसे इतना आकपक और सुगधमय किया कि महर्षि उसे देख कर चित्त से उद्वेलित हो जाए। अपने कक्ष को क्षीण प्रकाश से इस तरह प्रकाशित रहने की व्यवस्था करवाइ कि रात्रि म सब कुछ स्पष्ट हो, पर प्रकाश और धुधले आवरण मे। यह रहस्य उसके और दासी के बीच मे था। उसकी अन्य परिचारिकाए व दासिया किंचित सदेह मे नही आ सकें, इसकी सतकता बरती।

क्या ? भय, अथवा घबराहट तो नहीं है ? अम्बिका ने दासी स पूछा।

तनिक भी नही। दासी ने उत्तर दिया।

महर्षि बहुत कुरूप है, उनको देखकर भयभीत मत हो जाना।

मैंने उनके दशन किये हैं। देखकर श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह महान तजस्वी हैं।

तब मैं निश्चित हू। तू परिस्थिति को सफलतापूवक निभा ले जायेगी। अम्बिका आश्वस्त हुई।

रानी जी, आप रुष्ट नही हा तो एक बात कह दू आप,से ! सजी-सजाई दासी ने अम्बिका से पूछा।

कहो ?

मैं महर्षि के सामने सत्य रखना चाहती हू।

कसा सत्य ? अम्बिका चौंकी।

यही, कि बड़ी रानी नहीं, उनकी दासी आपके सामने उपस्थित है।

पागल है! महर्षि तत्काल क्रोध में आ गए और वैसे ही लौट गए तब परिणाम जानती है क्या होगा? मुझे राजमाता और भीष्म का कोपभाजन होना होगा। उसके बाद भी बलि चढ़ना होगा। सत्य जब घातक होता दीखे, तब असत्य को अपनाना दोष नहीं है। मेरे साथ भी छल किया गया था। मुझे क्या नहीं बताया था राजमाता ने कि महर्षि मेरे पास आएंगे! मैं पता नहीं कैसी-कैसी कल्पनाएं कर रही थी उस समय। और अब अपने पुत्र की माँ बनने में मेरा दोष कि मैंने डर कर आँखें क्या बंद कर ली! अम्बिका रोष में हो गई।

आवेश में न आएं रानी जी! मैंने इसलिए कहा था कि आप पर आंच न आए। मैं पूर्ण आत्मविश्वास में हूं कि अघट नहीं घटेगा। दासी ने कहा।

मुझे अपने भाग्य पर भरोसा नहीं है। अम्बिका ने उसी विचलित अवस्था में कहा। तू नहीं समझती। जैसे जैसे घड़ी बीत रही है, मेरा दिल घबराहट ले रहा है। जैसे मैं प्रस्तुत होने जा रही हूं। भोर तक मैं शूला की शैय्या पर होऊंगी।

दासी की हंसी नहीं रुक सकी। अपनी स्वामिनी को आश्वस्त करते हुए बोली—आप शूल शैय्या पर होंगी और मैं फूलों की सेज पर। मेरे भाग्य को आपने स्वर्णाक्षरों से लिखे जाने का अवसर प्रदान किया है, क्या वह आपकी कम दया है? जीवन में अमूल्य क्षण, ऐसे अद्भुत क्षण, हर दासी को प्राप्त नहीं होते। फिर दासी ने झुककर रानी के चरण स्पर्श किए। स्वामिनि! अब मुझे आज्ञा दीजिए। आप निश्चिंत होइए कि दासी परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार करेगी। मैं भी अंतःपुर में रही हूं।

मैंने तुम पर छोड़ा। जैसा अवसर देखो करना।

मैं आकर्षक तो लग रही हूं ना?

हां, यदि महर्षि पहिचान न पायें तो वह यही समझेंगे कि

वह कुछ भी समझें पर उन्हें मुझे उपकृत करना होगा। मैं उनके चरणों में पड़ जाऊंगी। संतान की कामना इतनी जागृत हो उठी है कि अनुनय विनय भी करनी पड़ी तो करूंगी। वह याचना अवश्य स्वीकार करेंगे।

अब जाओ मेरे कक्ष में। मैं संतुलित होने का प्रयास करूंगी। अम्बिका उसको लेकर शयन-कक्ष में आई। एक बार व्यवस्था को देखा, फिर मन ही मन सूर्य देव, अग्नि देव का स्मरण कर कक्ष से चली गई।

अकेले होते ही दासी को पलभर के लिए घबराहट हुई, जैसे उसकी छोटी हस्ती को राजत्व की भव्यता ने दबा दिया हो पर दूसरे ही क्षण उसने अपने को सम्भाला। उसी राजत्व ने मुद्रा बदलकर उसके अहं को पुचकारना शुरू किया—तू दासी होकर इस समय रानी है। रानी की भूमिका को एक रात के लिए पा लेना भी पूर्वजन्म के अनगिनत सुकृत्यों का फल है। जन्मना नहीं सही, पर कमी क्या है तुझ में?

उसने उस हल्के हल्के प्रकाश मे एक जलते दीपक के पास जाकर आरसी मे अपना प्रतिबिम्ब झाका। मुग्ध हो गई अपने पर। अदर से अश्वस्यता की तरगे उठी। देह भावनाओ से आरोहित हा उठी। अभी भी वह अपने अलकृत सौंदय को निहार रही थी। जैसे दासीपन के क्षुद्रत्व को विस्मरण की गगा म बहा रही हो।

हा, कितनी ही बार जब वह गगा स्नान के लिए अ य औरतो के साथ गई है—उसने अजली मे पुष्प भर कर प्रक्ट होते सूय भगवान को नमन किया है। फिर उन पुष्पा को धारा म बहाया है।

उसने कामनाए भी मन मे दोहराई हैं। गगा मा, मुझे सु दर, प्रतिभा सम्प न, सतान देना। तुमन भीष्म जसे पुत्र को ज म दिया। क्या गगा मा का आशीर्वाद है यह।

भीष्म का आदश बिम्ब हर नारी की मनोकामनाओ पर आच्छादित है। सतान हो तो भीष्म सी। हा भीष्म सी। दासी के नयन अनायास मुद गये। उसकी आखो मे मनोहारी कल्पना चित्र तरने लगा—गगा मा अति सुदर बालक को गोदी म लिये हुए है। उसे लाड लडा रही हैं। कह रही ह—आ ! इसे ले जा ! तरा ही है।

वह हर्पित सी पलग पर आकर बैठ गई। विभोर हो गई अपने कल्पना ससार मे। ऐसे ससार मे जो तभी उभरता है जब अनुकूल वातावरण हो। अत मुक्त हो। गगनचारी हो।

वह वैसी ही बठी थी कि खट-खट के साथ पदचापो के क्रम ने विस्मति भग की। वह हडबडा कर खडी हुई। जब तक सम्भले सम्भले महर्पि द्वपायन कक्ष मे उपस्थित थे। उसने बिना उ ह पूरी तरह देखे आग बढकर उनके चरण को स्पश किया।

पुत्रवती होओ ! मनोकामना पूरी हो। महर्पि ने आशीर्वाद दिया।

स्थान ग्रहण करिय, महर्पि ! वह धीरे धीरे आगे चलकर उ ह विशिष्ट चौकी तक ले आई जिस पर मृगचम बिछा था।

महर्पि अपना उत्तरीय सम्भालते हुए बैठ गए।

दासी, आपका पूजन करना चाहती है, यदि स्वीकृति दें।

दासी हो ना। महर्पि मुस्कराकर बोले।

दासी पर जैसे अकस्मात पापाण गिर पडा हो। वह विस्तृत आखो से उनको देखने लगी। उत्तर नही बन पडा।

डरो मत ! कुछ छल भी मगलकारी होते है। महर्पि ने धीरज देते हुए कहा। किसी प्रकार का द्वत द्वद्व तो नही है चित्त म ' उन्हाने पूछा।

जा हर तरफ की अनुकम्पा से हर्पित हो, उसम द्वद्व कैस हो सकता है

महर्षि ? मेरे पास है क्या जिस पर गव करू । आपकी निकटता शतशत पुण्य के समान है । पर आपने तुरत छल को तोड दिया ।

मैं भी निश्चय तक पहुचन म अपन स बाहर रूप म लडा हू । पर यह समागम शुभ होगा कुरुवश के लिए । मेरे अध्ययन व आत्मा दोनो ने कहा ।

मैं क्या जानू महर्षि ! मेरे अन्दर एक कामना है मात्र एक कामना । ऐसी सतान ज म ल जो भीष्म सी हो और और दासी अटक गई ।

कहो ! जब कामना का मुख खुला हो तो उसे बलात अवरुद्ध नही करना चाहिए । मुक्तता क्षुब्ध होती है ।

आपकी सिद्ध की हुई आध्यात्मिक शक्ति का अश उसे प्राप्त हो ।

वह लिखित है । हम सब किसी घटना के सयोग मात्र हैं । इच्छाए, तक, योजनाए, प्रयत्न, प्रयास सब आयाजित से होत हुए भी घटना के दुर्गामी परिणाम नही जानत । हर घटना का भी तो भविष्य होता है ।

मैं मूढ क्या जानू, देव ऋषि ! मेरे पास देह है, श्रद्धा है, और सीमित कामना, जो अनायास विस्तार लेकर बलवती हो गई । मुझे पूजन कर लेने की आज्ञा दीजिये । दासी न नम्रता से कहा ।

जैसा चाहो करो, तुम्हारी श्रद्धा पूण है । द्वपायन ने स्वीकृति दी ।

दासी उठी, सज्जित पलग तक गई और उसी पर पडे पुष्पो को अजलि म भर कर ले आई । महर्षि देखते रहे ।

उसने आख मूदी, उनके चरणो मे फूल चढा दिय ।

तुम्ह परम धर्मात्मा, नीतिकुशल सतान प्राप्त होगी । उसका नाम विदुर रखा जायेगा । तुम भी राज्य के भद्रतम परिवारो का स्तर पाओगी ।

यह कैसे होगा, महर्षि ! मुझे यही आशीर्वाद पयाप्त है कि श्रेष्ठ पुत्र की मा बनू । दासी कृतज्ञता के भाव से ओत प्रोत थी ।

यह व्यवस्था मेरी ओर से होगी । धृतराष्ट्र, पाडु के समकक्ष होगा होने वाला पुत्र । क्योकि वह वास्तव मे श्रद्धालु मा की सतान होगी । द्वैपायन की अर्जित साधना की अध्यात्म शक्ति उस मिलेगी । महर्षि न दासी के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रख दिया ।

दासी क रोम रोम स शक्ति स्फूत हो उठी । लगभग अध चैतन्य सी हो गई ।

उठो ! घडी बीत रही है । महर्षि खडे हो गय । वह स्वय सज्जित शय्या की आर बढ गये । सम्मोहित सी दासी उनका अनुगमन करती शैय्या तक पहुच गई ।

रात्रि एक स्वप्न सी घडी घडी, पहर पहर, बीतती रही ।

महर्षि द्वपायन साधक थे, ब्रह्मर्षि थे, अगाध ज्ञान के प्रामाणिक विद्वान थे। भीष्म कुरु वश के तपस्वी सरक्षक थे। द्वैपायन की व्यवस्था उनके लिए धर्मशिा थी, जैम राजमाता की आज्ञा नैतिक बाध्यता।

हस्तिनापुर मे रहन की अवधि म उन्होने यज्ञ के आयोजनो मे भाग लिया। आमन्त्रित किय जाने रर सभाआ म उपस्थित हुए। वेदो की व्याख्या की। अनेक धम सभाओ मे आत्म सयम, गहस्थ्य धम, सु ममाज व्यवस्था, व परोपकार, दान-दक्षिणा व वर्णों के सामज्य पर प्रवचन किये। उनका यह प्रवास आचार्यों, भद्र-जनो, क्षत्रिय, वश्यो, ब्राह्मणो व सेवको के लिए शिक्षण प्राप्त करने का सुअवसर था। जहा वह नही जा पाते, अपने शिष्यो को भेज देते। धम के अनुकूल राज्य व्यवस्था, समाज व्यवस्था, जाति व्यवस्था व गह व्यवस्था होने से ही राजा प्रजा कत्तव्यबद्ध होती है। सयम, उद्यम, सवेदना व परोपकार के बिना वह सूत्र छिन्न भिन्न हो जात है जो समाज को, राज्य को सम्बद्ध करते है। सम्बद्धता नही, तो पाखड फलेगा। पाखड, स्वाथकामी होता है। उसके गभ मे विग्रह पोषित होता है। कोई कुल, कोई वश, कोई राज्य इसलिए अनुकरणीय नही हो सकता, कि वह सम्पन्न है, उसकी चतुरगिनी सेना दक्ष है। वह इसलिए यशवान होगा कि धम, अथ व्यवस्था, कामनाओ और इच्छा के ससार का निर्देशित करता है। राजा एव प्रबधक यदि प्रजा की उपेक्षा कर उसे मात्र कर कोष समझते है, तो वह अन्याय होगा। अन्याय, अत्याचार, शोषण की गति, सवनाश की ओर होती है। इसस सस्कृति विकृत होती है।

द्वैपायन का प्रवचन, राजमाता ने अत पुर मे रखा। भद्रजनो के परिवार की नारिया, राजमाता, अम्बिका, अम्बालिका आदि सब उपस्थित हुई। महर्षि के शिष्यो ने वदना एव मन्त्रोच्चार किया। पश्चात, महर्षि ने उदबोधन किया

मातशक्ति व पितशक्ति, पृथक पथक शक्ति नही हैं। सत्ता का अभिप्राय व्यवस्था से है। व्यवस्था का अथ है सरसता, सामजस्य।

मात सत्तात्मक व्यवस्था मे मा को महत्त्व प्राप्त था। मा, अर्थात वत्सल हृदया जननी। पर जननी का महत्त्व पिता क बगर कस हो सकता है? जो परस्पर एक दूसरे के पूरक हो, और कुल, वश क सरक्षक व पोषक हो, उनमे अधिकार अथवा प्रधानत्व की ईर्ष्या कसे? पुरुष और प्रकृति के मिलन का परिणाम सृष्टि है। जन्म सृजन, उत्पादन, नरत्व व नारीत्व अश के समागम का परिणाम है। समागम, आकषण व परस्पर दान के बगैर नही हो सकता। सष्टि मे जो भी सजीव-निर्जीव, प्राणवत दीखता है, वह इसी यज्ञ का क्रमिक विस्तार है।

द्वैपायन न आख मूदी और जसे आत्मा से सलग्न होकर दैववाणी बोलने लगे।

हमने पित स्नेह की सरसता भी जानी है मातृ के दिव्य वात्सल्य भाव को भी मा की आखा म झलक्त देखा है। वे दोनो पूज्य तत्त्व हैं। दोनो म आत्मा की निश्छलता व मात्र आहुति है। इसलिए आप स्ब महान हैं। भोक्ता या भोग्या के आधार पर विभक्ति गलत है। सधि सनातन है, निरन्तरता है। विभक्ति, विभाजन, श्रेणीकरण, स्तरी करण मात्र समझन के लिए है। निहित सजन प्रक्रिया को समझने के लिए।

अत हे मात शक्ति मैं आपका नमन करता हू आपकी मर्यादा अक्षय रहे। जिस दिन मातृत्व विकृति ले लेगा, या पुरुष भाव, नारी भाव को अपने स निम्न समझेगा, उस दिन राज्य न रहगा, न वश। विघटन हो जायेगा समाज का।

शक्ति रूपा आप सब तन मन आत्मा से कुरुवश को नतिक व आध्यात्मिक ऊर्जा बनिये। भीष्म जसे ज्ञानी, योगी और वीयवत जिस वश के सरक्षक हो, वह निश्चित ही राज्यो मे उत्तमोत्तम, व श्रेष्ठ गिना जायेगा।

इसके बाद महर्षि द्वपायन ने श्लोको का गायन किया। उनकी आत्मा से सरस्वती स्वय लय व माधुय ग्रहण करके सम्मोहित नारी व द के हृदय मे अमिट सस्कार उकेरती जा रही थी।

यह प्रवचन नही था महर्षि द्वैपायन का प्रज्ञावादी दशन था जो परपरा से बहती चली आ रही दष्टियो (दशनो) मे उग आई खरपतवार को नराकर व्यावहारिक, कम केन्द्रित समन्वय पुष्ट, युग धम की खोज कर रहा था। प्रवास काल मे उनकी अतिम चर्चा भीष्म से नितात एकात म हुई।

महर्षि द्वैपायन भीष्म के आश्रम सम भुवन मे भद्रासन पर बैठे थे। सामने भीष्म उनसे कुछ छाटे सिहासन पर बठे थ। निकट, श्रेष्ठफल व स्वच्छ दूध रखा था।

पहले फलाहर ग्रहण कर लिजिये। भीष्म ने निवेदन किया।

महर्षि ने दुग्धपान किया। नाम मात्र के फल ग्रहण किय।

पितामह, विश्रामकाल बहुत सुविधापूण तथा आनन्द म बीत गया। यह सब आपकी सुव्यवस्था है।

महर्षि, यह आपकी अनुकम्पा है जो समय समय पर आकर हम अध्यात्मयुक्त विवेक देते हैं। पर मेरी एक आपत्ति है आपकी नम्रता को लेकर।

वह क्या हो सकती है। महर्षि मुस्करात हुए बोले।

मुने आप पितामह कहते है। अयो को नही मना कर सकता, पर आप तो

फिर मुझे कैसे मना कर सकत हो। प्रजा तुम्हे स्नेह और श्रद्धा के कारण पितामह कहती है। तुम्हारी अखण्ड प्रतिना ने, तुम्हारी जीवन शैली ने, सज्ञा को विशेपण बना दिया।

पर मैं आपसे अपेक्षा नही करता। भीष्म ने कहा।

क्यो नही करते ? यह मेरे अत की श्रद्धा है। क्या परस्पर श्रद्धा का सम्बध नही हो सकता। इससे पूव की चर्चा म मुझे लगा था कि तुम कही बहुत सही थे, मैं गलत दिशा म सोच रहा था। वही, राज्य विस्तार के सम्बध मे जो चर्चा हुई थी। मैं राज्य धम और क्षत्रिय कत्तव्य के साथ राज्य विस्तार को अभिन्न मान रहा था, तुमने उसका दूसरा पक्ष भी रखा। मुझे उस विचार मे सार लगा। वह नारद के चिंतन स जुड़ा है।

भीष्म को उस चर्चा का ध्यान आया, जो उनक और महर्षि के बीच हुई थी, जब वह इससे पूव नगर मे आए थे। भीष्म न देवर्षि नारद के विचार जानने के लिए उत्सुकता प्रकट की।

द्वपायन की उगलिया अनायास अपने जनऊ मे फिरन लगी, जसे इस क्रिया का अज्ञात म चिंतन प्रक्रिया स सम्ब ध हो। वह बोले—नारद ऋषि का मत था कि राजा को राज्य विस्तार से पूव अपने जनपद की सुदढता को पहिचान लेना चाहिए। मात्र सै य शक्ति की श्रेष्ठता किसी राज के प्रबल होने की साक्ष्य नही हो सकती। राज्य की कृषि, व्यापार, निर्माण कला, अमात्यो, पुरोहितो की परिषद् व कर व्यवस्था सब सुदढ हो। नगर व पुर मे सम्पन्नता की दष्टि से अतर नही हो। शक्ति का स्रोत तो पुर है। ग्राम व्यवस्था यदि सम्बद्ध व विकसित होगी तो राज्य को बलवधक रक्त प्राप्त होता रहेगा। राज्य प्राणवत रहेगा।

कहते कहते महर्षि चुप हो गय, जैसे चिंतन म खो गये।

भीष्म न इस स्तब्धता को छितराना चाहा। किस चिंतन मे हो गये, महर्षि ?

पितामह, मुझे किन्ही क्षणो म लगता है, मैं कुरुवश से अत से बधता जा रहा हू। अध्ययन व साधना के अतिरिक्त कुरुवश को लेकर कल्पनाजीवी होने लगता हू। यह मोह की दशा है।

मोह नही महर्षि, जीवन की साथकता है। मोक्ष यद्यपि अन्तिम व परम लक्ष्य है, पर माध्यम तो यह देह और प्राण है। अथ और काम धम तथा मोक्ष के बीच के पुरुषाथ है, इनसे छटना कसे हो सकता है ? धम इन्ही के सुनियत्रण की तो विधा है।

तुम ने उस दिन मेरी दुविधा के सामने मातत्व के प्रति कतव्य की बात रख दी। मैं आत्म विश्लेषण म खो गया। राजमाता की कामना, उनकी आज्ञा, एक तरफ थी, दूसरी ओर मेरे सामने प्रश्न था—यह सम्बध का आग्रह मेरे साथ क्यो ? तब कुरुवश का भविष्य कल्पना मे खडा होने लगा। धतराष्ट्र नेत्रहीन। पाडु, पाडु से ग्रस्त। ऐसा प्रतीत हुआ कि राजमाता प्रश्न कर रही है—क्या मेरा निवेदन मेरी तृष्णा है ? मात्र कामना कि तीसरी राज सतान और हो ?

यह प्रश्न निरतर मेरे सामने होता रहा। और अत में राजमाता का निवेदन मात आज्ञा जैसा बन गया। मा, शक्ति रूपा हो मस्तिष्क म उपस्थित होने

लगी।

भीष्म के होठो पर मुस्कराहट प्रकट हुई। वह इस भावना के अनुभवी थे। उन्होने कितनी ही बार राजमाता को अपनी अतद्वद्व की स्थिति म शस्य श्यामला वसुधरा देवी क रूप म देखा है। वह होठ-ही होठ मे जसे कोई मत्र बुदबुदाने लगे।

मैंने स्वीकृति दे दी पितामह, पर इस भय के साथ कि कही अम्बिका का असहयोग फिर कोई दुघटना न घटित कर दे। लेकिन उसका छल कुरुवश के लिए वरदान बन गया।

कमा छल ? कैसा वरदान ? भीष्म चौंके।

अम्बिका स्वय उपस्थित नही हुई दासी को अपनी तरह शृगार करके भेज दिया। दासी की श्रद्धा व निश्छलता मुझे अभिभूत कर गई। मेरी तटस्थता हट कर, आत्म विलय बन गई। बडा अदभुत व अनिवचनीय समपण था, जिसकी मैं स्वय कल्पना नही करता था। कदाचित उस दासी को सतान ही मेरी आत्मा की सतान होगी। उस दासी के समक्ष होने वाली सतान का नाम मेरे मुह से अनायास निकल गया—विदुर।

सयोग भी क्या किसी दवी शक्ति स नियन्त्रित होता है ? भीष्म ने पूछा।

शक्ति का धारक भी तो शुद्ध अत होता है। वही आत्मा का पर्याय है। क्या पता सयोग और आत्म क्रिया मे अप्रकट प्रक्रिया हो ? बहुत कुछ हमारे ज्ञानातीत भी है। इतना अवश्य है कि विदुर तुम्हारी तरह कुरुवश का विवेक होगा।

आपकी भी तरह, महर्षि ! भीष्म न कहा।

तुम कुशल वाग्विदग्ध हो, भीष्म !

नही महर्षि, यह मेरी श्रद्धा और

रुक क्यो गये ? आगे बोलो।

किसी सम्बन्ध को निरन्तर अपने अदर पाना अत की विवशता भी हो सकती है।

कसी भावना मे हो जात हो, पितामह ! महर्षि जसे उद्वेलित हो उठे।

यह देह धम की अनिवायता है। भीष्म ने नत होते हुए कहा।

मैं जानता हू भीष्म। पर यही तो कठोरतम स्थिति है—जुडना, उबरना। उबरना, जुडना। उसके साथ प्रज्ञा को प्रखर रखना।

महर्षि द्वैपायन हस्तिनापुर मे यज्ञ की शुद्ध सुगध से आये थ, अपने आश्रम मे श्वेत जलधर-से पहुच गये।

(३४)

सरक्षण और विशिष्ट सहानुभूति रेखांकित कर सकते हैं परन्तु दर्जा नहीं

बदल सक्ते। रेखांकित शब्द का महत्त्व, उस शब्द तक सीमित रहता है, वाक्यें और वाक्य के अ य श०" तो सामा य स्तर पर ही रहते है।

दासी के पुत्र हुआ। महर्षि के कहे अनुसार उसका नाम विदुर हुआ। भीष्म द्वारा बच्चे को खास सरक्षण प्रदान किया गया। व्यवस्था की गई कि दासी और उसके पति को सम्भ्रात स्तर की सुविधाए उपलब्ध की जाए।

महर्षि ने राजमाता को चलत चलते बताया था कि पुत्र अवश्य तेजस्वी तथा कुरुराज्य का शुभचितक होगा, पर राजमाता को अपने दो ही पौत्रा से सतुष्ट होना होगा।

ऐसा क्यो, महर्षि ? राजमाता ने पूछा था।

मर्यादा विवशता होती है। वह व्यवस्था भी होती है, यदि श्रद्धापूवक स्वी कार की जाये। पर तु इससे भी प्रवल होता है व्यक्ति का अत। उसकी भी स्वतत्रता तथा इच्छा को महत्त्व दिया जाना चाहिए। महर्षि ने उत्तर दिया।

राजमाता महर्षि का सकेत नही समझ सकी थी।

महर्षि न तव बताया था, उनका सगम अम्बिका से नही, उसकी दासी से हुआ है, और राजमाता की कामना को वह पुत्र पूरा करगा।

राजमाता सुनते ही क्षुब्ध हो गई थी। अम्बिका की अवज्ञा और उसके छल रचने ने उ ह आवेश युक्त भी नही किया। उनका रग धूमिल हो गया था। वह जैसे उस परास्त विहगम की तरह हो गई थी जिसे उडते उडते सामथ्य भ्रम अहसास करना पड गया हो।

महर्षि ने उनसे कहा था—राजमाता को किसी भी तरह दु खी नही होना चाहिए। अम्बिका यदि अनिच्छा से नियोग की आज्ञा को स्वीकार करती तो फिर दुघटना घटित हो सकती थी। यह एक पक्षीय सस्कार नही है। वह दासी और उससे होने वाली सतान को अपना स्नेह दें।

महर्षि समझा कर गये, पर क्या मन इतनी सहजता से भग्नाशा को स्वीकार कर लेता है ? राजमाता ने यद्यपि अम्बिका से कुछ नही कहा (शायद नतिक साहस नही था), न दासी पर रोप दिखा सकी, लेकिन दीघ समय तक परिस्थिति से सामजस्य नही बठा सकी। वह अम्बिका से उदासीन रही। दासी को महत्त्व नही दे सकी। विदुर के ज म लेने के बाद भी उ ह वह दासीपुत्र ही लगा। क्या वह दासीपुत्र नही था ? बीज से धरती की श्रेणी तो नही बदल सकती। राजा के क्षेत्र से पदा सतान राजरक्त वाली होगी, दास के क्षेत्र की सतान निम्नरक्त की।

राजमाता को ताज्जुब होता कि भीष्म दासी की सतान के लिए विशेष सहानु भूतिपूण होत जा रहे थे। अम्बिका का धृतराष्ट्र, अम्बालिका का पाडु, दासी का विदुर भीष्म की पूछ-ताछ, शिक्षा व्यवस्था के अतगत बढने लगे। लेकिन बालको की भि न स्वभाव वाली माताओ का उनका अपना स्नेह, पालन-पोपण, चरित्र

और विचार वत्त, उनके विकास में महत्त्वपूर्ण योग दे रहा था।

अम्बिका मन से कमजोर, धृतराष्ट्र के बलिष्ठ शरीर और उसकी ताकत के कौतुका को देखकर सतुष्ट होती। धतराष्ट्र अखाडे म पहुच कर चाहे जिसको चुनौती देता था। जीतता, तो अट्टहास करता, हारता, तो खीझ उठता। दुबारा चुनौती देकर, नियमो का चालाकी से उल्लघन कर, सामने वाले को पटखनी मार देता। उसकी आपत्तियो को झूठ बताकर अपनी जीत का ठप्पा रखता।

अम्बिका उसकी बडप्पने की बातो पर विश्वास करती। वह चाहती थी कि धृतराष्ट्र धम, दशन और नीति का अध्ययन गम्भीरता से करे, लेकिन वसा वह नही पा रही थी, जब भी सुनती तो इन विषयो को लेकर विदुर की तारीफ सुनती।

वह समझाती—पुत्र, तुम्ह आग चलकर राज्य का उत्तरदायित्व सम्भालना है। कुरुवश की प्रतिष्ठा धम व नीति कुशलता से बढी है। उसमे पारगत होना चाहिए।

उत्तर सीधा मिलता—धम और नीति राजा के लिए नही, प्रजा के लिए होती है। राजा तो उसका पटुता से उपयोग करता है—कभी तलवार की तरह, कभी ढाल की तरह। फिर दासीपुत्र विदुर मेरा मित्र है, जो मात्र इन्ही विषयो मे रुचि लेता है। पितामह का उस पर खास स्नह है।

पितामह तो तुम्हे भी बहुत चाहते है, मैंने सुना है। अम्बिका कहती।

हा, पर पितामह बडे सयमी और भावशून्य है। उनके पक्ष का पता नही लगता। फिर मैं कैसे जान सकता हू ? मैं तो अधा हू। धृतराष्ट्र तनिक उदास-सा कहता।

पक्ष की बात तुम पाडु के मुकाबले से करत हो। ऐसा तुम्ह नही सोचना चाहिए।

क्यो नही सोचना चाहिए ? पाडु को धनुर्विद्या स्वय पितामह सिखा रहे हैं। व्यायामशाला मे उस के अस्त्र शस्त्र सचालन की तारीफ सारे भद्र कुल के शिक्षार्थी करते है। क्या मुझे छोटापन महसूस नही होता ? पितामह मेरे अधेपन पर दया करते हैं। यही उनके स्नह का कारण है। धतराष्ट्र के मन की बात तकर ऊपर आ जाती।

अम्बिका किशोर धतराष्ट्र को कलेजे से चिपकाकर थपथपाती—पाडु तेरा छोटा भाई है। तेरी मौसी का बेटा है। उससे किसी प्रकार की ईर्ष्या नही पालनी चाहिए। तुम सिहासन पर बैठोग, तो वही तुम्हारा दाया हाथ होगा।

मुझे किसी पर विश्वास नही है। मेरा भविष्य निशाने के लिए लटकी उस काठ की गोली के समान है जिसे कोई भी बाण भेद कर धरती पर गिरा सकता है। लकिन तुम्हारी सौगध मा, जिसने मेरे हक पर हाथ डाला, उसका बाहा म भीच

फेर खत्म कर दूगा। वह कोई भी हो। धृतराष्ट्र अम्बिका की पकड से अलग हाकर अपने लम्बे, बलिष्ठ, हाथो को प्रदर्शित करता होता। उसका चेहरा गुस्से से ताबई वण का हो उठता।

धतराष्ट्र का दूसरा पक्ष विलास का था। जिसपर अम्बिका का भी बस नही था। यह तथ्य भीष्म को भी पता था। किशोर अवस्था म ही वह मदिरा का अभ्यस्त होता जा रहा है। उनकी मनाही प्रताडना के बावजूद धृतराष्ट्र ने अपनी आदत नही छोडी।

राजमाता ने समय के साथ अजीब उदासीनता ले ली थी। न उत्साह था, न किसी भी कामना के प्रति विशेष ललक अम्बिका के प्रति स्थाई दरार सी पड गई थी उनके मन मे। अपने दिय धोखे को वह बडे होन का अधिकार मानती थी, पर अम्बिका का छल उनकी दृष्टि म स्पष्टत मर्यादा का अतिक्रमण था। अम्बालिका कैसी भी जिद्दी हा, पर उसने उ ह नीचा नही दिखाया। महर्षि परिस्थिति को सम्भाल कर चले गये, उनकी जगह कोई दूसरा होता ता

भीष्म ने सदेश भिजवाया कि वह राजमाता से मिलना चाहत हैं। राजमाता का आश्चय हुआ। भीष्म को यकायक राजमाता से मिलन की क्यो आवश्यकता पडी ? राज्य सम्बधी कसी भी मत्रणा व राय लेने दने की व्यवस्था को वह पहले ही भीष्म को सौप चुकी थी। उ हाने भीष्म से कहा था—भीष्म, मैंन जो भी किया था, चाह तुम्ह भी पहले से न बताकर, वह कुरवश और कुरुराज्य के भविष्य के लिए किया था। पर मैंने पाया कि अम्बिका के छल न मुझे हर तरफ से पछाड दिलवा दी। द्वपायन न ऐस स्वीकृति दी, जस मेरी मृगतष्णा को मूर्तता देने की दया कर रहे हा। तुम दूर हुए, कि मैंने तुम से पहले क्यो नही कहा। अम्बालिका की बात मुझतक आ गई थी, कि वह मेरा ही नही तुम्हारा भी विरोध करेगी मगर उसको नियोग के लिए कहा गया। और अम्बिका ने मेरे सामने इतनी कठार सास्कारिक स्थिति सामने ला दी कि मैं दासीपुत्र का राजकुमारो के समकक्ष मानू। मेरे सारे सम्बध कसलापन ल गये तथा क्यो ? क्या मैं इतनी दोषी रही ?

भीष्म ने राजमाता को टूटा हुआ और आत्मवचना के घेरे मे पाकर साधना चाहा था। पर उ ह लगा था, राजमाता बहुत बिखर गई हैं। उनके प्रयास से वह सिमटन वाली नही है। और उसी क्रम मे राजमाता न कहा था—भीष्म, आप वीर हो, धैयधन हो जिसपर पुस्प हो। मैं अब राजमाता के उत्तरदायित्व को तुम्हे सौंपना चाहती हू। मैं निवत्त होकर नान ध्यान मे लगना चाहती हू। मुझे स्वतत्र करो इस बोझ से।

कैसे हो सकेगा ? जैसी उद्विग्नता और उचाटपन आप अनुभव कर रही हैं वसा मुझमे भी उठता है। लकिन, क्या निस्तार है ? राजमाता, मैंन मात दवी

को छवि को श्रद्धा तथा आस्था दी है। वही आप हैं। आप की विरक्ति, मुझे भी मेरे उत्तरदायित्व स हटा सकती है। मेरी क्षणिक क्षुब्धता को मेरा स्थाई भाव नही मानना चाहिए आपको।

भीष्म, यह दूर होने, पास होने ऊपर-ऊपर औपचारिकता निभाने, और अतर म स्थाई रहन का खेल मन म क्यो चलता है? इससे तकलीफ कितनी होती है?

भीष्म ने स्थिति को ज्यादा बोझिल न होने देने के प्रयोजन से सिर्फ इतना कहा था — यह शाप है गहस्थ्य और कमबधन मे बने रहने का, राजमाता।

मैं इस शाप से मुक्ति चाहती हू। राजमाता ने कहा था।

भीष्म मुस्करा दिये थे। मा भी कभी-कभी कितनी अपरिपक्व, चचला हो जाती है। आप जसा चाहगे, वैसा होगा। समय का अतराल शायद स्थिर कर दे। वह कहकर चले गये थ। राजमाता के मन की उद्विग्नता बनी रही थी। इस तरह का उहा पोह, आतरिक खिचाव, उनकी स्थाई स्थिति बन गई। कितना लम्बा समय खिच गया! और राजमाता के दशन की इच्छा भीष्म ने इतन वर्षों बाद अब अभिव्यक्त की है! क्या? क्या किसी ठहराव को फिर मथना चाहते है?

(३५)

परिचारिकाओ और दासिया से राजमाता ने ऐसी व्यवस्था करवाई थी जसे उनका पुत्र वर्षों की यात्रा के बाद महल म लौटा हो। हा, वर्षों की ही दूरी थी, क्योकि एक ही क्षेत्र म रहते हुए दोनो दो छोरो पर रह थे। भीष्म, राजकाज मे व्यस्त, अपनी आध्यात्मिक साधना व अध्ययन मे लग हुए। राजमाता, मन्त्रियता से कटी, पूजा-पाठ मे सलग्न। भीष्म ने शीघ्रता से बडे होत हुए धृतराष्ट्र पाडु, विदुर, मे राज्य का भविष्य देखा था। वह उसी को सवारने मे लगे थे। उन्होने कुरु राज्य की आतरिक व्यवस्था को सुदढ और श्रेष्ठ बनाने का भरसक प्रयत्न किया था तथा उसे पुरो व ग्रामो तक पहुचाया था। उनका उद्देश्य था कि राज्य के वासी यज्ञ व देवताओ की आनुष्ठानिक क्रियाओ को मात्र कम काड के रूप मे न लें, बल्कि उससे आतरिक बल ग्रहण करें। इसके लिए उन्होने आस्थावान प्रचारको का विभाग बनाया तथा उन्हे राज्यभर मे छितराया। एक बार फिर कुरु राज्य की आर्थिक सम्पन्नता, सामाजिक बुनावट स्थापत्य व अन्य कलाए दूसरे राज्यो के लिए अनुकरणीय बन गईं। सेना का कौशल व उसकी दक्षता का यश, बिना युद्ध किये, उत्तर दक्षिण पूरब-पश्चिम के गणो तक पहुचता रहा। भीष्म न जिस तरह उत्पाती वनवासियो और लुटेरो को सेना द्वारा काबू म करवाया, उससे आसपास के क्षेत्रो मे शाति बनी रही। प्रौढता की आयु मे प्रवश होत भीष्म ने

अपनी दिनचर्या मे, अपनी व्यस्तताओ मे अपने को भुला दिया। कर्म और स्वप्न मिलकर आयु और देह की क्षमताओ को ऊर्जा का अक्षय कोष दान देते है। एक तान होती है, भावनाओ की समपुञ्जता होती है, जो छोटी छोटी निराशाओ और अन्दर के क्षयकारी अकेलेपन को पनपने नही देती। भीष्म की आध्यात्मिक साधना अत को शक्ति सम्पन्न रखने का साधन थी। साध्य तो वह कल्याणकारी राज्य व्यवस्था थी जो अह और अहकार से दूर होकर वात्सल्य भाव के प्रसार व विस्तार मे थी। इसी मे उनकी तेजस्विता का रहस्य था।

वह राजमाता के महल मे पहुचे तो राजमाता स्वागत के लिए तैयार थी। राजमाता ने दृष्टि उठाकर देखा। सम्भ्रम मे हो गई। इतना मोहक और तेजस्वी रूप ! क्या भीष्म ने कायाकल्प प्राप्त किया है ?

राजमाता के चरणो मे भीष्म का नमस्कार। उन्होने माथा झुकाकर अभिवादन किया।

शत शत आयुवान हो। सूर्य देवता सी तेजस्विता दिग् दिगन्त मे फैले। राजमाता ने आशीर्वाद दिया। उनका मन तरगित हो रहा था। दृष्टि अभी भी भीष्म पर मोहित सी ठहरी थी। यह कैसा अपरिचित उद्वेग था ? दासियो ने आरती की थाली राजमाता की तरफ बढ़ा दी।

यह क्या राजमाता ? भीष्म ने आरती करती हुई राजमाता से पूछा।

राजमाता बोली नही। आरती करके उन्होने फूल वारे।

अन्दर चलो !

दासिया आगे आगे। फिर राजमाता। उनके पीछे भीष्म। राजमाता के इस तरह के स्वागत से भीष्म आश्चर्य मे थे। इतनी औपचारिक व्यवस्था पहले तो नहीं की राजमाता ने ?

अत कक्ष भी सुसज्जित था। छोटा सा सिंहासन भीष्म के लिए था। उसी के सामने राजमाता की चौकी थी।

दासी ने सिंहासन का स्पर्श कर जैसे उसकी कोमलता का अनुमान किया हो ! फिर पितामह से बैठने का निवेदन किया।

दूसरी दासी ने कक्ष के कोना मे रखे धूपदानो मे धूप डाली जिससे वातावरण सुगधित बना रहे।

भीष्म अपने उत्तरीय को सम्भालते हुए बैठ गए। राजमाता भी बैठ गई। तब दासी ने मधु व दूध उपस्थित किया।

भीष्म ने दूध नही लिया। मधु पीकर रख दिया।

फलाहार ! राजमाता ने आज्ञा दी।

नही, राजमाता ! उसकी आवश्यकता नही है। आप। इतनी भी।

वर्षों बाद आए भी तो हो। राजमाता बोली।

भीष्म चुप रहे। वह राजमाता को देख रहे थे।

कुशल तो हैं? उन्होंने पूछा।

हां। राजमाता ने उत्तर दिया।

स्वास्थ्य क्षीण हुआ है। भीष्म ने राजमाता की कृष-काया को देखकर टिप्पणी की।

अवस्था क्या अपना प्रभाव नही दिखायेगी? अब तो जाने की अवधि है, कभी भी दैविक निमंत्रण आ जाये।

अभी कैसे आ सकता है। वह तब तक नही आ सकता

कदाचित जब तक भीष्म न चाहें। यही ना? अमृत फल तो नही उपलब्ध करवाया तुमने, फिर ऐसी आशा कैसे? राजमाता मुस्करायी।

वह तो उपलब्ध है आपको। जीवेष्णा ही अमृत फल है और अमृत रस भी। पौत्रों के पुत्र नही देखने है? कुरु राज्य का यश विस्तार होने के दिन तो अब आए हैं। राजमाता, राजकुमार धृतराष्ट्र और पांडु युवा होने जा रहे हैं। रिक्त सिंहासन जब स्वामी पाता है, तब वह महत्वाकांक्षी सपने उगाने लगता है। उसकी सार्थकता इसी मे है। महाराज शान्तनु का वरदान अधूरा कैसे रह सकता है?

मोह की मृगतृष्णा भी उतनी ही आकर्षक होती है, जितनी राज्य विस्तार की मृगतृष्णा। उदासीनता का भी सुख कम नही होता, भीष्म! उसमे न आघात होते हैं, न उनमे उत्पन्न तनाव।

लेकिन राजमाता, उत्तरदायित्व और कर्म से छुटकारा कैसे ले सकता है मनुष्य? भीष्म ने प्रश्न किया।

दूसरों को स्वतन्त्र करके। उत्तरदायित्व व अधिकार, अहंकार को भी पोषित करता है। उसके निर्भाव मे दूसरों की स्वतन्त्रता और इच्छाएं रुकावट पाती हैं। तब अवज्ञा शुरू होती है। वश नही चले, तो छिपाव व छल। ऐसी स्थितियों से बचकर अपनी शान्ति को स्थिर रखा जा सकता है। मैं बहुत सुखी हूं।

भीष्म, राजमाता की उदासीनता को जानते थे। लेकिन उन्हें यह नही पता था कि आन्तरिक रूप से वह इस कदर हटाव ले चुकी है। वह बोले नही, परन्तु राजमाता को स्थिर दृष्टि से देखने लगे।

इतनी दृढ़ दृष्टि से क्या देख रहे हो? इसमे बहुत तेज है, जिसे राजमाता अब नहीं सह सकती।

क्यों राजमाता? मुझे तो ऐसा नही लगता।

राजमाता के अन्दर से गहरी सांस उठी, जो स्वर तोड़ती हुई परास्तता बिखेर गई। वह जल कण की तरह सूनी और धुआंई हो गई बाहर से लज्जित व अस्पष्ट सी। राजमाता, आपका मेरा आना कदाचित असुविधा मे डाल रहा है? भीष्म ने उनको उससे उबारने के लिए प्रश्न किया।

नही, असुविधा मे नही, बल्कि भय मे। सुख और भय दोनो। पर भीष्म, अपने आने का प्रयोजन तो बताए।

वह तो बताना ही है और आपकी राय भी लेनी है। राजमाता से एक प्रश्न करने को मन कर रहा है क्या वह स्वीकृति देंगी?

पूछ लो। लेकिन इतना मत कुरदना कि मैं अशान्त हो उठू।

आपने मेरी स्थिति को कभी ध्यान म लिया? मैं क्या हू? और इन राजकीय तथा वश सम्बधी जटिलताओ म क्या पडा हू?

राजमाता तत्काल बोली—कक्ष की नीव यह प्रश्न दीवारो स करे तो वे क्या उत्तर देंगी।

राजमाता, मैं कमजोर नही हू, न उस दष्टि से यह प्रश्न कर रहा हू। लेकिन सबलतम व्यक्तित्व का भी शक्ति स्रोत होता है, अगर वह उसमे विमुख हो जाय, तो कभी-कभी अत अपने विरुद्ध होकर क्रूर प्रश्न करने लगता है—विचलित करने वाले प्रश्न।

करने लगता है भीष्म, मैं भी इस अनुभव से गुजरती हू। तुम क्या ममझते हो कि हस्तक्षेप न करन को अपना लेने से मैं परिस्थितियो स अनभिज्ञ हो गई हू? ऐसा तो हो भी नही सकता यहा रह कर। राजमाता मे जैसे साहस बना।

वक्त आ गया है राजमाता कि आप अपने स यास से बाहर आए। धृतराष्ट्र और पाडु युवा हो रह है। विदुर भी अध्ययन तथा विद्वता म परिपक्व हो रहा है। जिस कुरु वश के लिए हमने स्वप्न दखे, वह अब यथाथ होने को है, तो विरक्त कसे हुआ जा सकता है? भीष्म स्वर और शब्दो म सशक्त हो रहे थे। वह आग बोले—मुझे राजमाता की शक्ति तथा उनके सम्बल की आवश्यकता है। सिफ मन्त्रि मण्डल के लिए, या शासकीय प्रब ध म नही, बल्कि अपन लिए भी। मा की शक्ति पाये बगैर मुझे कभी कभी सब असतोषप्रद लगता है। जब भी व्यवस्था को लेकर कठोर होता हू, एसे विचार सुनन को मिलते है जिनसे ध्वनित होता है कि मैं सत्ता अपने हाथ म रखना चाहता हू। यह दूसरो के द्वारा सधान गये ममभेदी व्यग्य होत हैं।

राजमाता आश्चयचकित हो भीष्म को देखन लगी। क्षणभर के लिए चुप हुइ फिर गम्भीर होती हुई बोली—भीष्म के लिए एसा भी काई कह सकता है? सत्ता ही अगर प्रिय है भीष्म को तो उसके सामने रुकावट कहा है? मैं राजमाता होने के नाते उसे सिंहासन पर बैठने की आज्ञा दे सकती हू। क्या यह धतराष्ट्र के नेत्रहीन होन के कारण और पाडु के छोटे होने की वजह से न्यायसगत नही होगा? क्या भीष्म भी ऐसी आधारहीन टिप्पणियो से प्रभावित होता है?

वह प्रभावित नही होता, पर राजमाता का समथन व आशीर्वाद चाहता है। इसमे भी ज्यादा वह राजमाता की सक्रियता चाहता है। मैंने पिछली अवधि मे

आपको इसलिए परेशान नही किया कि आधारभूत तैयारी करनी थी। महर्षि द्वैपायन को सम्मति के अनुसार मैंने अन्दर-अन्दर सकल्प लिया था राज को हर तरह से शक्तिशाली बनाने का। राजकुमारो को श्रेष्ठ शिक्षा दिलाने का। वह बहुत बडे हिस्से म पूरा हुआ। अब राज्याभिषेक और इनके विवाह की समस्या है। इस सम्बन्ध मे सम्मति लेने आया हू। भीष्म राजमाता की उदासीनता पर अब तक विजय प्राप्त कर चुके थे। उन्होने उपयुक्त क्षण जानकर मतव्य वह दिया।

राजमाता को स्पष्ट अनुभव हुआ कि राजनीतिकुशल भीष्म ने मोह का चक्रव्यूह रच दिया। अब वह क्या उत्तर दें? चिंतन म पड गईं।

आप मौन क्यो ह, राजमाता? इतनी समस्याओ के होते हुए आप तटस्थ कैसे रह सकती है? भीष्म के प्रश्न लगभग आग्रह थे।

तुम इसी अभिप्राय से आए हो कि मुझे मेरे स्थान से हटाकर, फिर उसी झझट मे ले जाओ। तब मैं कब मुक्त हो सकूगी? राजमाता ने स्नेहिल हो पूछा।

कर्तव्य मुक्ति नही देत, राजमाता! अपने पौत्रो के विवाह की सोचिए। महाराज शान्तनु के राज्य की सोचिये। धृतराष्ट्र, पाडु विदुर एक-दूसरे के पूरक हैं। इनको आशीर्वाद दीजिये कि एक बार फिर कुरवश की कीर्ति दूर-दूर तक फैले।

राजमाता के सामने अब कोई विकल्प नहीं था। भीष्म के आग्रह के सामने विकल्प हो भी नही सकता था।

उन्होने न 'हा' किया, न 'ना' किया। लेकिन भीष्म आश्वस्त थे कि राजमाता स्थितियो के केन्द्र म आ गयी है।

(३६)

विदुर प्रात की सध्या समाप्त करके बाहर आए और उस दिशा मे मुख उठाया जिधर सूर्य अपनी रश्मि प्रकट कर रहे थे। मन्द गति से चलने वाली पवन वक्षो के बीच से गुजरकर मरमर-सरसर की तरग को विस्तरित कर रही थी। पक्षी आकाश म चहक भरत उड रहे थे—पक्तिबद्ध, स्वतन्त्र, जसे भटके हुए। विदुर न आख मदत हुए पहले सूर्य का नमस्कार किया। उनके चेहरे पर अगाध शान्ति थी तथा होठ ध्यानावस्थित अवस्था म मन्त्र बुदबुदा रहे थे।

इसके बाद वह भ्रमण के लिए चल दिए। रास्त म मिलने वाले पुरजन उनसे नमस्कार करते, जिसका उत्तर वह सौम्य स्मित व नम्र भाव स देते। वह नित्य की भाति गगा दर्शन के लिए जा रहे थे। प्रात का यह कार्यक्रम उनका पदल

त्रा का होता था। इसी बीच जब भी उनकी इच्छा होती वह किसी आश्रम मे क जात। वहा वे ऋषि आचाय से दशन धम पर चर्चा करत। यह सीख उन्ह ीष्म पितामह से मिली थी।

भीष्म जब धृतराष्ट्र, पाडु तथा उन्ह धार्मिक व्याख्यान दे रहे थे, तब उससे रित हो उनमे एक प्रश्न प्रबलतम रूप मे घुमडा। वह उसे शामिल करना ाह रहे थे, परन्तु द्वन्द्व चेहरे पर झलक आया था।

भीष्म न उनकी बेचनी पहचान ली थी। उन्होंने व्याख्यान रोककर विदुर पूछा था—विदुर, इतने विकल क्यो हो रहे हो ? क्या कोई शका उठ रही है न मे ?

विदुर ने सिर नीचे कर लिया और गदन से नकार का सकेत किया।

भीष्म हसे। फिर उनके कधे को थपथपात हुए बोले—विदुर, मर्यादा को भाना और मन म उत्पन्न होने वाली शकाओ का समाधान पाना, अलग लग स्थिति है। एक को दूसरे का बाधक नही होना चाहिए।

विदुर ने दष्टि उठाई। प्रश्न विषय के सम्बन्ध म नही है। जिज्ञासा आपसे म्बधित है, पितामह।

मुझसे भी सम्बधित होगी तो कही नीति के पक्ष से जुडेगी। तुम्हारी विचार ष्टि इसी तरह से निर्मित है।

धतराष्ट्र ने तुरन्त हस्तक्षेप किया। पितामह क्या हम नीति-दष्टि विहीन ?

मैंने ऐसा नही कहा, पर रुचि और रुझान भिन्न होती ह। उसी से मन, स्तिष्क तथा व्यक्तित्व सजन लेता है।

सजन लेता है। हम तीन एक ही वातावरण मे पलते हुए भी चरित्र म भिन्न ह। पाडु न सहज भाव से कहा, परन्तु धतराष्ट्र को प्रतीत हुआ जैसे छोटा ाई होते हुए भी पाडु उन पर व्यग्य कर रहा हो।

भीष्म उत्तर दें, इससे पूव धृतराष्ट्र की अहम्मन्यता तथा कटुता शब्दा मे भिव्यक्त हो आई। विदुर दासीपुत्र है, वह क्षत्रिय सस्कार पा भी कसे सकता । और तुम दह स कमजोर हो। इसलिए आखाडे से मल्लयुद्ध स कतराते हुए, नुष का अभ्यास करते हो। स्त्रैण लक्षण तुम्हारे रक्त की विशेषता है।

धतराष्ट्र, भाषा का प्रयोग भी व्यक्तित्व की गम्भीरता तथा हल्केपन का ातक होता है। विदुर को दासीपुत्र कहकर उसे छोटा करने का अधिकार तुम्ह से प्राप्त हो गया ? सतान तो तुम एक ही महर्षि की हो। भीष्म न कठोर ोकर धतराष्ट्र को प्रताडित किया। फिर वह विदुर की तरफ उन्मुख हुए। विदुर, तुम धतराष्ट्र के कहे का बुरा मत मानना। मैं तुम्हारी जिज्ञासा सुनना ाहता था।

विदुर का उत्साह क्षीण हो गया था। वह मौन रहे।

पूछो, जो मन म है। आत्मबल और स्थिति अथवा पदबल की तुलना म, आत्मबल ही श्रेष्ठ होता है, क्योकि वह हर पश्न के सयम स प्राप्त होता है। उसका एक गुण निर्भीकता है।

सत्य को स्वीकारने वाला बुरा नही मानता, पितामह दासीपुत्र हू, यह परिचित तथ्य है, पर मेरी मा, मरे लिए उतनी ही पूज्य है जस राजकुमार के लिए उनकी रानी मा। पूछ मैं यही रहा था कि राजनीतिक व्यस्तता तथा वभाव के प्रपच के बीच भी आप सयमी व शास्त्रविद कैसे हो सके? दोहरे रास्ता को कैसे एक बनाकर चल पात ह?

तपस्या का परिणाम है यह। पाडु न उत्तर दिया।

तपस्या नही, निरतर सीखने की लगन व सीखे के अनुकूल आचरण करने की कोशिश करना। राग और विराग अत के पक्ष है। कृष्ण पक्ष, शुक्ल पक्ष। यही सत्य को खोजने के उपकरण है। जैस माह इनस पूरा होता है। बस मनुष्य राग विराग से। शास्त्र तो ज्ञान देत है, सत्य जीवन की स्थितियो स मिलता है। इसलिए हरएक के पास होता है। विदुर, दूसरों स सहृदयता से मिलो, उनके हृदय को खुलन का अवसर दो, उसी मे से ऐसे अमूल्य सत्य प्राप्त होंगे जो तुम्हारे लिए पथप्रदशक हो सकते है।

विदुर ने पितामह की सीख सदा के लिए गाठ बाध ली थी। वह जितना अध्ययन करते, उससे ज्यादा उन्मुक्त सत्सग करते। उनकी नम्रता व सहृदयता दिनोदिन उनको लोकप्रिय बना रही थी। लोग उन पर विश्वास करते थे तथा अपनी समस्याओं को बेधडक उनके पास लाते थे। उनकी सलाह, जैसे उनकी उम्र को झुठलाती थी।

गगा दशन कर विदुर लौट आए। दिन चढ चुका था। मा प्रतीक्षा कर रही थी कि वह अन्दर आए ताकि उनको अल्पाहार करवाए।

अन्दर आकर उन्होने मा के चरण छुए।

आज देर हो गई न? मा न पूछा।

नही तो। मैं सीधा गगा के दशन करके आ रहा हू। आश्रम मे भी नही रुका।

रथ है, तो उसस क्या नही जाया करत? सुबह से कुछ नही लत। देखो सूरज कितना ऊपर हो जाता है। उन्होने परिचारिका को सकेत किया कि वह अल्पाहार लाए।

विदुर आसन पर बठ गय। तब वह उन्ही के सामने बठ गयी।

मा, क्या मैं अभी भी इतना छोटा हू कि तू सामने बठकर अल्पाहार करवाए, भोजन करवाए। उन्होने अपना उत्तरीय एक तरफ रख दिया।

क्या बहुत बडा हो गया है? अभी तो रेख भी नही पकी। परिचारिका

थाली म फल, नवनीत और दूध भरा भोजन लेकर आई। मा ने उसके
लेकर, स्वय विदुर के सामने रखा। मोही हो पुत्र को निहारन लगी।
र धीर धीरे अल्पाहार करने लगे। वह किसी विचार मे खो गये।
तावे की हर समय सोचत ही रहत हो। क्या साचत हो ? मा ने पूछा।
हाय से पितामह बनना चाहता हू। परतु उनकी तरह अस्त्र शस्त्र सचालन
विद्युद्ध होऊ, उस तरफ मन नही होता।
तुम भी नही चाहिए। मैं अपन पुत्र को योद्धा नही, उस महर्षि के तुल्य
मैं रहिती हू जो मेर हृदय म वसा है।
म कैम रिपिता वेदव्यास के सदभ मे कह रही हो ?
होना उन्ही महर्षि द्वैपायन की छाया मैं तुमम देखती हू। मैंने उनसे वरदान
दखना चाहा भी यही था।
तुम मुझे ज्ञान तथा तपस्या के लिए उन्ही के पास जान दो। विदुर ने मा
हा। फिर इसी इच्छा को स्पष्ट करते हुए वोले—मेरी तीव्र इच्छा होती
स्वरूप मार्ग यहा से चला जाऊ। उनकी अनुनय विनय करके, उनका शिष्य बन
तव अवश्य गुरु बनना स्वीकार कर लेंगे।
को दखा। है भी माँगा था उनसे कि दासीपन का कलक मुझ पर से हटकर मेरे
है माँ कि श को कुरवश की समकक्षता मिले।
जाऊ। वह मल सकती। महल की सुख सुविधा मिल सकती है, पर दासी के
मैंन य त कसे मिल सकती है ? वण व्यवस्था की तरह यह भी स्थाई है।
आगामी व को दृष्टि मे नही लाते। पर धतराष्ट्र समय समय पर मुझे याद
नही हैं। मैं स्वीकार करता हू। करना चाहिए भी।
स्तर स मुक्ति से श्रेष्ठ हो। व्यवहार म, विद्वता मे, चरित्र मे। रानी अम्बिका
पाडु इस भेद है। राजमाता उनकी अस्थिरता के कारण उनसे बोलती तक नही।
दिलात रहते विश्वास तुम पर अधिक है। महर्षि अब जब भी आएगे तब उनसे
तुम उ पकी धारणा भविष्य मे मिथ्या साबित हो सकती है। इसका उपाय
उनसे दु खी था दकर करना हागा।
पितामह का की बात नही समझ पाय। कसी धारणा ? कैसी व्यवस्था ?
कहूगी कि उ—किस धारणा की बात कह रही हो ?
आपको व्यव मुझसे कहा था—कौरवा को तुम्हारे पुत्र को भी वही दर्जा देना
विदुर। राष्ट्र और पाडु का हागा। अभी से धतराष्ट्र का यह सब है तो
उन्हाने पूछा। भी कर सकता है।
महर्षि नही चाहता। मैं महर्षि के आश्रम मे रहना चाहता हू। विदुर ने
होगा जो धत।
आगे वह कुर श मत रखो बेटा, मैंने तुम्ही पर अपने सपने ठहराए हैं। दासी की
परतु म
आग्रह से कह
ऐसी इच्छ

हीनता को मैंने सहा है। तुम्हें मैंने बडी रानी के कक्ष मे, रानी की जगह होकर पूर्ण समर्पण के क्षणो मे पाया है। दासी होकर भी उन क्षणो मे रानी थी। रानी होकर भी दासी, क्योकि मैंने महर्षि को छला नही। सन्यास की तुम सोचोगे तो वश इसी कडी पर समाप्त हो जायेगा। यह भी धर्म की दृष्टि से अधूरापन होगा। गृहस्थ मे होकर द्वैपायन-से बनो।

कामनाओ की मरीचिका व्यूह होती हैं, मा!

हा, पर इनका दमन कर सन्यास स्वीकार करना पलायन होता है। मैं अत पुर मे हू। रानी अम्बिका की दासी होते हुए भी अब मेरी श्रद्धा छोटी रानी की ओर जाने लगी है। विदुर, तुम्हे गृहस्थ रहकर भी धर्मराज के समान सात्विक होना है। यही सक्रमण करायेगा दासी वश की सीमा से उच्च प्रतिष्ठा के स्तर पर।

विदुर को लगा, मा मात्र अपने इच्छालोक को प्रस्तुत नही कर रही है बल्कि उसकी सीमाए निर्धारित कर आशीर्वाद दे रही है कि वत्स तुम्हे सागर जल-सा अगाध बनना है, और लहरो वाली बालुका-सा अवरक युक्त।

विदुर अल्पाहार समाप्त करके उठे तथा अध्ययन कक्ष की तरफ अग्रसर होने लगे। मा ने उत्तरीय छूटा हुआ देखा तो पुन पुकारा—विदुर!

हा, मा।

यह उत्तरीय। तिस पर कहता है, बडा हो गया है।

तुम होने कहा देती हो। मैं कुछ सोचता हू, तुम अपनी कल्पना का उद्यान मेरे सामने उपस्थित कर देती हो।

नही करूगी। जब तेरा विवाह हो जायगा, तब उसका अधिकार होगा अपने रग महल मे तुझे रमाने का। मा ने उत्साह से कहा। उसकी आखें वाछाओ से अनुरक्त थी।

विदुर मुस्कराये। माया किसे कहते हैं, मा?

पटो की शृ खला, जिनको स्पर्श करते, पार करते, मनुष्य को गतव्य तक पहुचना होता है।

तुमने कैसे प्राप्त की इतनी सारयुक्त व्याख्या।

जीवन से। सुनकर, देखकर, अनुभव कर। अपने अनुभव से, दूसरो के अनुभव से, समझा!

विदुर ने फिर झुककर मा के चरण स्पर्श किए। वही तो उनकी श्रद्धा का आलम्बन है जो उनके ठडे मन म गति भर देती है।

वह अध्ययन कक्ष की तरफ चल दिए। अत से सिक्त थे, ममत्व के छीटो से सिक्त।

तीन मा और चौथी राजमाता । वे, जो बीते कल तक स्वय युवतिया थी, अब परिपक्व मा थी—युवा पुत्रा की मा । अपने से हटकर केन्द्र पहले पुत्रो की तरफ खिसका, अब ममता तीसरी के आने की प्रतीक्षा करने लगी है ।

पितामह और राजमाता मे चर्चा हुई कि धतराप्ट और पाडु के लिए योग्य राजकुमारियो की खोज की जानी चाहिए। धतराप्ट्र का राज्याभिपेक पूरे प्रचार व भव्यता से मनाया गया था । दूर स राजाओ को आमत्रित किया गया था । इसका अथ था कि वह कुछ राज्य की मैत्री स्वीकार करें, तथा यथा सामथ्य उपहार देकर उसका वचम्व स्वीकार करें । ब्राह्मणा और विशिष्ट भद्र सभा ने व्यवस्था दी थी कि धृतराष्ट्र राजा हाग, परन्तु पाडु भीष्म पितामह के सरक्षण म राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था आयोजित करेंगे । विदुर धतराप्ट्र के सलाहकार होगे ।

व राज्य, जो अब तक भीष्म के शौय तथा कौरवा की सैन्य शक्ति से प्रभावित थे, पाडु की वीरता की गाथाए सुनकर आश्वस्त हो गये थे कि कुरु राज्य ही पुन सत्ता का केन्द्र बनेगा । पूरे कुरु राज्य के जन मन मे फागुन का उल्लास हिल्लोरित हो उठा था ।

अम्बालिका तथा अम्बिका बैठी हुई है सामन के कक्ष मे । राजसी पोशाक मे नारीत्व शोभा दे रहा है । अम्बिका तप्त होकर भी चिंतित-सी दीख रही है । अम्बालिका गम्भीरता के बावजूद तेजस्वी । आयु का चढाव अम्बिका के मुख पर रखाओ के माध्यम से अधिक भासित है । अम्बालिका के चेहरे पर दमक है—यशस्वी पुत्र की मा होने की तेजस्विता ।

अम्बालिका, हमारे पुत्रो के लिए राजकुमारियो की खोज हो रही है। अम्बिका ने कहा ।

यह क्यो नही कहती की खोज हो चुकी है । अम्बालिका ने टिप्पणी की । तुम्ह पता है, फिर रहस्य मे लपेटकर क्यो कह रही हो ?

सुना है गाधार नरेश की पुत्री, राजमाता तथा भीष्म पितामह की नजर मे धतराप्ट्र के लिए उपयुक्त ठहर रही है, और पाडु के लिए, कुन्तिभोज की पुत्री कुती । अम्बिका ने अपन को खोलना शुरू किया ।

अम्बालिका जानती है कि उसकी बडी बहन जब भी उसके पास आयेगी तब वह जरूर किसी उलझन से ग्रस्त होगी । उसकी उलझन का केन्द्र उसी की निराशा से बेहद लिपटा होगा । ढका ढका परिच्छन्न । अम्बालिका चुप रही ।

अम्बिका, जसे अन्दर से घुमड रही है, अपने हर कथन पर प्रतिक्रिया चाहती है या हुकारा । तुम्ह कैसा लग रहा है ? वह अम्बालिका के मौन से और

उद्विग्न हो जाती।

न अच्छा, न बुरा—उसने संक्षिप्त उत्तर दिया।

क्यों, क्या तुम मा नहीं हो? क्या सोचती नहीं अपने पुत्र को लेकर?

अम्बालिका मुस्कराई। तुम जो सब के हिस्से का सोच लेती हो, फिर शेष रहता कहा।

मैं परिहास सहन की स्थिति म नहीं हू, अम्बालिका।

रहती भी कब हो। चिर दुखी, शाश्वत सन्देह की माडी हो। बस ही हैं राजाधिराज धृतराष्ट। अम्बालिका ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया।

अम्बिका चौकी। बोली, तुमम तो उसने कोई उद्दडता नहीं की?

जब स्वभाव वैसा हो तो मर्यादा अमर्यादा का प्रश्न कैसा। राजा होने पर भी यही भय, यही ईर्ष्या, कि पाडु इतना वीर क्या है? जनश्रद्धा का पात्र क्यों है। विदुर इतना कुशाग्र क्यो है?

समझ गई। अवश्य तुम्हारे मस्तिष्क को उस दासी ने विषयुक्त किया है जो मुझसे आखें चुराकर तुम्हारी सहानुभूति पाने के लिए तुम्हारी चाटुकारिता करती है। अम्बिका के चेहरे पर रोष झलक आया।

यह भी कह दो कि विदुर और पाडु दोनो मिलकर तुम्हारे बेटे को हीन करते है।

यह भी आंशिक सत्य है। अम्बिका क्षोभ मे रह गई।

यह तुम्हारे सन्देही मन का सत्य है। तुम मेरे पास आई हो, मैं कड़वा कुछ नहीं कहना चाहती। परन्तु जानती हो कि मैं हमेशा स्पष्ट कहती हू।

धृतराष्ट्र के लिए गाधार देश तक क्या पहुचा जा रहा है? उस देश की कन्याओं का चरित्र कैसा है क्या किसी स छिपा है? अम्बिका ने अपने को प्रकट किया।

यह प्रश्न तो भीष्मपितामह व राजमाता से किया जाना चाहिए। तुमम साहस हो तो अपनी आपत्ति उन तक पहुचा दो।

राजमाता मुझसे और धृतराष्ट्र से खिन्न हैं। पितामह भी धृतराष्ट्र से भेद रखते है। अम्बिका तनाव मे हो गई थी। उसके मुख की त्वचा खिच गई थी। कनपटी और माथे की नसें उभर आई थी। चेहरा नागफनी के फल-सा चटक लाल हो गया था।

अतर का आवेश दुराग्रही तथा अधा बना देता है। तुम्हें सब अपने विरुद्ध दीखते हैं। उम्र चढने के बाद भी क्या सही तरीके मे सोचना नहीं आया? नहीं सोच सकती तो तटस्थता अपना लो। जम मैं हो चली हू। अम्बालिका तनिक खरे शब्दो मे बोली, स्वर आक्रामकता लिये हुए लगा।

अम्बिका दबक गई। विचलित-सी होकर खडी हो गई।

तुम्हारे पास आना निरर्थक होता जा रहा है। अब तुम बहन नही, बेटे की पक्षधर मा हो गई हो। उस स्वार्थी दासी ने तुम्हे अपने षडयन्त्र मे शामिल कर लिया है। वह विदुर को राजाओ का मान व पद दिलाना चाहती है।

अम्बालिका की सहनशीलता की सीमा छिन्न भिन्न हो गई। वह तेज स्वर म बोली—बस, अब रोक दो। अपने पुत्र की अयोग्यता और अपनी अस्थिरता का दोषी दूसरो को मत बनाओ। मैं दासी के सुझावो पर चलूगी, क्या इतनी अविवेकी हू। बेटे युवा हो गये। कुरुराज्य के सवधन व विस्तार का दायित्व अब उन पर है, और पितामह भीष्म पर। उस राजनीति मे मेरी भूमिका नही हो सकती—होनी भी नही चाहिए। मैंने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है। तुम चाहो, तो तुम भी स्वीकार कर सकती हो। अपना ध्यान धम की ओर लगाओ। राजमाता का मै आदर करती हू। मेरे मन मे किसी के प्रति कटुता नही है। धृतराष्ट्र को सस्कार तथा सदबुद्धि दो। कपट स्वय को पीछे ढकेलता जाता है यह तुम भी जानो। तुम से कह रही हू, हालाकि तुम बडी बहन हो। राजमाता के बाद तुम्ही उनका स्थान लोगी।

अम्बालिका निरतरता मे बोल गई। अम्बिका हारी सी, असन्तुष्ट-सी, अपराध भाव से दबी मुसी सी, कतव्यविमूढ-सी खडी रही। फिर हताहत-सी चली गई। जिसका अपने पुत्र पर बस न हो वह यू भी दयनीय तथा भविष्य से भीत होने की विवशता भोगती होती है।

(३८)

भीष्म ने पहले राजमाता सत्यवती से धृतराष्ट्र के विवाह की व्यवस्था के सम्बन्ध मे सविस्तार विचार किया। फिर उन्होने स्वागत, आतिथ्य व्यवस्था, आमन्त्रणो व उत्सव के ब्यौरे के साथ सम्बन्धित व्यक्तियो से बातचीत की तथा उन्हे उत्तरदायित्व सौपा। तब उन्होने धृतराष्ट्र, पाडु और विदुर को बुलवाया। निश्चित समय तीनो उपस्थित हुए। विवाह का वातावरण पुरजनो तक मे इस तरह विस्तृत हो चुका था जैसे वसन्त के आगमन का पहला चरण प्रारम्भ हो गया हो।

पितामह अतरग कक्ष म अपने विशिष्ट सिहासन पर बैठे थे। सामने के छोटे सिहासनो पर धृतराष्ट्र, पाडु तथा विदुर स्थान लिये हुए थे। तीनो जानते थे कि पितामह ने उन्हें किस विषय के लिए बुलाया है।

धृतराष्ट्र का चौडा, उभरा सीना वस्त्रा से आच्छन्न होकर भी चट्टान-सा उभरा हुआ था। चेहरे पर किसी हरियाली शाख की छाल-सी कोमलता थी। आखें बन्द, गाठ-सी स्पष्ट तथा गहरी थी। अधिराज होने का गव उसके सतर

बैठने से झलक रहा था।

पाडु, गौर वर्ण, मुते चेहरे व औसत शरीर वाले आकर्षक युवक म विकसित हुआ देखन मे लगता था, जैसे कितना कोमल, रागमय है जिससे अद्वितीय आभा फूटती हो। उसकी आखो मे तट से जुडा सागर तरगित था।

विदुर, धतराष्ट्र की तुलना मे गुटके के आकार के लगत थे। उठान मे पाडु की अपेक्षा छोटे। पर उनका व्यक्तित्व किसी श्लोक के अनुबधित शब्दो की स्वय-स्फूर्ति लय सा था। जिससे शात रस का वातावरण बौछारित होता हो।

पितामह वट-वृक्ष-स सघन तथा दृढ थे, जिनके परिपक्व चेहरे पर ब्रह्माड का रहस्य भासित था। वह बोलता हुआ सा था, लेकिन अगाध शून्य के माध्यम से पारित हुआ। भीष्म ने मतव्य की भूमिका रेखित करना शुरू किया।

प्रिय धतराष्ट्र, पाडु और विदुर। मैंने तुम्ह अगर एकान्त मे तथा विशिष्ट तौर पर बुलाया है, तो मेरा मतव्य भी विशेष है। पल्लवन की आशा स सींचे गये पौधे, जब फूलो से सुगध विस्तृत करने के योग्य दीखने लगते हैं तब सुख मिलता है अत करण को। धृतराष्ट्र राजा हो गए हैं और उनकी सहायता के लिए तुम दाना हो। हम याय ह, क्षत्रिय ह, पर कुरुराज्य का आधार धम व सुनीति है। याय व आर्थिक सम्पन्नता जनाधिकार है जिस उपलब्ध करान के लिए राजा को अपनी सम्पूण शक्ति का प्रयोग करना होता है। तुमने शास्त्र विद्या सीखी, दशन, धम, सु आचरण सीखा और अल्प अतराल मे गृहस्थ धम मे प्रवेश करोग। गृहस्थ पालन धम है, भोग नही है। भोग की अति, देह को क्षीण करती है तथा आत्मा को निबल। आत्मा के निबल होने से सकल्पशक्ति तथा आत्मविश्वास कम्पित होता रहता है। लक्ष्य भेदन हो नही पाता।

तीना भीष्म के कथन को एकाग्रतापूवक सुन रहे थे। विदुर सम्मोहित-स, पाडु श्रद्धापूण। धतराष्ट्र पलको को झपका रहे थे, जस अयमनस्क हो।

भीष्म ने बोलना जारी रखा। सूचना प्राप्त हुई है कि गाधार से, गाधार नरेश के कुमार शकुनि अपनी बहन गाधारी को लेकर चल दिए हैं। दूसरा निमत्रण कुन्तिभोज के यहा से प्राप्त हुआ है। उनकी कया कुती का स्वयवर होने जा रहा है। पाडु को भोजपुर के उस स्वयवर मे सम्मिलित होना होगा। हमे विश्वास है मथुरा-नरेश शूरसेन की पुत्री कुतिभोज की पालित सौम्य कया, कुन्ती अवश्य पाडु को वरमाला पहनायगी।

यदि उसने वरमाला नही डाली, तब कुरुवश का अनादर होगा। एसी स्थिति मे क्या पाडु को आज्ञा है कि वह उपस्थित राजाओ को चुनौती देत हुए कुन्ती का हरण कर लाए? धृतराष्ट्र ने पितामह से किस अभिप्राय स प्रश्न किया यह स्पष्ट नही था। लगा कि पितामह के द्वारा अतिभोग की वजना की बात सुनकर वह सोच रह थे, यह दोषारोपण सीधा उन पर हो रहा है।

धतराष्ट्र का हाथ पकडा। पितामह के सामन ले आए। दोनों ने झुककर उनके चरण स्पश किए। विदुर उनके बाद उठे तथा उन्होंने भी चरण स्पश किया।

भीष्म के दोना हाथ आशीर्वाद के लिए फले रहे।

(३६)

दशन, दृष्टि है। दष्टि का अथ देखना भर नही है, वरन अनुभवो क सदभ म समझना है। और समझने की क्रिया मे बुद्धि का योगदान होता है। यह विशेषता बुद्धि की विकासक्रमता म निहित रही है। जड और चेतन, निर्जीव और सजीव का एक पक्ष स्वाभाविक रहा है, 'ऋत की क्रियाशीलता मे। काल के विस्तृत सीमान्ता मे तदबधित एक क्रम, उदभव, लय व प्रलय के उतार चढाव का स्वीकार करता हुआ परिशुद्धि को पाता रहा है। जसे यही शाश्वत यात्रा का गन्तव्य हो। उदभव भी किसी मे से घटित होता है, वह लय मे बढता है, प्रलय मे विशृ खलित हो जाता है। पर प्रलय के शेष से ही तो पुन उदभव होता है। प्रज्ञा सम्पन्ना न वाह्य सष्टि को, अनुभव के परिप्रेक्ष्य मे, अत चक्षुओ से समझने का प्रयास किया। वही दृष्टि कहलाई। दशन कहलाया।

पर दशन और दष्टि तो हर चेतना सम्पन्न प्राणी की थाती होती है, क्योकि हर एक के पास सस्कारो का, अनुभवा का एक अद्वितीय कोप सचित होता है। उसी के कारण वह अद्भुत होता है। हर पात्र अपनी सजनात्मकता को निहित किए अपनी पीठ से सम्पन्न भिन्न होता है। अदभुत है हर पात्र। और वह परिस्थितिया से गुजरता हुआ तीथयात्री होता है, जो अपने अपने तीथ की खाज म आरोहण करता है। माग के सकटो को झेलता है। कभी उनसे परास्त होता, कभी उन पर विजय पाता है।

गाधार नरेश ने किन्ही राजनीतिक लाभो को ध्यान म रखकर, अधे धतराष्ट्र को जामाता स्वीकार किया तो क्या गाधारी वलि की निरीह पशु थी। नही। गाधारी राजकुमारी थी—यौवन सम्पन्न सौदयवती कामनाओ व आकाक्षाओ से भरपूर, रागो, राग आवेशो स किसी छन्द-बध की तरह अनरणित, झकृत, जिस पर यकायक पिता के निणय से हिमपात हो गया। उसे लगा कि यह हिम पात उसे दबाकर, उसकी समाप्ति कर देगा। पर वह उसकी शीत समाधि सिद्ध हुई। प्रखर उहा-पाह और असहनीय अतद्वन्द्व से गुजरकर, उसकी प्राण शक्ति ने आवेशो को नियन्त्रित किया। तहस-नहस करने पर उतारू उसकी भूत शक्तियो, और अमत शक्तिया मे घोर सग्राम हुआ। वह पुनर्व्यवस्थित होकर विजयी हुई। नही कहा जा सकता कि उसने वास्तव मे वस्त्र की पटटी, अपने सीपी-न नेत्रा पर बाधी या उस कामनाओ के कोप को परकोटे म बदी बना लिया जो उसे असतुष्टि का आसव पिला, विचलित कर सकता। गाधारी न

जब हस्तिनापुर के महल मे धृतराष्ट्र का पत्नीत्व उत्सवा के बीच स्वीकार किया, तब वह रूपातरित गाधारी थी, जिसने अपने आचरण तथा व्यवहार स समस्त परिवार को मोह लिया—गाधारी, महाराजा धतराष्ट्र की अर्धांगिनी।

पर कुन्ती के साथ दबाव नही था। उसने स्वयवर मे कुरुवश के यशस्वी राजकुमार पाडु को चुना था। वहा उसके हाथ मे वरमाला थी। तय उसे करना था कि कौशल, काशी, मगध, मद्र, चेदि आदि अनक छोटे-बडे राजाओ, गणाधिपतियो मे पे किसे चुने। आशार्थी वे थे। विरदावली और परिचय के अतिशयोक्ति पूण बखानो मे से उसे तटस्थ होकर यह जानना था कि वह किसको वरण करे। मन-बुद्धि को, उस सकोच प्रेरक वातावरण मे, सजग रहना था। ऐसे निर्णायक अवसर म क्या मात्र सामने वाले का सौदय ही प्राथमिक गुण होता है जो उस किसी मे बेहतर, या श्रेष्ठ बताता है? और क्या स्वयवर मडप म खडी क्वारी कन्या को यह भी पता होता है, कि उपस्थित राजाओ म किसके कितनी रानिया पहले से है! यह सूचना तो उस पहले ही अपने पास रखनी होती थी। तभी तो कुन्ती कुरुवश के राजकुमार को पहल से ही मन म बठाए थी। यही हुआ। श्रवण से विरदावली सुनती रही। लज्जालु आखें, आरक्त मुख। वह सक्षिप्त नयनपात करत हुए आगे बढती रही। पाडु के सिंहासन के सामने जाकर रुक गई। विरुदावली समाप्त हुई तो उसने आगे कदम नही बढाया। पाडु के लिए हाथ उठे, और नरशो के देखते देखत वरमाला पाडु के गले मे शोभित हो गई।

उपस्थित राजेश्वरा ने परास्त होकर भी खिसियानी करतल ध्वनि की। वाद्यो ने बजकर हप तथा उत्साही वातावरण सर्जित किया। कुन्ती इस तरह विवाहित होकर हस्तिनापुर आई। हस्तिनापुर ने स्वागत मे वैभव सम्पन्न समारोह किया। पुरवासी धन्य धन्य हुए। काल की अशुभ छाया हटी कुरवश पर से। खुशियो के अथाह सागर मे तैरते हुए सबको उस सूय देवता पर विश्वास होने लगा कि वह कुरवश के भविष्य को स्वर्णिम करेगा। अब वरुण भी कृपा मे मुक्त हस्त रहेगा। यज्ञ की अग्नि प्रसन्न रहगी। सुघटनाए ही तो आशाओ को हराभरा करती है और भविष्य का आवरण, कल्पना के समक्ष खालने लगती है, विपरीत मे मन बुझा-बुझा, सिकुड जाता है।

कुन्ती को आश्चय हुआ कि महारानी गाधारी ने उसे विशेप दूती द्वारा अपने पास बुलाया है। उन्होने यह भी कहलवाया कि वह उससे गम्भीर बात करनी चाहती है—एसी बात जो आज उन दोनो के लिए है। यह भी कहलवाया कि उसके आने का समय ऐसा हो, जब पाडु भी अत पुर मे नही हा। यानी उनको भी उसके आने का पता न हो।

वह कितनी ही बार उसके निमत्रण पर उनक पास गइ है। इस तरह का

गुप्त तथा रहस्यात्मक निमन्त्रण उसे कभी नही मिला। उसने दूती को दूसरे दिवस मध्याह्न को आने को कहा। परन्तु वह दिन भर, तथा रात म, अनुमान लगाती रही कि उसे बुलाने का कारण क्या हो सकता है ? गाधारी पर वह श्रद्धा रखती थी और अवसर पाती कि दाम्पत्य सम्बन्ध को निबाहने म वह जो सुझाव देती थी, उसके लिए सहायक सिद्ध होता था। आश्चय की बात थी कि उसकी अपेक्षा कला की सुदर होने हुए भी यह बडी अजीब तरह से स्वनियोजित थी। राज महल म यह भी कहा जा रहा था कि उन्होंने पति को बहुत सीमा तक अधिकार मे कर लिया है। कि धृतराष्ट्र थोडे ही समय मे व्यसन के अतिरेक को तिलाजलि दे चुके हैं, और उनकी निरथक उद्दडता व असगत आचरण म कमी आई है।

कुती सोचती रही कि ऐसी क्या बात हो सकती है जिसे उसे पति से भी छिपाना पडे ? वह तो कहनी अनकहनी, निष्कपटता से पति को बता देती थी, कि वह किसी भी अपराध बोध स नाहक मे ग्रस्त न हो।

दिये हुए समय पर वह जेठानी के पास पहुची। गाधारी न यथोचित स्वागत किया। फिर एकात मे हो गई।

केवल वह थी, और कुती।

अवश्य असमजस म होगी कि तुम्ह इतनी शर्तों क साथ क्यो बुलाया ?

कुती ने स्वीकृति म 'जी' कहा। वह रानी गाधारी के मुख को देख रही थी, जिनकी आखो पर पट्टी बधी थी।

तुमने सुना, कि तुम्हारे सुख को कीटयुक्त करन की व्यवस्था पितामह भीष्म करन जा रह ह।

आपका किस तथ्य की ओर सकेत है ? यह तो पता है कि पितामह उत्तर पश्चिम की ओर विजय अभियान के लिए जा रह हैं ?

सिफ विजय अभियान के लिए नही। महाराज धृतराष्ट्र बता रहे थे कि वाह्लीको मे श्रेष्ठ गणाधिपति मद्रेश्वर को पराजित करना, अभियान का मुख्य लक्ष्य नही है, वरन वह उनकी बहिन माद्री को लाने जा रहे हैं। वह तुम्हारे पति की दूसरी पत्नी बनेगी।

मुझे ऐसी सूचना नही है। कुती को आघात-सा लगा।

मैं जानती थी, तुम्हे पता नही होगा। भीष्म पितामह की महत्त्वाकाक्षा का अत नही है। कहने को ऋषितुल्य दर्शाते हैं अपने को, परन्तु घट मे सौदय पिपासु, अतृप्त ब्रह्मचारी ह। मेरे पिता को इसी तरह आतक मे लेकर मुझे लाया गया था यहा।

गाधारी को इस तरह आक्रामक कुती ने कभी नही देखा था।

इसमे राजमाता की भी सहमति है। वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुकी है, परन्तु

मन को कुरग बना रखा है।

मुझे दुख है। परन्तु हमारे पास उपाय भी क्या है। कुंती गाधारी के विचारो मे तिक्तता पा रही थी।

उपाय हो सकता है, यदि तुम अपना विरोध अपने पति के समक्ष प्रकट करो। यदि मेरे साथ ऐसा होता तो मैं मूक गाय की तरह नही सहती। गाय इनके यहा श्रद्धा की पात्र होती है, हमारे यहा अश्व पर विश्वास होता है। गाधारी ने गवयुक्त स्वर मे कहा।

हमारे लिए पति की इच्छा सर्वोपरि है। बडा के निणय का आदर करना कत्तव्य है। नारी का सयम उसकी आत्मा को शुद्ध कर, उस दाता बनाता है। यदि मेरे पति को इसमे सुख मिलता है, ता मैं उनकी दूसरी पत्नी को स्वीकार करूगी। आप इतना दुख न मनायें। कुती ने धैय से प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की।

गाधारी को कुन्ती का समपण सुहाया नही। उसे ऐसी अपेक्षा नही थी। वह मौन हो गई। वैसी ही रही, तब तक, जब तक कुती नही बोली।

आपकी सहानुभूति उचित है। आपने विरोध करने के लिए कहा, वह भी सगत है, फिर आप क्या मौन हो गईं?

तुम्हारी आत्मशुद्धि और दाता होने की बात को समझने की कोशिश कर रही थी। और उस सयम को भी, जो कत्तव्य की ओट के पीछे, अन्याय को सहन के लिए तैयार है। पुरुष के भोग की प्यास अखूट होती है कुती, उसको उन्मुक्त छोडना, अपने को नष्ट करना है। मैने आख पर पटटी बाधी, न भी बाधती, तो भी कुछ नही बिगडता। मुझे अपने मन पर काबू है। मैंने सारी उत्तेजक, मादक वस्तुआ के सेवन का त्याग किया, कि मेरी कामेच्छा विपथगामी न हो। इसका अथ यह नही है कि मैं अन्याय का शिकार बनाई जाऊ। मैंने महाराज से स्पष्ट कह दिया, मरी परिभाषा मे सयम एक पक्षीय नही है। अतप्त रहकर अपने को दमित करू, यह नही हो सकता। मैंने तुम्हे भी अपनी तरह माना था। गाधारी उत्तेजनाहीन, धीर स्वर मे बोल रही थी।

कुती उलझ-सी गई। उसे गाधारी के शब्द शब्द उचित लग रहे थे। लेकिन विरोध की बात उसे स्वीकाय नही लग रही थी। तो क्या वास्तव मे उसके सुख के दिन समाप्त होने को है? क्या जिस एकाग्रता और अगाध प्रेम को उसन अपन पति से पाया, उसे खोना होगा? आने वाली के अधिकार के दावे यदि अति मे हो गय तब? प्रणय के उफाना से भरे तेजस्वी पाडु क्या अपने रुख को मोडकर, दूसरी तरफ बह निकलेंगे?

कुती का मन भारी हो गया। उसकी देह निशक्त होने लगी।

कुछ कहो, कुती! गाधारी ने अनुमान से जाना कि कुती गहरे सोच मे हो गई है।

उसकी देह गध से आकृष्ट होकर लोलुप मधुप-सा हो गये।

कामपट्, शुचिका, रभा, घृताची तथा उवशी-सी वासनामत्त माद्री, पाडु को अपने मे डुबाती गई। तीस दिवस तक पाडु अति रति मे विस्मृत, देह-देह के चरम दान प्रतिदान, प्रेरक क्रिया प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया से उत्प्रेरित प्रति प्रतिक्रिया मे माद्री के देह रस चषक से आकठ उमगित रहे और माद्री इन्द्र की अप्सरा सी सोम वितरक बनी रही। कौन किसको अघा रहा था? कौन प्यासा होकर अतृप्त अजुलि हटा नही रहा था? यह चिह्नित नही हो सकता था। शायद परस्पर का अखूट सम्प्रदान था।

यह पावस की झिरमिर थी या शरद पूर्णिमा की चद्रिका की सुखद फुहार?

कुन्ती सवेदनशील द्रष्टा की तरह इस अप्रत्याशित घटित होत हुए यथाथ को देखती रही। ऐसा उसके साथ तो नही हुआ था? उसके पति क्या लोक-मर्यादा भी भूल गये? समक्ष कोई स्पष्ट नही कहे, पर अत पुर मे यह चर्चा है कि नयी रानी एेन्द्रजालिक हैं, जिन्होंने छोटे राजा को वशीकरण से कब्जे म कर लिया। परिचारिकाए वाक्चातुय का सहारा लेकर कुती से सहानुभूति दिखाती ं।

* वह अतमुखी रही है इस अवधि म। अपनी आत्मा मे पैठकर और अधिक ^ हो गई। गाधारी ने कहा था, यह भीष्म पितामह के कारण है। उसने जब ৎ।িप৸। था कि यह अधिकार हनन है, तब भी गाधारी ने प्रश्न किया था ? उसन जब पति को निर्दोष रखना चाहा था, तब गाधारी हसी

कहन को है क्या ? आसन्न परिस्थिति के लिए तयार होना होगा। मर्यादाओं का दबाव कितना छीनता है, कितना छोड़ता है, यह तो आगे पता लगेगा। लेकिन आप सच कहती हैं। यह अधिकार-हनन है।

किस के द्वारा ? गाधारी ने प्रश्न किया।

पति के द्वारा नही किया जा रहा है, यह भ्रम भी क्या बुरा है ! कुन्ती ने उत्तर दिया।

गाधारी जोर स हसी। हसती गई।

न जाने किस पर ?

(४०)

चतुरगनी सेना के साथ भीष्म की पश्चिम तथा उत्तर पश्चिम की यात्रा बहुप्रयोजनीय थी। इस ओर के राज्यो को कुरुराज्य के अधीन करना था। पूण रूप स प्रशिक्षित सना का दबदबा इस तरफ के राजाओ पर बैठाना था, कि वह किसी भी हालत मे आक्रमण करने का एकल, या सामूहिक रूप म साहस न करें। आर्यों की यज्ञ प्रधान सस्कृति से भिन्न, पश्चिम उत्तर के राज्यो मे विलास तथा स्वच्छदता का बोलवाला था। यह राज्य सम्पन्न व अमीर थे। व्यापार मे, धुर पश्चिम से जुडे थे। अत इनसे मैत्री भी लाभप्रद थी। जब गाधार नरेश से रिश्ता बन चुका था, तब उत्तर-पश्चिम के गणराज्य को काबू म करना, कुरु राज्य के लिए हितकर था। विजय का प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत किये बगैर, सभव नही था कि पाडु की भोगतिप्तता को जोडा जा सके।

तब क्या यह हवन मे घत की मात्रा को बढाकर, अग्नि को शात करने का उपाय था ?

माद्री अद्वितीय सुदर थी। भीष्म जानते थे कि पाडु कुन्ती म ही मग्न है, फिर माद्री को लाने का उपाय खतरे को दुगुना जैसा करना नही था ? तब क्या प्रयोजन था ?

मद्रपति ने भीष्म का स्वागत किया था और जब भीष्म न माद्री को पाडु के लिए मागा था, तब मद्रपति ने अपने यहा का रिवाज सामने रख दिया था

शुल्क लेकर हम अपने कुल की कन्या देते है। मैं कुल रीति के विरुद्ध काय नही कर सकता।

भीष्म ने स्वण, रत्न, वस्त्र, गज, अश्व आदि मद्रपति शल्य को भेंट किये, तथा उनकी बहन माद्री को ले आए।

पवतीय अचल की यह स्वण मृगी धनादि भेंटकर क्या लाये भीष्म ?

गाधारी की चेतावनी कुन्ती क सदभ म सत्य निकली। पाडु, माद्री के सौंदय,

उसकी देह गंध से आकृष्ट होकर लोलुप मधुप-सा हो गये।

कामपटु, शुचिका, रंभा, घृताची तथा उर्वशी-सी वासनामत्त माद्री, पांडु को अपने में डुबाती गई। तीस दिवस तक पांडु अति रति में विस्मृत, देह-देह के चरम दान प्रतिदान, प्रेरक क्रिया प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया से उत्प्रेरित प्रति प्रतिक्रिया में माद्री के देह रस चषक से आकंठ उमगित रहे और माद्री इंद्र की अप्सरा सी सोम वितरक बनी रही। कौन किसको अघा रहा था? कौन प्यासा होकर अतृप्त अंजुलि हटा नहीं रहा था? यह चिह्नित नहीं हो सकता था। शायद परस्पर का अखूट सम्प्रदान था।

यह पावस की झिरमिर थी या शरद् पूर्णिमा की चंद्रिका की सुखद फुहार?

कुन्ती संवेदनशील द्रष्टा की तरह इस अप्रत्याशित घटित होते हुए यथार्थ को देखती रही। ऐसा उसके साथ तो नहीं हुआ था? उसके पति क्या लोक-मर्यादा भी भूल गये? समक्ष कोई स्पष्ट नहीं कहे, पर अंतःपुर में यह चर्चा है कि नयी रानी ऐंद्रजालिक है जिन्होंने छोटे राजा को वशीकरण से कब्जे में कर लिया। परिचारिकाएं वाक्चातुर्य का सहारा लेकर कुंती से सहानुभूति दिखाती हैं।

वह अंतर्मुखी रही है इस अवधि में। अपनी आत्मा में पैठकर और अधिक निग्रही हो गई। गांधारी ने कहा था, यह भीष्म पितामह के कारण है। उसने जब स्वीकार किया था कि यह अधिकार-हनन है, तब भी गांधारी ने प्रश्न किया था—किसके द्वारा? उसने जब पति को निर्दोष रखना चाहा था, तब गांधारी हंसी थी। हंसती गई थी।

अब भी क्या उसके पति पांडु निर्दोष हैं? उसको बिसार देना क्या संगत रहा? कुंती अपने से इसका उत्तर नहीं पाना चाहती। पा सकती है, पर वह उत्तर उसकी चोट खाती रही भावनाओं से रंजित होगा। कर्त्ता तो उसके और माद्री के बीच पांडु हैं। वही उत्तर देंगे, तब बात बनेगी। पर क्या उत्तर देंगे? वह बरी कैसे हैं?

और इसी बीच दूसरी स्थिति सामने आई। सुना कि पितामह ने किसी विश्वस्त संदेशवाहक से उसके पति को संदेश भिजवाया—क्षत्रिय का धर्म, मात्र भोग और स्व का विस्मरण नहीं है। राजधर्म के कर्तव्यों का पालन उसकी चरित संहिता का मूल बिंदु है।

पितामह का संदेश पाते ही पांडु जैसे निद्रा से जाग गए। श्रद्धास्पद भीष्म पितामह को विवश होकर संदेश भेजना पड़ा? पांडु को अंदर-ही-अंदर अपने पर शर्म आई। वह उसी दिन पितामह के सामने उपस्थित हुए लज्जित-से, दोषी से।

चरण-स्पर्श कर दृष्टि नीचे किये हुए खड़े रहे। अभिवादन भी शब्दों से नहीं,

भाव प्रकाशन से कर पाए।

पाडु, अपने को जीतो ! वरना शिक्षा-दीक्षा निरथक हो जायगी।

पाडु सुनते रहे। उत्तर दे पाते तब, जब प्रश्न किया गया होता भीष्म द्वारा। तब भी क्या उत्तर उपजता ? प्यास और उसकी तप्ति म लगा व्यक्ति क्या आत्म विश्लेपण की स्थिति मे होता है ? वह पयवेक्षक कहा रह पाता है। होता है मोहाविष्ट तष्णा से आवत, तथा तप्ति व छोटे छोटे अशो से मूछित।

मैंने सेनाध्यक्ष को तैयारी की आज्ञा दे दी है। हमारी सेनाए विजय यात्रा के लिए व्यग्र है। उनकी क्षमता को मैं उत्तर-पश्चिम की जययात्रा मे परख चुका हू। अब तुम्हे पूव तथा दक्षिण पूव की ओर जाना चाहिए। क्या उचित अवसर लग रहा है ? तुम्हे अपने शौय का प्रमाण भी देना है।

पाडु न अब दृष्टि उठाई। पितामह की तेजस्वी आखो मे विश्वास और स्नेह झलक रहा था।

आशा के अनुकूल सफल होने का आशीर्वाद दीजिये, गुरुदेव ! वह पुन चरणो मे झुक गये।

अत पुर, पुरोहित सभा, भद्र सभा सेना के अगो, तथा नगर, पुर, राज, सहायक राजाओ तक, समाचार वायुगति से फैल गया कि महाराज पाडु जययात्रा के लिए जा रहे हैं। कुरु राज्य को अब चक्रवर्ती होना है।

(४१)

अश्व, गज रथ, पदाति सेना प्रात सचरण करेगी। अत पुर मे, महल के परकोटे मे तथा नगर मे, अलग-अलग तरह से मागलिक क्रियाए एव यज्ञ की व्यवस्था की गई है, जिन्हे सूर्योदय के साथ शुरू होना है। महाराजा पाडु की जय यात्रा को धमजय यात्रा, अथ विजय यात्रा, तथा शत्रु गव मदन यात्रा, घोषित किया गया है। माग निश्चित हो चुका है। विशिष्ट, गुप्तचर, मत्रणा देने वाले, मत्री तथा याज्ञिक व विशिष्ट पुरोहित साथ होगे। अस्त्र शस्त्र, खाद्य-सामग्री के साथ रसोइये एव रथ तथा अस्त्र शस्त्र सुधारने वाले यात्रिको का वग अपनी तयारी म व्यस्त है। प्रचार व्यापक रूप से हुआ है अत एसी सम्भावना है कि अधिकतर राज्य स्वय स्वागत का निमत्रण देकर सघष बचाएगे।

पितामह मध्यरात्रि मे जाग गये है—नीद नही आ रही है। किस तरह के विचार उनके मस्तिष्क म आ रहे हैं ? पाडु को जययात्रा के लिए कहकर क्या उचित किया उन्होने ? राजमाता ने प्रस्ताव को स्वीकृत किया था, परन्तु शका लरज रही थी उनके मन मे। वह सयम न रख पाकर कह उठी थी—अगर पाडु को कुछ हो गया तब ? धतराष्ट्र का होना-न-होना तो एक-सा है।

भीष्म न उनको दुविधा मुक्त होने के लिए कहा था, परन्तु वही दुविधा अब

उनके मन म छोटे पखा वाली चिडिया-सी, फुर कर के उडती, फिर बैठ जाती किसी कोने मे। वह आश्वस्त होते कि अशुभ कुछ नही होता। कि चिडिया फिर से फुर करके उडने लगती।

पर वह भी क्या करें? राज्य के विस्तार मात्र का प्रश्न नही है यह यदि दीघ शाति अपना ली गई तो दूसरे किसी राजा अधिपति होने की महत्त्वाकाक्षा जाग्रत हो सकती है। तब भी तो युद्ध करना पडेगा—अपने पर किये आक्रमण को प्रतिक्रिया मे, या किसी मित्र राजा की सहायता म।

इस कोण से कदम सही लगता है। पर दूसरा पक्ष भी है। युद्ध करते रहना क्या अनिवाय है? युद्ध तो दोना पक्षो की जब हानि, धन हानि, नैतिक हानि करता है। यह दशन ही अपने मे घातक है—युद्ध का दशन।

भीष्म से जैसे उन्ही के विवेक का एक अश प्रश्न करता है—पाडु की इस यात्रा को धम विजय की यात्रा क्या घोषित किया? क्या यह राजनीतिक महत्त्वकाक्षा को सुनहरा पत्र चढाना जैसे काय नही है। युद्ध से शाति स्थापना आज तक हुई है क्या? विस्तार मे विखडन निहित होता है यह तो मान्य सत्य है।

है पर शक्ति का आतक बहुत से लघु युद्धा की सम्भावना को अकुशावस्था मे ही नष्ट कर देता है। हमारे पास धम है। हम उसीके आधार पर राज्य करते है। चाहत है कि दूसरे राजा भी अनुष्ठान के समान, प्रशासन काय सचालित करें ताकि उनकी प्रजा भी सुख, समद्धि, स्वतत्रता तथा आत्म विकास की प्राप्ति करें।

भीष्म के पास तर्काश्रित यह पक्ष भी मौजूद था।

चिडिया फुर से उडकर उसी बिन्दु पर आ लेती—युद्ध से युद्ध है। अगर पाडु को कुछ हो गया तब कुरुवश की समस्या फिर खडी हो जायेगी। धृतराष्ट्र अब विदुर के प्रभाव के कारण शील तथा धैय वाला हो गया है, पर उसकी दष्टि कब विपरीत कर ले, कहा नही जा सकता।

भीष्म ने पाया कि वह विचार की भवर मे अपने को नाहक डालत जा रहे है। य तो सोचने का अन्त ही नही होगा।

तब यही सही है कि जो करना है, उसे किया जाए। किये जाने का उत्तर दायित्व कर्त्ता ले, परिणय तो कम के अनुसार आना ही है।

भीष्म ने अपने ध्यान को बदलने के लिए भोज पत्र की गडडी उठा ली, उस पर मन्त्र लिखन लगे। फिर उसी मत्र मे मग्न हो गये।

मग्न पाडु भी रहे माद्री के साथ रात भर। कदाचित इतने विस्मृत कि जैस माद्री की देह के सब रस को वह अपने मे सोख लेना चाहते हा। और माद्री ने

इस रात्रि को जस मदन का वरदान मान कर उत्सव बना लिया अपने लिए। सुख का कोष इतना संचित हो जाय कि वियोग की हर रात्रि मिलन का अमृत बरसाती लगे। वरना सेज भरी भरी-सी कम लगेगी? अनुपस्थित जो होगा, उसकी उपस्थिति का भ्रम, सत्य बनकर उसे अनुगुंजित कम करेगा।

भोर होने के साथ पाण्डु कुन्ती के कक्ष में आए। वह स्नान कर चुकी थी तथा आराधना के लिए कुशासन पर बैठने जा रही थी।

उसने पति को उपस्थित पाया तो सहज चरण स्पर्श किए।

पाण्डु ने उसे बाहों में उठा लिया। पर कुन्ती अंतराल बनाये रही।

क्या हमने पूजन में व्यवधान उपस्थित किया? उन्होंने पूछा। फिर अपने आप ही बोलने लगे—आज हम जय यात्रा के लिए जा रहे हैं, सोचा, तुम्हारी शुभ कामना ले लें।

जब भी आन तभी देव से प्रार्थना में यही मांगती कि सफल होकर आएं। बैठिये। उसने सिंहासन की तरफ संकेत किया।

पाण्डु के मन में तीव्र भाव उठ रहे थे कि वह एक बार कुन्ती को वक्ष से लगा लें, लेकिन सामने खड़ी कुन्ती, इतनी निर्भाव और प्रशांत थी कि साहस नहीं हो पाया। तुमने तो साध्वी रूप धारण कर लिया। वह उसे देखते हुए बोले।

नहीं, ऐसा तो नहीं है। पिता के यहां एकांत में रहना होता था। एकाकी होकर वही स्वभाव पुनः जाग्रत हो गया। सुख तो पंखुरी का रंग है उसे धूमिल होना ही पड़ता है। बहुत सहज उत्तर था किसी तरह के कसैलेपन से मुक्त।

कुन्ती के धीरे शब्द सुनकर पाण्डु हिल उठे। उन्हें लगा कुन्ती को संयम के इस घाट पहुंचाने के दोषी वही हैं। उसकी चपलता, जीवंतता पर हिमपात उन्हीं के द्वारा हुआ। कुन्ती जब पिता के घर से हस्तिनापुर आई थी, उस समय भी इसी तरह शान्त थी। पूछने पर उसने मन खोल दिया था—महाप्राज्ञ, जिस लड़की को पिता शूरसेन के वचन निभाने के लिए मां को मथुरा का, छोड़कर दूसरे पिता का स्वीकार करना पड़ा हो और यहां एकांत में होकर रहना पड़ा हो, उसमें एकाकीपन पत्ता-फूल की तरह पनप गया तो आश्चर्य क्या हो? पाण्डु ने कहा था—पर आयु में अधिक गम्भीर होना स्वयं के साथ अन्याय करना है। बसंत में शीत से ठिठुरे हुए रहना को सहज रखना ऋतु की उपेक्षा है।

आपके संसर्ग में आकर ठिठुरन दूर हो जाएगी स्वामी। वह उठ चलेंगे आपके साथ महाराज, यदि आपने उत्तर पक्ष का राग रंजित भावों का साथ दे दिया।

महाराज पाण्डु के मस्तिष्क में यह आकस्मिक अवधि कौंध गई जिसमें उनके घबराए हुए भाव स्पष्ट न कुन्ती का मन दर्पण हरीतिमा की ताजगी और सुहाग

दिया था। कुती मुकलित सुमनो की गध भरी क्यारी हो उठी थी।

पति के उत्साह को उदासी मे बदलते देखकर कुती बोली—महाराज, आपको आज विजय यात्रा के लिए जाना है। मन को उत्साहित रखिये।

क्या मैं अपने को जानता हू, कुती ? पाडु ने पूछा।

हा, जानते है। अच्छी तरह जानते ह, जब मोह से आवत न हा। आत्मा के निकट हा तब। कुन्ती ने आश्वस्त भाव से कहा।

मुझे क्या हो गया ? मैं माद्री मे इतना विलीन हो गया कि

पर पितामह के संदेश से तत्काल अपनी जगह पर आ भी तो गये।

तुमने अपनी उपेक्षा के प्रति सजग क्यो नही किया ? पाडु कुती को इस तरह देख रहे थे जैसे कोई भटका हुआ व्यक्ति मदिर मे आ गया हो और मूर्ति को सम्मोहित भाव से देख रहा हो।

मुझे होड नही करनी थी। माद्री का भी उसके पति का वह अश मिलना था जिसे मैं प्राप्त कर चुकी थी। वह दुलभ समपण, जिसमे आत्मा का सहस्र दल कमल खिल कर चादनी मे स्नात होता है, धवल कलानिधि की किरनो से ओत-प्रोत हो।

देह और आत्मा मे कितना अत्तर होता है, कुती ! तुम मेरी आत्मा हो। पाडु के चेहरे पर तेज-सा प्रकट हुआ। पूव उदासी गायब हो गई। वह इच्छा भी कही खो गई कि वह कुन्ती को अपने वक्ष से लगा लें।

कुती मुस्करा रही थी। उसकी आखा मे महाराज पाडु को अदभुत ज्योति-सी दिखी। यह उनका अपना मनोभाव था। पर कुती कह रही थी—देह और आत्मा पथक नही है महाराज, सयुक्त हैं। सचरण कभी देह से आत्मा तक होता है, कभी आत्मा से देह की ओर।

पता नही पाडु, उसे सुन रह थे, या उसकी आखा की ज्योति प्रभा से अपने का पूरित कर रहे थे, कि वह शक्ति बनी उनकी पराक्रम यात्रा की अखूट प्रेरक बनी रहे।

(४२)

निग्रह, सयम, अर्जित भी होता है, और जीवन क्रम मे, अवस्था सोपान के अवसर अनुसार, स्वत भी आता है। आकपण, आवश्यकता, भोग, तप्ति, फिर विरक्ति, मनुष्य के इद्रिय जगत का स्वभाव है। जैसे-जैसे सासारिक प्राप्तिया होती है, मन, अत की गहराइया मे पैठता जाता है। वहा की इच्छाए सूक्ष्म हैं। भौतिक से पथक, भावात्मक है। वस्तु नही, उसकी श्रेष्ठता तथा सौंन्य तप्त करती है। अपने से पद तक की यात्रा याचना व अधिकार प्राप्ति से, आशीर्वाद

देने योग्य बनने की यात्रा है। मोह को अपने से हटकर बटने, परिष्कृष्ट होने, तथा विस्तार पाने का नाम ही परिपक्वता है। प्रौढता है। आयु भी इस रूपातरण को सम्पन्न करती है। इस सदभ म पुरुष की गति धीमी होती है, पर नारी तो प्रकृति से ममता का सरोवर है।

पाडु की विजय यात्रा की अवधि ने राजमाता सत्यवती, अम्बिका, अम्बालिक गाधारी, कुती, माद्री को एक साथ चिता मे डाल दिया। अतराल स विजय की सूचना राज्य तक पहुचती, पुरा तक खुशियो की लहर दौड जाती, पर अत पुर म क्षणिक प्रसन्नता का तुरत दुश्चिता आवत कर लेती।

पहली सूचना मिली पराक्रमी पाडु न दशाण देश के राजा को परस्त कर दिया। फिर सदेश मिला कि महाराज पाडु ने मगध के अहकारी राजा दीघ से घमासान युद्ध किया। उसके सुरक्षित गढ को सेना न घेरकर बाध्य कर दिया कि वह अपनी सेना को गढ से बाहर निकाले। सेना के बाहर आते ही पाडु स्वय योद्धाओ के साथ महल मे प्रवेश कर गए तथा राजा का बध किया। राजा दीघ के सम्मुख सदेश पहुचाया गया था कि वह कुरुराज्य की अधीनता स्वीकार कर ले। परन्तु उसने शक्ति के मद मे, प्रस्ताव ठुकरा दिया।

पितामह और सभासदस्यो को मगध पर इस काटे की विजय का अतिरिक्त हप हुआ। नगर मे उत्सव मनाया गया तथा पाडु के मगल के लिए, यन करवाए गये।

अम्बिका और अम्बालिका राजमाता के महल मे गइ। राजमाता पूजा करके निवृत्त ही हुई थी। उन्ह देखकर चकित हुइ।

दोनो ने अभिवादन किया।

बैठो।

दोनो उनकी चौकी के निकट आसन पर बैठ गईं।

कहो कैसे आई ? राजमाता ने पूछा।

मा पाडु की विजय क समाचार ने आपको अवश्य प्रसन्नता दी होगी। अम्बिका बोली।

हम सबके लिए ही सुखद समाचार है। कितनी लम्बी अवधि के बाद देखा कि कुरवश का कोई उत्तराधिकारी दिग्विजय मे सफल हो रहा है। राजमाता के चेहरे पर सतोष व्याप्त था।

यह यात्रा कितनी लम्बी होगी, मा ? अम्बालिका ने पूछा।

मैं क्या कह सकती हू, बेटी। जीत का मद स्वय मे उत्प्रेरक होता है। फिर पाडु को तो एक अति से जाग्रत कर दूसरी के लिए प्रेरित किया गया है। तुम जानती तो हो।

हा, मा ! मैं डरी नही कभी जीवन म। पर बेटे के इस स्वभाव से अब कापने

तगी हू । वह मन से दृढ है । सकल्पवान है, पर देह से क्षीण हो रहा है । आपने ध्यान मे नही देखा कदाचित । अम्बालिका के मुख पर धुधलाहट-सी थी । मैंने देखा है । तुम से अधिक मैं शक्ति हू । लेकिन जो हो रहा था, वह और भी घातक था । मैं अपने बेटे की किसी अति को रोक नही सकी थी—उसे खोना पडा था । तुम अल्प आयु थी उस समय, तुम से कैसे कहती कि

राजमाता यकायक रुक गयी । कौन-सी स्मृति, किनके सामने, क्या कहलाने लगी । विचित्र वीय की मत्यु क्या हुई, यह बेचारी क्या जानती थी । उसे समय पर अब दोनो समझ रही थी । राजमाता का सकेत । उस सकेत के माध्यम से, उस हानि को भी, जो माद्री के नैकट्य मे घटित हो सकती थी ।

विचार मे डूबी सत्यवती स्वय बोल पडी—मैंने ही भीष्म को बुलाया था । उससे कहा था—पाडु को सचेत करो । उसे उसके कत्तव्य की याद दिलाओ, वरना दुघटना हो जाएगी ।

राजमाता की आत्म-स्वीकृति सुन, अम्बिका तथा अम्बालिका, दोनो अचम्भित-सी उन्हे ताकने लगी । पर प्रौढता ने दोना को सयम और समझ दे दी थी । वह अब राजमाता पर श्रद्धा रखती थी । बेटे राजा हो गये उनकी रानिया आ गइ, फिर उन्हे गह राजनीति मे क्या सरोकार रखना था । राजमाता की विवशता है और उत्तरदायित्व भी ।

तुम दोना आई तो अवश्य विशेष मतव्य होगा । उसे नही कहा । राजमाता की दृष्टि भी, शङ्का के अनुसार प्रश्न कर रही थी ।

महाराज पाडु की चिन्ता यहा ले आई । अम्बिका बोली ।

महाराज पाडु की, या बेटे पाडु की ? राजमाता मुस्कराई ।

प्रसन्नता तब होती है, जब भटका सदेश आता है यहा कुशलता का, पर चिता तो हर समय घेरे रहती है । रात्रि म भयानक स्वर आकर जगा देते हैं । तब देवा का स्मरण करने लगती हू—रक्षक बनना देव । अम्बालिका विगलित-सी हो गई ।

हम यही तो प्राथना कर सकते ह । राजा को अपना कत्तव्य करना ही होगा, क्षत्रिय धम निभाते है राजा, रानियो का पल-क्षण दुश्चिताओ मे बीतता है । फिर हम तो मा है ।

तो राजमाता, आप पितामह से कहिये, वह सदेश भिजवा दें कि महाराज पाडु जय यात्रा समाप्त कर लौट आए । राज्य विस्तार तो कितना भी हो सकता है । इसकी सीमा कहा ? अम्बालिका के मुह से आवेश म मुख्य बात निकल गई। यह माह था । कमजोरी थी । क्या था ? वह समझ नही सकी ।

कसे कह सकती हू भीष्म से । वह स्वय मद्र की ओर विजय यात्रा के लिए गये थे ।

देने योग्य बनने की यात्रा है। मोह को अपने से टूटकर बटने, परिष्कृष्ट होने, तथा विस्तार पाने का नाम ही परिपक्वता है। प्रौढता है। आयु भी इस रूपान्तरण को सम्पन्न करती है। इस सदभ म पुरुष की गति धीमी होती है, पर नारी तो प्रकृति से ममता का सरोवर है।

पाडु की विजय यात्रा की अवधि ने राजमाता सत्यवती, अम्बिका, अम्बालिक गाधारी, कु ती, माद्री को एक साथ चिता म डाल दिया। अतराल से विजय की सूचना राज्य तक पहुचती, पुरा तक खुशिया की लहर दौड जाती, पर अत पुर मे क्षणिक प्रसन्नता को तुरत दुश्चिता आवृत कर लेती।

पहली सूचना मिली पराक्रमी पाडु न दशाण देश के राजा को परास्त कर दिया। फिर सदेश मिला कि महाराज पाडु ने मगध के अहकारी राजा दीघ से घमासान युद्ध किया। उसके सुरक्षित गढ को सेना न घेरकर बाध्य कर दिया कि वह अपनी सेना को गढ से बाहर निकाले। सेना के बाहर आते ही पाडु स्वय योद्धाओ के साथ महल मे प्रवेश कर गए, तथा राजा का बध किया। राजा दीघ के सम्मुख सदेश पहुचाया गया था कि वह कुरराज्य की अधीनता स्वीकार कर ले। परन्तु उसने शक्ति के मद मे, प्रस्ताव ठुकरा दिया।

पितामह और सभासदस्यो का मगध पर इस काटे की विजय का अतिरिक्त हप हुआ। नगर म उत्सव मनाया गया तथा पाडु के मगल के लिए, यज्ञ करवाए गये।

अम्बिका और अम्बालिका राजमाता के महल मे गइ। राजमाता पूजा करके निवत्त ही हुई थी। उन्हे देखकर चकित हुइ।

दोना न अभिवादन किया।

बैठो!

दोनो उनकी चौकी के निकट आसन पर बठ गइ।

कहो, कैसे आई? राजमाता ने पूछा।

मा, पाडु की विजय के समाचार ने आपको अवश्य प्रसन्नता दी होगी। अम्बिका बोली।

हम सबके लिए ही सुखद समाचार है। कितनी लम्बी अवधि के बाद देखा कि कुरवश का कोई उत्तराधिकारी दिग्विजय म सफल हो रहा है। राजमाता के चेहरे पर सतोप व्याप्त था।

यह यात्रा कितनी लम्बी होगी, मा? अम्बालिका ने पूछा।

मैं क्या कह सकती हू, बेटी। जीत का मद स्वय मे उत्प्रेरक होता है। फिर पाडु को तो एक अति से जाग्रत कर दूसरी के लिए प्रेरित किया गया है। तुम जानती तो हो।

हा, मा! मैं डरी नही कभी जीवन म। पर बेटे के इस स्वभाव से अब कापने

लगी हू । वह मन से दृढ है । सकल्पवान है, पर देह से क्षीण हो रहा है । आपने ध्यान से नही देखा कदाचित । अम्बालिका के मुख पर धुधलाहट-सी थी। मैंने देखा है। तुम से अधिक मैं शक्ति हू । लेकिन जो हो रहा था, वह और भी घातक था। मैं अपने बेटे की किसी अति को रोक नही सकी थी—उसे खोना पडा था। तुम अल्प आयु थी उस समय, तुम से क्या कहती कि

राजमाता यकायक रुक गयी। कौन सी स्मति, किनके सामन, क्या कहलाने लगी। विचित्र वीर्य की मत्यु क्यो हुई, यह बेचारी क्या जानती थी। उस समय पर अब दोनो समझ रही थी। राजमाता का सकेत । उस सकेत के माध्यम से, उस हानि को भी, जो माद्री के नैकट्य से घटित हो सकती थी।

विचार मे डूबी सत्यवती स्वय बोल पडी—मैंने ही भीष्म को बुलाया था। उससे कहा था—पाडु को सचेत करो। उसे उसके कत्तव्य की याद दिलाओ, वरना दुघटना हो जाएगी।

राजमाता की आत्म-स्वीकृति सुन, अम्बिका तथा अम्बालिका, दोनो अचम्भित सी उन्हे ताकने लगी। पर प्रौढता ने दोनो को सयम और समझ दे दी थी। वह अब राजमाता पर श्रद्धा रखती थी। बेटे राजा हो गये, उनकी रानिया आ गइ, फिर उन्हे गृह राजनीति से क्या सरोकार रखना था। राजमाता की विवशता है और उत्तरदायित्व भी।

तुम दोना आई तो अवश्य विशेष मतव्य होगा। उसे नही कहा। राजमाता की दृष्टि भी, शब्दों के अनुसार प्रश्न कर रही थी।

महाराज पाडु की चिन्ता यहा ले आई। अम्बिका बोली।

महाराज पाडु की, या बेटे पाडु की ? राजमाता मुस्कराइ।

प्रसन्नता तब होती है, जब भटका सदेश आता है यहा कुशलता का, पर चिंता तो हर समय घेरे रहती है। रात्रि मे भयानक स्वर आकर जगा देते हैं। तब देवा का स्मरण करने लगती हू—रक्षक बनना देव। अम्बालिका विगलित-सीहो गई।

हम यही तो प्राथना कर सकते है। राजा का अपना कत्तव्य करना ही होगा, क्षत्रिय धम निभाते है राजा, रानियो का पल-क्षण दुश्चिताओ मे बीतता है। फिर हम तो मा है।

तो राजमाता, आप पितामह से कहिये, वह सदेश भिजवा दें कि महाराज पाडु जय यात्रा समाप्त कर लौट आए। राज्य विस्तार तो कितना भी हो सकता है। इसकी सीमा कहा ? अम्बालिका के मुह से आवेश म मुख्य बात निकल गई। यह मोह था। कमजोरी थी। क्या था ? वह समझ नही सकी।

कह सकती हू भीष्म से। वह स्वय मद्र की ओर विजय यात्रा के लिए गये थे।

वह इस उम्र म गये, तब यात्रा स्थगित करने के प्रस्ताव को कस मानेंग ? अगर दुघटना घट गई तब क्या होगा, राजमाता ? राजा धष्टराष्ट्र मेग पुत्र है, पर वह तो नाम का है। सारा भार तो पाडु पर है। अम्बिका ने दूसरी तरह यात्रा स्थगित करन का अनुमोदन किया।

राज्य विस्तार निरथक हो जायेगा। यदि अघट घट गया। अम्बालिका बोली।

सत्यवती उसी तरह गम्भीर रही। क्या उन्ह यह सम्भावना नही दीखती ? युद्ध मे मौत सामने होती है, आदमी उसीसे तो खेलता है। लेकिन वह राजमाता है। कमजोर भावनाओ को भी कवच पहना कर सख्त दिखाना होता है। वह दोनो को समझाती हुई बोली।

होनी को कोई नही टाल सकता। पहले भी क्या टल सकी। भाग्य पर और प्रायना पर विश्वास रखो। मैं भी चिंतित रहती हू। पर चिंता को इतनी अवधि के लिए नही ठहरने देती कि वह मेरे विश्वास को तोड दे। उसके बाद सूय से, अग्नि से प्राथना करती हू—कि वह मेरे बच्चे को अदम्य शक्ति दे, तजस वनाए। मन को शान्त रखो, परिणाम को भविष्य पर छाड दो।

अम्बिका और अम्बालिका उद्विग्न मन आई थी, लगा कि राजमाता के कथन मे ऐसी शान्ति है जो उन तक पहुचकर, उन्ह सम्पृक्त कर रही है। वह शान्ति उनके कथन मात्र म नही है, उनके व्यक्तित्व से प्रवाहित होती है।

सन-से सफेद बाल, सिकुडनो भरा चेहरा त्वचा का ढीलापन पर फिर भी आखो मे गहरा चिंतन। उसके पीछे जैसे ममता की वेदना हो।

दोना किसी आस्था स अभिभूत हो गईं। जिस सुझाव को लेकर आई थीं। वह असगत लगने लगा। सादर चरण छू लौट आयी।

समय आगे बढा। सदेश आया महाराज पाडु ने मिथिला व काशी पर विजय प्राप्त कर ली। भद्र सभा ने सदेश का स्वागत किया। यज्ञ, उपासना, दान का क्रम बढा दिया गया। पुरवासियो की खुशी उत्सव का रूप ले रही थी।

महाराज धतराष्ट्र को बधाई है। आपके भाई की वीरता की तुलना महाराज इन्द्र से की जा रही है। स्वर गाधारी का था।

देवता इन्द्र से। महाराज धतराष्ट्र ने जैसे उपाधि मे शुद्धिकरण किया ?

अन्तर है क्या ? गाधारी ने पूछा।

हा, जितना मुझमे और पाडु मे। मैं राज राजाओ की दष्टि मे अधिराज होऊगा, पर लोक की दष्टि म अपनी वीरता के कारण पाडु देवता तुल्य माना जाएगा।

वह आपका कितना आदर करते है। उनकी उपलब्धिया आपके और कुरु राज्य के लिए हैं।

है। तब तक, जब तक वह मुझे मानता है। पर मान्यता तो उसको प्राप्त हो रही है। जब चाहे, अपने को अधिपति घोषित कर सकता है। धृतराष्ट्र चिंतन में नहीं, चिंता मे थे। पलक झपका कर जैसे किसी प्रकाश को अनुभूत करना चाह रहे हों, जो मिल नही रहा हो।

गाधारी उनकी अन्यमनस्कता समझ गई। सामान्य करने के उद्देश्य से बोली, सन्देह, अविश्वास को स्थाई बनाता है। आप ऐसा क्यो सोचते रहते है, महाराज ?

परावलम्बी अपनी विवशता पर नही सोचे, तो प्रत्यक्ष की अवहेलना नही होगी क्या ? तुम्हे नही लगता कि मैं सिर्फ शोभाऊ हू। मेरे हाथ म क्या है ? मेरा अधिकार कितना है ?

आपके पास धर्म है। धर्माधिकार है। इतने समय मे मैं अच्छी तरह समझ गई हू कि मर्यादाओ को मानना, उसके अनुसार व्यवहार करना, कुरुवा की विशेषता है। पितामह के छोटे से सदेश ने पाडु को विजय यात्रा पर भेज दिया। गाधारी समझा रही थी।

मैं कहा जा सकता हू ? क्या कर सकता हू। क्या करने योग्य हू। दूसरो की सहानुभूति मिलती रहे तब तक ठीक है, वह बदल जायें तब ?

नही हो सकता। आपको ऐसा नही सोचना चाहिए।

मुझे तुम्हारे भाई शकुनि की बातें ज्यादा यथार्थ लगती है। उसने तुम्हे यहा पहुचाकर लौटने से पहले कहा था—महाराज धृतराष्ट्र, बुद्धि का धर्म चौकन्नापन है। चौकन्नापन तभी रह सकता है, जब मानते रहो कि तुम्हारे हित को हडपने वाले हर समय ताक मे हैं। आपको वैसे भी दूसरो पर निर्भर रहना है।

उसकी सीख पर मत जाइये। लुटेरो और आक्रमणकारियो से घिरे राज्यो के नायको का यही दर्शन हो सकता है। मैं भी ऐसे ही सदेहो को लेकर आई थी, लेकिन यहा के वातावरण ने, आपके यहा की जीवन विधि ने, मुझे बदल दिया, महाराज। गाधारी की स्वीकृति, ईमानदार स्वीकृति थी।

धृतराष्ट्र मानते हैं कि पाडु उन पर श्रद्धा रखता है। विदुर उनके अतरग हैं, गाधारी विवेकसम्मत सम्बल है उनके लिए। पर आशका, जैसे उन्ही की छाया है, जो अलग होने हुए भी उनसे जुडी रहती है। वह उजाले-अधेरे की नाल हैं जिसे दाई काटना भूल गई।

(४३)

कुन्ती क्या, पूरा नगर, महल, अत पुर, महाराज पाडु की जययात्रा से लौटने पर प्रसन्नता की उछाल भरने लगा। सेना का स्वागत उस सीमा स शुरू हो गया था, जहा स कुरु राज्य शुरू होता है। काशी, सुह्म, पुड्र राज्यो को जीतकर

पांडु ने अपनी यात्रा की इति की थी। विजेता के साथ अस्त्र, मणि, मुक्ता, सुवर्ण चादी, गो, घोडे, ऊट, भसे, भेड, हाथी अनेकानेक धन आया था। हारे हुए राजाओ ने मूल्यवान उपहार भेंट किये, तथा कर के रूप में राशि देना स्वीकार किया था। हस्तिनापुर तोरणो का नगर बन गया था। यज्ञ, स्थान-स्थान पर ऋत्विको की ध्वनि से गुजरित हो रहे थे। पुरजनो ने तथा श्रेष्ठि वग ने दीना के लिए भोजन व दान दक्षिणा के लिए हृदय खोल दिया था।

पितामह, मन्त्रि परिषद, पुरोहित वग ने, व्यवस्था क्रम के अनुसार भाग को बाटकर स्वागत को भव्य रूप प्रदान किया था। रथो, अश्वो, हाथियो पर शोभित वीर अपनी सफलता से गर्वित, स्वागत का उत्तर प्रसन्न मुद्रा म दे रहे थे।

अत पुर मे पाडु ने प्रवेश कर राजमाता सत्यवती, माता अम्बिका, व अम्बालिका के चरण स्पश किये। धनुष, चाप, कवच धारे पाडु, देवता तुल्य लग रहे थे। भावावेश और वत्सलता से पूण, आनन्द के वातावरण ने पाडु को अश्रुपूरित कर दिया।

महाराजा धतराष्ट्र व विदुर ने विजयी भाई को वक्ष से लगा लिया। महाराज के ज्योतिहीन नेत्र हृदय के भर आन से भरपूर हो उठे थे।

गाधारी, कुन्ती, माद्री, परिचारिका वग से घिरी अपूव स्वागत का दृश्य देखकर हर्षित हो रही थी। नेत्र दृश्य स धय धय हो रह थे या दृश्य नेत्रा के शुद्ध भावो स उपकृत हो रहा था, कौन रेखाकित कर सकता था।

ऐसे समय पुष्प ही आशीर्वाद बनते हैं। वह ऐसे उछल उछल कर विखर रह थे जैसे बरखा की फुहार की हवा अपनी थपथपाहट से लहरा रही हो।

दिन ढल गया। उस दिन सूर्यास्त भी अनोखी लाली के साथ घटित हुआ। सरिता की धारा ने उसी रग का मोहक परिधान पहिना जिस रग का परिधान पश्चिम दिशा ने पहिन रखा था।

महाराजा पाडु ने अपन विशिष्ट दूत से कुन्ती के यहा सदश भिजवाया कि वह रात्रि उन्ही के यहा रहग।

कुन्ती के लिए यह अप्रत्याशित सदेश था। इतने माह के अलगाव के बाद उनका माद्री के महल जाना अपक्षित था। माद्री ने दिन भर अपने मन को उद्वेलित पाया था, तथा उसने महाराज के अतरग स्वागत के लिए पूरी व्यवस्था करवाई थी।

कुन्ती के पास श्रद्धा थी, शात मन था, उसी को लिये वह महाराज क लिए प्रतीक्षारत थी। मा अम्बालिका ने पुत्र को भोजन क लिए आमत्रित किया था। आमत्रण का तो बहाना था, वह अपन विजयी पुत्र को जी भरकर निहारना चाहती थी। वह निराल म उस आशीर्वाद देना चाहती थी कि उसकी और उसके पुत्र की साधना विधाता न सिद्धि तक पहुचाई। जीवन मे इसस अधिक मुक्ति प्रदायी क्षण कौनस हो सकत थ।

सिह-सा भव्य पुत्र उसक सामन उनक कलात्मक आसन पर बठा चौकी पर

रखी थाली में सजा भोजन प्राप्त कर रहा था। वह वात्सल्य की बलिहारी रूप हुई उसे एक टक देख रही थी।

पाडु, युद्ध में तेरे घातक घाव तो नहीं लगे? उन्होंने पूछा।

पाडु ने सिर उठाया, फीकी-सी मुस्कराहट मुख पर प्रकट हुई। बोले—मा युद्ध में घाव किसी को तो लगने ही हैं। आहत भी होने हैं, मरते भी हैं।

मैं तेरी देह पर लगे घावों की पूछ रही हू।

मेरे सामने जगह-जगह की युद्ध भूमि है। उनके विदारक दृश्य हैं। अब युद्ध के लिए कभी नहीं जाऊगा। पाडु के दीर्घ सास-सी छूटी।

ऐसा क्यों कह रहे हो, पुत्र? अम्बालिका जड़ित-सी रह गई। वात्सल्य का सम्मोहन चुटकी सा दूर गया। गम्भीरता हावी हो गई।

दासी अतिरिक्त भोज्य पदार्थ लेकर आई। महाराज पाडु ने सकेत से मना किया।

अम्बालिका ने अनुरोध किया, थोड़ा और ले लो पुत्र, अभी खाया कितना है।

नहीं मा। पर्याप्त हो गया। उन्होंने उत्तर दिया।

तब दासी लौट गई। मा ने अपने मन की कहकर पुत्र के मन की जाननी चाही। चाहती तो थी कि वह यात्रा का वृत्तात सुने। वीरता की कथाए सुने। पर पाडु को बहुत शात पाया फिर भी बोली—तुम्हारी लम्बी यात्रा से मैं भी घबरा गई थी। राजमाता से मैंने और अम्बिका ने प्रार्थना की थी कि वह पितामह से कहकर यात्रा का अत करवाए। उन्होंने क्षत्रिय धर्म का वास्ता देकर विवशता जाहिर की थी। पर हमें तो तुम्हारी चिंता थी। इकलौते तुम मेरे हो। राज्य का भविष्य तुम्हारे सुरक्षित रहने में ही तो सुरक्षित है। युद्ध में नहीं, तो सुरक्षा में तो हथियार उठाना पड़ता ही है। अन्यायी या उद्दड राजा को सजा देना, प्रजा को उससे मुक्ति दिलाना, अधिपति का कर्त्तव्य होता है। क्षत्रिय धर्म से बधे पितामह भी युद्ध कर्म से कहा छुटकारा पा सके। तुम क्या इसके विपरीत सोचते हो?

पाडु ने भोजन समाप्ति पर अन्न देवता को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। हाथ धोए। वस्त्र से मुह पोछा। मा की उत्सुकता को शात करने के लिए सक्षिप्त उत्तर दिया।

मातेश्वरी, पितामह की शक्ति, सयम, विद्वता, सकल्प का मैं अश भी नहीं हो सकता हू। उन्होंने अलग-अलग धर्मों को अपने में एकीकृत कर अपने व्यक्तित्व को तेज पुज तथा अखडित बना रखा है। वह कर्म दिग्गज है। सासारिक भी, अलौकिक भी। मेरी सामर्थ्य वैसी कैसे हो सकती है? लेकिन युद्ध में जिस रक्त पात को मैंने देखा है, सहा है, वह किसी भी तरह मुझे उचित नहीं लगा। मगध

के राजा दीर्घ की हत्या उसी के महल मे, मेरे हाथो द्वारा हुई। वह दृश्य भूले नही भूलता। जो हमारे अधीन नही होना चाहे, वह हमारी दृष्टि मे दुश्मन हो जाये, यह कसे सगत हो सकता है ? लूटपाट, जनहानि, बस हुआ को उजाडना, यह राज्य विस्तार की मदाध तष्णा के तहत, नैतिक व धम सम्मत हो सकता है, पर यह भी अनाचार का रूप है। मैं नही जानता मा कि मैं क्या चाहता हू। परन्तु राज्य नही चाहता। महाराज धृतराष्ट्र सम्भालें राज्य को, मैं सतत अशाति और सघष को नही जी सकता। मैंने लौटते हुए तय कर लिया था, हस्तिनापुर से दूर, उत्तर की ओर वनो मे शान्तिपूवक वास करूगा। मगया पर जीऊगा। अपने अशात हुए मन की शाति ढूढूगा। मा अम्बालिका धक्का खा गई। वह हसता हुआ, वह स्वागत स्वीकार करता हुआ, वह विजयी इन्द्र-सा लगता हुआ, उसका पुत्र, क्या औपचारिक अभिनय कर रहा था ?

पुत्र! तुम्हारा निणय विचित्र है। कौन स्वीकार करेगा इसे ? पितामह हर्गिज अनुमति नही दे सकते। मैं भी क्या चाह सकती हू कि तुम वन मे रहो, मैं राज महलो का सुख भोगू। त्यागने की आयु हमारी है या तुम्हारी ? यहा तो दान-दक्षिणा अश्वमेध यज्ञ की योजनाए पहले से बनी हैं। तुम्हारे प्रिय विदुर का विवाह राजा देवक द्वारा दासी से ज मी कन्या पारसवी से होने जा रहा है। हा शायद यही नाम है उस कन्या का। क्या यह सब तुम्हारी अनुपस्थिति मे होगा ? तुम्ही तो अर्जित करने वाले हो यश, कीर्ति, धन तथा सम्पन्नता।

मैं नही मा, हमारा सन्यबल। उसका कौशल और सकल्प। लेकिन मुझे मेरी अशान्ति के सामने यह सब निरथक लगता है। मेरा निणय अटल है। मैं पितामह से निवदन करूगा। वह मुझे यहा बदी बनाकर नही रखना चाहेंगे। वह उदार हैं। मेरे शुभ चिन्तक हैं।

दासी कब चौकी उठा ले गई, पता नही चला। कब बैठन का स्थान परिवतन हो गया, पता नही लगा। कितना समय बीत गया, पता नही चला। खिचडी-से बालो वाली प्रौढ मा युवा पुत्र के वीतराग को अनुभव कर ठगी-सी रह गई। क्या वह आज्ञा देकर पाडु को रोक नही सकती ? पाडु की मानसिकता विजय की मात्र प्रतिक्रिया है, थकान से, व ऊब से अपनी अस्थाई प्रतिक्रिया है, या यह वास्तविक निणय है, वह कैसे जान पाती। उसने सोचा कुन्ती से, माद्री से मिलेगा, जरा सामान्य होगा, अपने आप केन्द्र पर आ जाएगा।

पाडु ने चरण स्पश किये और उदास हुई मा से क्षमा मागकर कुन्ती के कक्ष की ओर चल दिये। अपेक्षा से अधिक समय हो गया था।

कुन्ती ने दासियो को सतक कर रखा था, पर बढती हुई रात के कारण उन मे शिथिलता आ गई थी। आपस म बातें करने के बाद, वह इस निष्कष पर पहुची थी कि महाराज कदाचित छोटी रानी माद्री के यहा पहुच गये।

अरे हमारी स्वामिनि तो सीधी गाय है, छोटी रानी वडी चालाक हैं। उन्होंने किसी वहाने से महाराज को बुलवा लिया होगा। फिर वाचलता से उह उलमा लिया होगा। एक दासी ने कहा।

दूसरी ने उस तुरत आगाह किया वावली हो गई है क्या ? किसी ने सुन लिया, और पहुचा दिया महाराज तक, या छोटी रानी तक, तो ऐसा दड मिलेगा कि अगले जनम तक याद करेगी।

मैंने सच कहा है। मुझे स्वामिनी के सीधेपन पर तरस आता है।

अपने पर तरस खा। रनिवासो की माया जानकर, जवान सिली रखना चाहिए।

लकिन जसे ही सूचना आई कि महाराज पाडु आ रहे हैं, दोना के होश गुम हो गय। शिथिलता हवा हो गइ।

छोटा की अक्ल, छोटी होती है, समझी। दूसरी दासी ने व्यग्य किया।

महाराज पहुचे तव तक अत कक्ष मे हलचल मच चुकी थी। कुती, जो विश्वास और निराशा की मानसिकता के बीच झूल रही थी, प्रफुल्लित हो उठी। महाराज पाडु सामाय कक्ष म पहुचे तो कुन्ती स्वागत करने को उपस्थित थी।

हम दर हो गई, कुती। हम मा के दशन के लिए गये थे।

स्थान ग्रहण करिये, महाराज। दासिया भोजन की पुन व्यवस्था कर शीघ्र ले आएगी।

पाडु सिंहासननुमा चौकी पर बठ गये। भोजन हमने मा के यहा किया है। भाजनालय म मना करवा दीजिये।

स्वामिनी का सकेत पाकर उपस्थित दासी मना की सूचना देने चली गई।

महाराज थके हुए ह ? कुती ने देखते हुए प्रश्न किया।

हा, विश्राम की तीव्र इच्छा है। तुम से मिलने के लिए बेचैन थे। कितनी-कितनी वार यात्रा म तुम्हारा स्मरण आया। पाडु स्वय कुती का अजीव-सी दृष्टि स देख रह थे, जैस दशनाभिलाषी अपने अभीप्सित को सामने पाकर दशन की तृप्ति ले रहा हो।

कुती महाराज को आदरसहित अतरग कक्ष मे ले गई, जो हल्के प्रकाश से प्रकाशित था। मिश्रित सुगध से कक्ष सुवासित था। कुती ने शैया के निकट पहुचकर महाराज से उत्तरीय लेने के लिए हाथ वढाया। महाराज ने उत्तरीय उस दे दिया तथा स्वय सेज पर बठ गये।

तुम भी बैठ जाओ, कुती।

आप सुविधा से विश्राम करें, मैं क्षण भर म आ रही हू।

शृगार को सवारन जा रही हो ? तुम वैसे ही अद्वितीय सम्मोहक लग रही

हो। महाराज ने परिहास किया।

अपने को क्या सवारूगी, महाराज ? तन-मन से आपकी हू फिर कृत्रिमता क्यो अपनाऊ ? मैं अपने आराधना स्थल पर जाकर तनिक मन को एकाग्र करने जा रही थी जो हर्षातिरेक से असामान्य हो रहा है।

उसे वैसी ही दशा म रहने दो। हम भी तो उतने शान्त नही हैं, जितना होना चाहिए। बल्कि हम वेदना की अत धारा से खिन्न है। तुमस शक्ति और विवेक के आकाक्षी हैं। महाराज पाडु ने लगभग रोक-सा लिया कुन्ती को।

कुन्ती ने आग्रह स्वीकार कर लिया, पर बोली—मैं आपकी अर्धांगिनी हू महाराज, अपना दुख मुझे दे दीजिए, सुख अपने तई रख लीजिए।

वह शैया के पावतें बैठ गई।

कुन्ती, हम तुमसे अपनी समस्या का हल पूछना चाहते हैं। जो प्राप्त नही है, वह हमे आकर्षित क्या करता है ? जब प्राप्त करत हैं तो हम उसी के क्या हो जाते हैं ? अघाते हैं, तो रिक्तता क्या अनुभव होती है ? फिर, दिग्भ्रातता। तुमस अधिक हम कौन समझता है।

पाडु ने जैस अपने को उलीच दिया।

कुन्ती क्या बोले ? अपने अनुभव स बोले या महाराज पाडु के प्रवाही स्वभाव के सम्बन्ध म बताए, जिससे वह परिचित है। उससे उत्पन्न प्रभावो को उसने सहा है। वह उत्तर नही बना पाई।

हम अभी मा अम्बालिका के पास से आ रहे हैं। हमने जब उन्हे अपना निणय बताया कि भविष्य मे युद्ध कभी नही करेंगे, हस्तिनापुर छोडकर वनो म उन्मुक्त वास करेंगे, आखेट करेंगे, कदमूल फल पर गुजारा करेंगे, तब उन्होने हमे क्षत्रिय धम तथा राजा के कत्तव्य याद दिलाए। हम पर उनकी सीख का असर नही पडा। जसे वह वही रह गई, उनके पास। पाडु एकटक कुन्ती को देखे जा रहे थे। उत्तर की अपक्षा करते हुए भी स्वय बोलने से रुक नही पा रहे थे।

कुन्ती का हृप बैठ गया। क्या महाराज इसी अप्रत्याशित निणय को सुनाने आये हैं ? वह सचमुच उलझे हुए हैं या

यह निणय तो सच मे असगत है। आपके मस्तिष्क म आया क्यो कर ? कुन्ती ने उल्टे, महाराज से प्रश्न कर लिया। उसे यही उचित लगा ऐसी अजीब स्थिति मे।

रक्तपात देखकर। निरथक रक्तपात देखकर। राज्य विस्तार तथा अधिपति होन की महत्वाकाक्षा का परिणाम प्रत्यक्ष देखकर। इसकी सीमा है क्या ? क्षत्रिय धम, या आयधम, या कोई भी धम, मनुष्य का रक्षक है या हत्याओ का प्रसारक ? हमने भोग के तल को देखा। माद्री के सौदय, उसकी देह सम्पदा म विस्तत होकर देखा। पाया, तृप्ति के बाद प्यास, तृप्ति के साथ और प्यास। यहा तक

कि शारीरिक निर्बलता और अघकार से ग्रसित हो गये। प्रसन्नता, आनन्द ऊर्जा, क्षणिक भावावश से लगे। हम जितने भरे, उससे अधिक रिक्त रह। तब लगा, तुम्हारा सयमित समपण ही देह धम का सतुलन है।

महाराज आप अतिरेक मे बडाई कर रहे हैं। मैं सामान्य नारी हू। कुन्ती ने धैय के साथ कहा।

पर हम असामान्य हैं। अति स विवश है। जबकि सयम चाहता है। अपनी पूणता के आकाक्षी है। हमे तुम्हारा सहारा चाहिए, कुन्ती। हमारी रिक्तता क्या चाहती है? क्या तलाश कर रही है? हम पता नही।

कुन्ती न देखा महाराज पाडु के चेहरे पर विकलता झलक आई। वह नादान और निरीह-से हो गय हैं। कुन्ती के अत की सवेदना, उसकी श्रद्धा, उसकी ममता, तरगित होने लगी। वह लज्जा से दृष्टि झुकाय रही।

निकट आ जाओ, कुन्ती।

कुन्ती ने कहे का पालन किया।

महाराज पाडु ने उसे बाह फैलाकर अपने चौडे वक्ष स लगा लिया और भावावश मे बुदबुदाने लगे—कुन्ती, तुम तो मुझे समझती हो। मेरी रिक्तता को, मेरी आतुरता को। मैं दिग्विजयी पाडु नही, प्राप्तियो से घबराया हुआ अशात अस्तित्व हू। मुझे दूर ले चलो—ऐसे धर्मों स अलग, जो सग्रह, सघष, रक्तपात की कडियो को जोडकर एसी शृ खला बना रहे है जो मुझे लपेटती जा रही ह।

कुन्ती महाराज पाडु के वक्ष स लगी रही। वह अब स्वरहीनता म कुछ बुदबुदा रहे थे। वह क्या कहती? क्या समझाती? महाराज का निणय, निणय मात्र कहा था, वह तो, वह तो उनके अशात मन की कराह थी। कोई तलाश थी। कदाचित् अपने ही द्वारा अपने की खोज।

महाराज आप विश्राम करिये, बहुत क्षुब्ध है। कुन्ती ने धीरे स अपने को हटाया। महाराज को सहारा देकर लिटा दिया।

वह सिरहाने बठी पति के सिर को धीरे धीरे दबा रही थी कि उनको नीद आ जाए। उनको, या उनके विकल सत्ता को!

(४४)

हस्तिनापुर मे खलबली मच गई थी जब वहा के वासिया ने सुना था—महाराज पाडु, उत्तर की ओर अरण्यवास के लिए जा रहे है। सत्यवती, अम्बिका, अम्बालिका, भीष्म पितामह, महाराज धतराष्ट्र, नीतिज्ञ विदुर, भद्र सभा, पुरोहित सभा, क्या कोई भी उन्ह समझाकर रोक नही सका? दिग्विजय के उत्सव स उत्पन्न प्रसन्नता आर उत्साह अभी सामान्य स्थिति मे हो भी नही पाया

था कि यह कैसा विक्षेप पैदा हुआ ! महाराज पाडु ने ऐसा अप्रत्याशित निणय क्या लिया ?

सामान्य पुरवासी के लिए यह अबूझ था, तो राज्य तथा प्रशासक वग के लिए भी पहेली के समान था। सत्यवती, अम्बिका व अम्बालिका को आशा थी कि पितामह उन्हे रोक पाएगे, परन्तु उन्हे पता लगा पितामह न पाडु से रुकने का आग्रह नही किया। धतराष्ट्र ने रोकना चाहा था, यह कहकर कि तुम्हारे बिना राज्य असुरक्षित हो जायेगा। पर पाडु ने विनम्रता से उत्तर दिया था – पितामह के रहत हुए राज्य कभी असुरक्षित नही हो सकता। सकट हुआ तो मैं अवश्य कत्तव्य पालन करने आऊगा। कदाचित धतराष्ट्र भी औपचारिक थे, तथा पाडु का उत्तर भी अवसर को देखते हुए टालना मात्र था। वचनवद्धता के स्वर में दूसरी तरह का सकल्प झलकता है।

भीष्म पितामह के समक्ष जब महाराज पाडु स्वीकृति पाने गये थे तब उन्हे तृणमात्र भी सदेह नही था कि उन्हे स्वीकृति देने म पितामह दुविधा म पडेंगे। हा, उन्हे यह पता था कि उन्हे प्रश्नो का उत्तर अवश्य देना पडेगा। वैसा ही हुआ था। पितामह विशिष्ट व्यक्तियो स मिलने के पश्चात अपने एकान्त कक्ष म आकर अध्ययन के लिए तत्पर हो रहे थे।

सेवक के माध्यम मे पाडु ने सूचना भिजवाई—पितामह, छोट महाराज आपके दशन के लिए उपस्थित हुए है।

बुला लाओ। पितामह ने कहा। उन्हे प्रसग का अनुमान था, अत बिछे हुए स्थान पर अपनी निश्चित जगह बैठ गये।

पाडु ने प्रवेश किया तथा चरण-स्पश किया।

पितामह के हाथ आशीर्वाद के लिए उन पर उठे, फिर बठने का सकेत दिया।

कुशल है ? उन्हाने पूछा।

आपका आशीर्वाद है। पाडु न उत्तर दिया।

सुना है तुम अरण्यवास के लिए उत्सुक हो ?

आपकी स्वीकृति पाने आया हू। नम्रता से पाडु ने कहा।

मृगया के लिए जा रहे हो, अथवा इतर प्रयोजन भी है ?

इतर प्रयोजन ही है, गुरुदेव ! मन अतिरिक्त मे अशात है। वन श्री की सौम्यता, प्रकृति का नत्य, कदाचित शान्ति व सतुलन दे सके।

राज्य धम से पलायन, कम से विरक्ति नही है यह ? शान्ति तो सयम व सकल्प स प्राप्त होती है। पितामह न भेदक दष्टि से देखा।

पाडु उस दृष्टि की प्रखरता से काप गय। उनकी दृष्टि नीचे हो गई। शब्द का स्रोत जैसे सूख गया।

पितामह ही आगे बोले। अशान्ति का कारण अपने से ही असतोष मे निहित है। पर असतोष को पहचानना भी होता है। किसी भी अतृप्ति की प्रतिक्रिया मे दूसरा सबल ढूढने से पहली अतृप्ति निर्मूल नही होती। यह तो समझते हो न, पाडु ?

अनुभव करता हू, पितामह। यह भी मानता हू कि मैं अत से दुर्बल हू, सकल्प मे क्षीण हू। मेरे पास ज्ञान नही है, पहचान नही है। मैं क्षुद्र हू, जिसे जाग्रत करने की आवश्यकता पडती है। कामनाओ के अधकार से ढका हुआ हू, इसीलिए अरण्य मे रहकर अपने अत का साक्षात्कार करना चाहता हू। पाडु इस प्रकार की आत्मत्रासक अभिव्यक्ति कर रहे थे कि भीष्म स्वय चकित रह गये। वह सभले। सयत भाषा मे गम्भीरता से बोले—क्षयकारी आत्मक्लेश से आत्मा स्फीत होती है, वत्स ! तुम्हारी दिग्विजय सकल्परहित व्यक्तित्व की साक्षी नही है, एक निश्चय सम्पन्न योद्धा भी कौशल का प्रमाण है। तुम दुर्बल नही हो, कदाचित उद्देश्य तथा जीवन दृष्टि मे अस्पष्ट हो। अभी आवेश हो, प्रतिक्रिया हो पर अपने को शोध करने के लिए विकल हो। यह भी एक मार्ग हो सकता है। मेरी स्वीकृति है तुम्हे।

पाडु को पितामह की स्वीकृति से प्रसन्नता हुई, लेकिन उनके टिप्पणीस्वरूप वाक्यो ने वन मे भी घेरे रखा। महाराज के साथ कुन्ती और माद्री दोनो रानिया थी। धृतराष्ट्र की आज्ञा के अनुसार अनुज के लिए सुविधापूर्ण व्यवस्था थी। कदाचित इसलिए, कि अल्प अवधि के बाद पाडु इस जीवन से भी उकताएगे, राज्य वैभव उन्हे पुन खीच लाएगा हस्तिनापुर। परन्तु कुछ समय बाद महाराज पाडु ऊपर की ओर बढने लगे। उन्होने महाराज धृतराष्ट्र को निवेदन भेजा कि अब उनकी व्यवस्था नही की जाये। वनवासियो एव ऋषियो का पर्याप्त सहयोग है।

कुन्ती ने आश्रम जीवन को स्वीकार करते हुए तामसी भोजन का त्याग कर दिया। माद्री प्रयत्न करते हुए भी अपने स्वाद एव दैहिक कामनाओ को नियन्त्रण मे नही रख पाती। वन की हरियाली, पक्षियो की उन्मुक्त उडान, वन्य जन्तुओ की विविधता, फूलो का दूर-दूर तक फैला विस्तार उसकी भावनाओ तथा इच्छाओ को उत्प्रेरित करता। सरोवर मे स्नान करती तो देह का रोम रोम अद्भुत रागात्मकता अनुभव करता।

माद्री आश्रम का जीवन पवित्रता तथा उदात्तता की अपेक्षा करता है। तुम्हे आश्रमवासिनी मुनि पत्नियो से अभिन्नता बनानी चाहिए। कुन्ती माद्री को शिक्षा देती।

माद्री शिष्टता से उत्तर देती—क्षमा करना बडी रानी, मुझे कन्द मूल एकत्रित करती, पशु चराती, कृषि कार्य मे सलग्न वनवासी नारिया आकर्षित करती हैं। कितनी सुन्दर तथा जीवन्त है वह ! आश्रमवासिनी, बुझी-बुझी-सी, जीवन का भार वहन करती लगती है। पुरुष सौंदर्य से जीता जाता है। मैं

महाराज को खोना नही चाहती।

कुती से अदर की वात रोकी नही जा सकी, वह बोली—महाराज को तुमने ध्यान से देखा कभी ?

नित्य देखती हू। माद्री ने गर्व से उत्तर दिया।

नही देखती, माद्री। तुम अपनी अनुरक्तता की तष्णा से रगी हुई यह नहा देख पा रही कि महाराज निरतर अपनी तेजस्विता खोते जा रहे हैं। वह पीले पडते जा रहे हैं, जैसे पाडुर रोग से ग्रस्त हो। क्या तुम नही जानती कि इसका क्या कारण है ?

आपका भ्रम हो सकता है या काल्पनिक दुश्चिता। मुझे ऐसा नही लगता। माद्री ने जैसे कुती पर दोषारोपण किया हो। चाहे उसने भोलेपन से ही कहा हो, परतु कुती को ऐसा ही लगा।

मैं तुम्हे समझा नही सकती, माद्री। महाराज विवश है अपने स्वभाव से। वह न तुम्हे कष्ट पहुचाना चाहते है, न मुझे। तुम देह से अलग सोच ही नही पाती। इसे मेरी ईर्ष्या तो नही समझ रही हो ? कुती हिचक रही थी।

ईर्ष्या नही मानती। पर तुम भी तो मानो कि यह मेरी देह तथा अत की विवशता है। मैं इसी तरह से महाराज को पाती हू और अपनी सम्पूर्णता को देती हू।

माद्री की स्पष्टोक्ति के सामने कुती निरुत्तर हो गई। वह उसको कैसे बताये कि महाराज का एक अश और एक स्वरूप उसके साथ भी प्रकट होता है, जो देह के माध्यम से उसका पार करता हुआ किसी प्रकाश का स्पर्श करता है और स्वय आलोक स्फुलिग-सा बन जाता है। उस अनुभूति को वह आज तक शब्द नही दे पाई। और उन क्षणो की महाराज पाडु की स्थिति को वह व्याख्यायित नही कर पाई।

वह मात्र अनुभूति है, अलौकिक आनद की।

माद्री भी तो ऐसी ही किसी आनन्द की बात करती है। विधि विधान का ही फर्क है, या

और महाराज स्वय क्या है ? अरण्यवासी होकर क्या नवीन कुछ पा रहे हैं ?

महाराज की दिनचर्या को प्राकृतिक वातावरण ने विभाजित किया है। वह प्रात उठकर सूर्योदय के साथ भ्रमण को निकल जाते है। पहाडी धरातल की कभी ऊपर जाती, कभी ढलुवा पगडडी पर चलते हुए मद-मद वहती पवन को सास मे लेते हैं। शरीर स्फूर्त हो उठता है। मन जाग्रत तथा मस्तिष्क ग्राहक। शाल वृक्षो की पक्तिया तथा छोटे कद के फूलो से लदे पेड-पौधे, हर्ष का भाव उत्पन्न करते हैं। वृक्षो की छाया मे कही ढकी, कही उजागर जलधारा आख-मिचौली-सी खेलने लगती है। कही यह जल लघु सरोवर-सा बना देता है।

वनस्पति की मनोहारी सुन्दरता के बीच विभिन्न रंगों के परिन्दे, और स्वतन्त्रता से विचरते जानवर, मुक्तता और निबंधता का विचार प्रेरित करते है।

वनवासी पुरुष महाराज का अभिवादन करते है। पांडु कभी एकांतित होकर किसी भी स्थान पर विश्राम करते हुए प्रकृति को पूर्णता में, अंश-अंश में, निहारते हैं। देखते जाते हैं कि जैसे वह अपनापे का निमंत्रण दे रही हो।

यह निमंत्रण हस्तिनापुर में कहां उपलब्ध था? जिस विजय-यात्रा ने उन्हें वितृष्णा तथा ग्लानि से भरा था, उसमें अहं तथा अहम्मन्यता का ही तो पोषण था। वह कैसा गर्व था जो पर्त की तरह चढता जाता था और उससे ध्वनि गूंजती थी सर्वशक्तिमान होने की। चक्रवर्ती महाराज की जय! जय!! एक इन्द्रधनुषी मायाजाल।

महाराज लौटते तो धूप चढने लगती। आश्रम दीखता, तो उसमें चले जाते। ब्रह्मचारी मुनियों से संवाद करते। ऋषि-आचार्य के सम्मुख उपस्थित होते। उनसे उपदेश सुनते।

महाराज की उपस्थिति से आश्रमवासी अपने को महत्त्वपूर्ण मानते। पर महाराज तो स्वयं उपकृत होने जाते थे।

दिनचर्या में विभाजित, परन्तु दिन की एकाग्रता को बनाता हुआ, सहज जीवन, अपने प्रवाह में बीत रहा था कि एक दिन असामान्य घटना घटित हुई जिसने पांडु के जीवन पर कड़कड़ाकर बिजली गिरा दी। उन्हें लगा कि कोई बेहद चट्टान दरार खाकर टूटी है, जिसके भार के नीचे दबे हुए वह तड़प रहे हैं।

(४५)

महाराज कितने ही दिन से आखेट के लिए नहीं गये थे। इच्छा हुई वह मृगया के लिए जाएंगे। वह अल्पाहार लेकर पुनः वस्त्र पहनने लगे।

महाराज, अभी तो भ्रमण करके आए थे, अब कहां जाने को तत्पर है? कुन्ती ने पूछा।

आज आखेट की इच्छा हो आई। उन्होंने उत्तर दिया।

मृगया का खेल निरीह पशुओं की हत्या से सम्पन्न होता है। रक्त उनका भी बहता है। इसे त्याग दीजिये।

अवश्य त्याग दूंगा, जब इससे मन हट जाएगा। यह तो जांचता रहूं कि संधान करना भूला नहीं हूं। धनुष कितने दिन से अनुपयोगी टंगा है।

माद्री, जो कार्य में व्यस्त थी, परस्पर के सम्वाद सुनकर सस्वर हंस पड़ी।

क्यों? हंसी क्या माद्री? महाराज ने उसकी ओर देखते हुए पूछा।

भूला हुआ वीरत्व जो याद आया आपको। मैं तो समझ रही थी कि आप

चरवाँहा, जरा सा डंडा घुमाकर खट खट करता कि कुलाचे भरते हुए ओझल हो जाते।

महाराज को प्यास लग आई थी। उन्हें नहीं ज्ञात था कि वह कितनी दूर आ गये थे। वह जल-धारा खोज रहे थे कि भर जी पानी पी सकें तथा घडी-भर विश्राम कर सकें। शिकार के बजाये जलधारा मिलना आवश्यक था।

वह पगडंडी के सहारे ऊंचाई की ओर चढे कि वहां से दृश्य अधिक स्पष्ट हो सकेगा और वह सरोवर, अथवा धारा, अथवा कोई उटज, देख सकेंगे।

महाराज निराश हो चुके थे। कुन्ती के शब्द याद आ रहे थे—मृगया में भी तो हत्या होती है। त्याग क्यों नहीं देते।

महाराज के मस्तिष्क में विचार आया—त्यागना तो उनसे हो ही नहीं पाया कभी। जो भी हुआ मन की प्रतिक्रिया से हुआ। ज्ञान को उन्होंने श्रुति के आधार पर अपनाया नहीं, ध्यान में केन्द्रित नहीं हुआ मन।

कहां भटक रहे हो, पांडु? विचारों से प्यास नहीं बुझती। जल खोजो, जल!

वह फिर आतुरता से दृष्टि घुमाने लगे—चतुर्दिक।

खिन्नता तथा दैहिक कष्ट में कुछ भी तो सुंदर नहीं लगता। सौंदर्य भी जैसे तृप्ति के बाद की मानसिक प्यास हो—जैसे ध्यान, धर्म, यज्ञ।

तभी महाराज पांडु को पेडों के बीच धारा लहराती दीखी। ठीक विपरीत में। ऐसी जैसे ऊंची ऊंची घास में अजगर रेंग रहा हो। नीचे उतरना होगा। और फासला बढेगा लौटने के लिए।

, किस प्रपंच में फंस गये! नहीं ही आते तो क्या बिगड रहा था, या छूट रहा था?

महाराज धारा की तरफ सर सर चले। ढलान में श्रम नहीं था, यह सुविधा थी, वरना पस्त तो पूरी तरह से हो चुके थे।

अनुमान सही था, धारा ही थी। पहुंचकर जल पिया। वृक्ष की छांह में धनुष तथा तूणीर को एक ओर रखकर लेट गये। लगा कि पलकें भारी हो रही हैं। थकान की शिथिलता और जल की तृप्ति से झपकी सी आने लगी।

झपकी में ही सरसर की ध्वनि उठी और देखा—सुनहरी हिरण चौकडी भरता भाग रहा है। वह धनुष पर तीखा बाण चढाये उसके पीछे भाग रहे हैं।

सरसर की निरन्तरता ने चौंका कर उन्हें बैठा दिया।

यह ध्वनि स्वप्न नहीं थी, वास्तविकता में हो रही थी।

ध्वनि का अनुसरण उनकी दृष्टि ने किया तो अचानक खडे हो गये। धनुष हाथ में उठाकर प्रत्यंचा पर तुरन्त बाण चढाया।

एक मृग का सिर व सींग झाडी के पीछे से स्पष्ट दीख रहे थे।

महाराज ने अवसर नहीं चूकने दिया तथा प्रत्यंचा को कान तक खींचकर बाण

छोड दिया।

मृग की आवाज हुई तो उन्होंने बिना अंतराल के झाडी पर तीन बाण और छोडे।

कराह दोहरी आवाज में थी। पूरी-की-पूरी झाडी हिल रही थी। हिरण कदाचित् वही था—कदाचित् वही ढेर हो गया था।

पांडु झाडी के निकट पहुंचे। एक साथ दो ! मैथुन स्थिति में !!

आखेटक का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। उसने झुककर स्पर्श करना चाहा।

रुको ! बाण खींचने का प्रयत्न नहीं करना।

यह पुरुष की आवाज थी जो हिरण के मुंह से निकल रही थी। हिरणी निष्प्राण हो चुकी थी। रक्त ने धरती को लाल कर दिया। था।

तान्त्रिकता प्रेत सिद्धि, ऐन्द्रजालिकता, ऋषियों की सिद्धि प्राप्ति, मृतक देह में अन्य जीव का प्रवेश, काया कल्प आदि के बारे में पांडु सुन चुके थे, परन्तु प्रत्यक्ष कभी नहीं देखा था। योग-साधना से दूर संवेदना के माध्यम से अन्य तक पहुंचना, उसको जानना, या अपनी बात उसके मुंह से कहना, आदि को उन्होंने स्वयं देखा था। पर सामने जो आवाज हिरण के मुख से निकल रही थी, उसने आकस्मिकता के कारण पांडु को तत्काल सोचने का अवसर नहीं दिया। वह हिरण की गोल गोल आंखों को देखने लगे जिसमें पीडा तथा निरीहता झलक रही थी।

कौन हो तुम ? पांडु ने पूछा।

किमिन्दम ऋषि ! मैं मृग का रूप धारण कर संतान उत्पत्ति के लिए मिथुन रत था, तुमने मुझे और मृगी को क्यों मारा ? यह अन्याय नहीं, अनैतिक तथा पापयुक्त कर्म हुआ है तुमसे। मैं जान सकता हूं कि तुम हस्तिनापुर महाराज पांडु हो। इसलिए यह कार्य और भी घोर अनैतिक है।

पांडु का अहम् तथा तर्क बुद्धि एक साथ सक्रिय हुए। उत्तर देते हुए बोले—मैंने अनुचित नहीं किया। मृगया करना क्षत्रिय धर्म है। इसी के माध्यम से हम अपनी युद्ध कौशल का अभ्यास करते हैं तथा अपनी क्षमता को परीक्षण की कसौटी पर चढाते हैं।

किमिन्दम हिरण मध्यम स्वर में बोला—तुम आर्य नरेश हो। आर्य, ऋषि पूजक, यज्ञ, दान-दक्षिणा विश्वासी हैं। वह प्राणी रक्षक होते हैं, जीवहन्ता नहीं। मैं वंशवृद्धि के लिए मिथुन में था, तुमने आनन्द और सृजन के क्षण को व्याघातित करके महापाप किया है।

यदि आप ऋषि हैं तो पाप तथा महापाप की भाषा में मुझे अपराधी नहीं ठहराना चाहिए। मैंने कब जाना था आप युग्म अवस्था में हैं ? पांडु नम्र हुए।

तुम्हें कदाचित उस अलौकिक आनन्द का भी पता नहीं है जिसमें दो देह,

देह की सीमा का अतिक्रमण कर एक आत्मा होते हैं। सजन उन्ही क्षणो म सम्पन्न होता है। वह सष्टि का सजन हो, जीव का सृजन हो, आत्मा से निसृत छन्द हो। महाराज पाडु, क्या तुम नही जानत जिसको दो रानिया का भोग प्राप्त है? सृजन क्षण तक पहुचे ही नही तो जानागे कसे? कदाचित् इसीलिए नि सतान हो अब तक।

पाडु, खडे खडे लता की तरह काप गये। उन्हे लगा कि इस ऋषि ने उनके पुरुषत्व को विद्ध नही किया है सीधे अत पर सधान किया है। अस्तित्व पारे की तरह खण्डित होता, बिखर-बिखरकर अशो म छितराता लगा।

क्षमा करें ऋषिवर, मैं दोषी हू। पाडु धरती पर बठ गए। अपराध भाव, ग्लानि भाव, ने उनके मुख को छाया की तरह निस्तेज कर दिया—धुधला।

तब बाणो को निकालो, मुझे मुक्त करो। जिस क्षण और अनुभूति का तुमने वध किया है, वह तुम भी नही पाओगे। प्राप्त करने की कोशिश जब भी करोगे अतप्ति म तुम्हारी मृत्यु होगी। जैसी मेरी हो रही है। बाण निकालो, मुझे मुक्त करो शीघ्र।

पाडु किंकर्त्तव्यविमूढ स बाण निकालते रहे।

अन्तिम शब्द फिर सुनाई दिये—तुम अपूण, असिद्ध, कालकवलित होगे, जैसा मैं जा रहा हू, निर्दोष होते हुए। जिस नारी से तुम्हारा ससग होगा, वह भी मत्यु प्राप्त करेगी।

पाडु जड हुए बैठे रहे। उन्ह हिरण हिरणी की देह से छाया-सी निकलकर प्रस्थान करती हुई दीखी।

(४६)

तुम दुबल नही हो, कदाचित उद्देश्य तथा जीवन दृष्टि म अस्पष्ट हो। अभी आवेश हो, प्रतिक्रिया हो। पर अपने को शोध करने के लिए विकल हो। पितामह के शब्द पाडु को रह रहकर परेशान करने लग।

वह अपन से प्रश्न करत—क्या मैं वास्तव म अपनी शोध कर रहा हू? क्या इस दिशा म गम्भीर हू?

नही रहा। उत्तर मिलता। घटनाए मेरे साथ बीत रही हैं, मैं जैसे उन्ही से निर्देशित हू। पितामह ने ठीक कहा था—मैं प्रतिक्रिया हू। मन की इच्छाओ का रथ हू। मैं ही सारथी हू, मैं ही रथ हू। न सारथी को पता है उसका गतव्य किस ओर है, न रथ को पता है कि वह क्यो है। बस दोना हैं—सारथी और रथ है, इसलिए गति है।

ऋषि न प्राण त्यागत-त्यागते भी शाप दे दिया—जस ही किसी स्त्री से ससग करोगे तुम्हारी मृत्यु होगी, वह भी कालकवलित होगी जिसस भोग करोग।

पाडु ने बीच मे ही हस्तक्षेप किया—महाराज नही, मात्र पाडु । इसी नाम से सम्बोधन करो ।

यह कैसे हो सकता है । सबध एक तरफ स नही, दूसरी तरफ से भी होता है । आप मेरे पति है, आराध्य हैं । मेरे लिए तो वही है जो पूव म थे । इसी की साक्षी देकर कहती हू, आपके साथ चलूगी । आपके बिना मैं अधूरी हू । अथ इति आप ही है मेरे । माद्री यदि चाहे तो हस्तिनापुर भेज दीजिए । इसके लिए सन्यास का माग कठिन होगा ।

है, कठिन है, मैं स्वीकार करती हू । बडी रानी, मेरी बडी बहन, जीवन की नयी विधि स्वीकार करनी अनिवाय हो गई है तो उससे भागना नही चाहती । सबध मेरा भी वही है जो आपका । महाराज, आप से जो प्राप्त हुआ, उससे मैं भी सम्पन्न हुई हू । आपके बगर मै अपने जीवित रहने की कल्पना नही कर सकती । मैं उस मोह को छोड दूगी, जो मेरे आपके बीच स्वाभाविक है । वह सुख नही सही, पर क्या नैकट्य और दशन लाभ से भी वचित कर लू अपने को ?

तुम्हारी दोना की उपस्थिति मेरे लिए बाधक होगी । यदि कभी भी मैं अपने से टूट गया, तब अन्त भयानक होगा । अग्नि और घृत का योग हमारी छवि ले लेगा । पाडु ने समझाया ।

नही, महाराज, यज्ञ तो अब अन्त मे होना है । भोग के सारे आकषणा से विरक्त होकर कामनाओ को समिधा बनाना होगा । प्रेम का दूसरा रूप है ममता । उसी को व्याप्त करना होगा आत्मा मे, दृष्टि मे । वह हमारे म है, उसी को व्यापक करना होगा । कुन्ती जसे अमृत वचन बोल रही थी ।

माद्री ने सुना, वह उठी, पहली बार उसने कुन्ती के चरण स्पश किए । फिर महाराज पाडु के । आपको मुझस आशका है ना ? मुझे भी जीवन प्यारा है । लेकिन साथ भी प्यारा है । मैं आप दोना की शपथ लेकर सकल्प करती हू, इस मन को कामनाओ के कोष को, परिशुद्ध करूगी । मेरी ओर से ऐसा अवसर कभी नही आएगा । अपने अह, अपने गव को, समर्पित करती हू आपके अचल म । यह कहते हुए माद्री न कुन्ती के अक म सिर रख दिया । वह बालिका की तरह रो रही थी ।

कुन्ती का हृदय उमड आया । वह माद्री को थपथपाने लगी, जस मा पखेरू परेवे को पखो से स्नेह दे रही हो ।

पाडु की स्वय की सवेदना, जो जड होकर निष्क्रिय-सी हो गई थी, रुई-सी खुल गई ।

वह अकेले नही है । यात्रा अकेली नही । वण से शब्द, शब्द से पद, पद से वाक्य, छद, यही तो ध्वनि, घात-बलाघात, गति तथा लय है । भावा की एक तानता ही तो प्राप्त करनी होगी, जो करुणा तथा ममता बन सक ।

वह कुन्ती की गोद मे माद्री या देख रह ये और कुती उह। जब वह रही हो—धम यही स तो शुरू होता है, इसी तरह स। बिदु क सहज समपण स।

हस्तिनापुर मदश भेज दिया गया कि पाडु कुन्ती तथा माद्री सहित उत्तर कुरु की यात्रा को अग्रसर हा गए हैं। विदा के समय आश्रमवासी तथा वनवासी परिवार दुखी हो गय। जा भी धन आभूषण, सुविधा की वस्तुए थी, महाराज न उनको दान-दक्षिणा स्वरूप वितरित कर दिया। पाडु अब सयासी वस्त्र म थे। कुती एव माद्री न आश्रम निवासिनियो की तरह श्वत वस्त्र धारण कर लिये थे, पहले वह नागशत पवत पहुचे। आहार सात्विक हा चुका था। पाडु अब गहन साधना तथा चिन्तन करन लग थे। कुन्ती व माद्री प्रात तथा सध्या पूजा पाठ म व्यस्त रहन लगी थी। प्राकृति अब मात्र वातावरण नही रह गई थी, उसम मनो रमता अनुभव हान लगी थी। जस मन की भावनाए ध्यान म केंद्रित होन लगी, अतमुखता जाग्रत होन लगी। अन्तमुखता न सहज शाति की स्थाईपन दिया। ममता, एकात्मकता, अन्दर से बाहर की ओर प्रसार होने लगी। अहकार, पद का, जाति का, श्रेष्ठता का, उच्चता का, विलुप्त होने लगा।

पाडु जहा भी ठहरते, लोग उनकी सुन्दरता तथा कुती व माद्री के सौन्दय को देखकर मोहित हो जाते। भोजन की व्यवस्था म वे सहयोग देते। कुन्ती तथा माद्री के स्नेहिल स्वभाव म उह अपनत्व झलकता।

उन्होंने नागशत से आग चत्ररथ पवत पर विश्राम लिया। इसके पश्चात कालकूट पवत स होते गधमादन पहुचे।

यात्रा की थकान देह पर प्रभाव डालन लगी थी। पाडु कष्टकर साधना कर रहे थे। ऋषियो स साधना सीखत, उसे अभ्यास मे लात।

हम कितने ऊपर जाना होगा? कुन्ती न एक दिन पूछा।

कसा अनुभव करती हो? विश्राम की अवधि बढानी चाहो तो कुछ दिन और रुक जाएग।

आपका स्वास्थ्य क्षीण होता जा रहा है। माद्री न कहा।

स्वास्थ्य ता अत का हाता है—बुद्धि का, मन का, आत्मा का।

कुती क्या माद्री देह और आत्मा स और सौम्य नही लगने लगी? तुम तो साक्षात श्री प्रतीत होती हो।

प्रशसा सात्विक है न महाराज? मोह मिश्रित हो तो हम दोनो हठयोगी साधना करने लगें। शरीर को विकृत कर लें, केशो को काट कर धारा म प्रवाहित कर दें। कुती ने व्यग्य किया।

माद्री ने साथ दिया—पुरुष मन अश्व होता है। जितना चाबुक मारो। बाध कर रखो उतना ही उछलता है। यह तो नारी है जो सहजता स सयमशीलता अपना लेती ह।

त्रिगुणात्मक भी नही होती है—सत्व, रज, तम की धात्री प्रकृति। माया का उत्स। पुरुष, तो पुरुष है। शुद्ध। पाडु ने उत्तर दिया।

ऋषि श्रेष्ठ कहते है—पुरुष की छाया ही प्रकृति को जाग्रत करती है। माया का कारण तो वही हुआ ना ? कुती कह उठती है। पाडु उ मुक्तता मे हसते हैं।

शीत ऋतु की ठड बना, पवत श्रृ गा को हिम से ढकने लगी। शीत लहर कम्बलो को पार कर देह को ठिठुरा दती। सूय हिम की पर्ता-पर्दो से दबा दुबका ऐसा प्रतीत होता जसे गुरु से प्रताडित भयभीत शिष्य। पण कुटीर, दरवाजे, आश्रम, पगडण्डिया, श्वेत दूध सी दीखती थी। रोमिल पशु अपनी सुरक्षा साधे कभी-कभी दृष्टिगोचर होते थे। किसी चट्टान का काट कर बनाई गई गुफा मे तपस्वी मिलते, तो पाडु दडवत कर उनके दशन का क्रम बना लेत। उनकी सवा करत, कि वह प्रसन्न होकर आध्यात्मिक उपलब्धि की कोई विधि अथवा मत्र दें।

गधमादन को छोडकर इन्द्र द्युम्न ताल के क्षेत्र मे ठहरते हुए हसकूट पहुचे। यहा से यात्री ऋषियो के साथ तीनो शतश्रृ ग पवत पर पहुचे।

पाडु की इच्छा ऋषिया के समूह के साथ आग जाने की थी। सहयात्रा करते हुए ऋषियो के साथ विशेष आत्मीयता हो गई थी।

पाडु की तपस्या निरन्तर कठोरतम होती जा रही थी। समाधि की स्थिति मे कई बार उन्ह ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई ज्योति उनसे दूरी पर कम्पित होकर स्थिर हो गई है तथा उनकी तरफ बढ रहा है। कभी सागर मे तैरती चादी की मछली दीखती जो उछल कर हवा मे तैरने लगती। कभी मुदी आखा मे सर सराती आधी तथा तूफान का दृश्य सामने आता, जिसमे कोई छाया सी आकृति हाथ म ब्रह्माण्ड उठाए अडिग खडी हुई दीखती। प्राणायाम की दीघ अवधि के बाद उन्ह लगता प्रफुल्लता की लहरें उठ रही ह। हृदय के पास। धीरे-धीरे आनन्द-सा व्याप्त हो जाता देह म, आत्मा की गहराई म।

क्या इसी अनुभूति को ब्रह्मानन्द कहत है ?

वह ऐसे अनुभव कुन्ती तथा माद्री को बताते ? दोना को आश्चय होता। वह भी तल्लीन होकर ध्यान तथा मत्र जाप करती हं, पर उन्हें तो एस अनुभव नही होत।

पाडु शतश्रृ ग पवत श्रेणी से आगे जाने को तैयार थे कि ऋषियो ने टोका।

तपस्वी श्रेष्ठ, आपकी साधना तथा आध्यात्मिक लगन को हमने देखा है, वह निश्चय ही सराहनीय है। आपकी सुकुमार देह रानिया की कष्ट सहिष्णुता तथा पति निष्ठा आदश है। उनका सात्विक व्यवहार ममतामय है। हमारी सलाह है कि इस स्थान से आगे की यात्रा पर आपको नही चलना चाहिए।

क्या ऋषि व द ? पाडु ने हाथ जाडकर पूछा ।

ऋषिया म स वद्धतम, श्वत जटा व दाढ़ी वाले कृपकाय ऋषि न कहा—आगे दुगम पथ है। श्रेणियो की ऊचाई, हिम विस्तार, प्रकृति का परीक्षक रूप प्रस्तुत करता है। उसके पार स्वग लोक की कल्पना है, जहा देव, गधव, अप्सराए, व इद्र तथा कुबेर का सम्पन साम्राज्य है। वहा वन भी है, मरुस्थल भी है, वहा ऋतुओ का असामाय वितरण है। देह का बल वहा पहुचने म सहायक नही होता, आत्म बल ही सफलता दिलाता है। आप तपस्वी होकर भी गहस्थ हैं, अत उधर जाना तीना के लिए आत्मघात के समान होगा ।

देह नश्वर है, इसका क्या मोह, महात्मा ? पाडु नम्रतापूवक बोले ।

देह के साथ कामना सलग्न है। उसका अ श यदि शमित अथवा परिमार्जित नही होता तो तपस्या के खण्डित होन की सम्भावना रहती है। तब पतन भी त्वरित और विस्फोटक होता है। वृद्ध ऋषि ने उत्तर दिया। उनकी तजस्वी आखें जैस पाडु को आर-पार दख रही थी। वह होठो पर स्थिरता लाते हुए बोले—अभी भी तुम्हारी तपस्या द्वद्व रहित नही है ? सदिग्धता को मरे समक्ष रखो, कदाचित मैं समाधान दे सकू ।

पाडु ने श्रद्धापूण स्वर मे प्रश्न किया—महात्मा, आपन सत्य कहा है। मैं सदा से अपने को क्षीण सकल्पी, विवेकहीन मानता आया हू ।

ऐसा कोई पुरुष नारी नही होता। महत्ता का बोध होना और अहकार ग्रस्तता मे अन्तर अवश्य होता है। ऋषि ने हस्तक्षेप किया।

ज्ञान मुझे गुरुओ से प्राप्त हुआ है परन्तु

आचरण तथा अभ्यास के बगर ज्ञान वसे ही है जसे जल की लहरा पर लिखा गया श्लोक, अथवा भोज पत्र म सकलित अध्यात्म वभव। महात्मा ने फिर व्यवधान दिया ।

पाडु को धक्का-सा लगा। उसने सयत होकर आगे कहा—मैंने पूरा ब्रह्मचय भी पालन नही किया कि गहस्थ आयोजित कर दिया गया मेरे लिए

और तुम भोग के तल म पहुच गय— ऋषि न फिर बात मे विघ्न दिया।

हा, उसी का पश्चात्ताप है कि मैं इस साधना म

वह अभी अधूरी है। देव ऋण, ऋषि ऋण, तुमने चुका दिया पर पितृऋण का भार ही तुम्हारी अपूण कामना है। सतान की इच्छा हमारे गुह्य अतर म ज्यो की त्यो उपस्थित है ।

पाडु चमत्कृत हो गये ऋषि की वाणी सुनकर ।

हा, महात्मा। मगर मैं शापित तथा निर्वीय हू ।

पर उसके बिना उद्धार भी नही है। निष्काम हा नही सकत हो। और कामना क साथ व्यवधान अनिवाय है। पर तुम प्राप्त करोग, कस भी करोगे यह

योग है। बस मैं इतना ही सकेत देना चाहता हू। यही तुम्हारी अपूणता है, विक्षेप है। इस से आग प्रश्न मत करना। बोध और विवेक और मुक्ति मनुष्य म स्वय जाग्रत होती है, वह किसी से ली नही जा सकती।

पाडु ठग-से रह गये।

अनन्तर ऋषि वृ द अपनी यात्रा म आग चल दिये।

(४७)

कुन्ती और माद्री की उलझन बढती ही जा रही है, हिम प्रदेश की बीहडता, अत्यधिक ठड, समाज का नगण्य होना, असुविधा की आत्यतिक्ता ने जसे उनके हौसले व क्षमताओ को चुनौती देना शुरू कर दिया। माद्री तो सहनशीलता की कगार पर पहुच गई है। वह अधीर होती हुई कुन्ती स बोली—बहिन, क्या समान तथा अल्पतम सुविधाओ से भागना ही अध्यात्म है?

ऐसा विचार क्या कर आया मस्तिष्क म, माद्री? कु ती ने पूछा।

प्रत्यक्ष देख रही हू ना। इस यात्रा का अत क्या इ ही बर्फील प्रदेशा म शरीर त्यागने से होगा? महाराज को शान्ति प्राप्त होनी थी, इसकी बजाय वह और अधिक अशात रहने लगे हैं।

मैं भी देख रही हू, पर तु वह कारण नही बतात। ध्यान तथा साधना से भी जी हट गया है। सोचत रहत ह—सिफ सोचत रहते है। कु ती ने माद्री का जैसे समथन किया हो।

क्या हम अपने अधिकार का प्रयोग नही करना चाहिए? माद्री ने दृढता से कहा। फिर अपने म तव्य को स्पष्ट करत हुए बोली—स्वास्थ्य वैसे ही क्षीण हो चुका है। चिता म निरन्तर रहना और घुटना, घातक भी हो सकता है—तब हम क्या कर सकेगी?

अमगल सोचती हो?

यथाथ स्थिति पर सोचती हू। अवज्ञा नही, निष्ठा है इसका के द्र, माद्री अप्रत्याशित रूप से दृढ दीख रही थी।

वह जैसी भी स्थिति मे रखे—रहे, हमारा धम है उसको स्वीकार करना। कुन्ती ने मधुर रहते हुए कहा।

धम का अथ विवेक का अनुपस्थित होना नही है। आप स्मरण करिए, जब महाराज हताशा की स्थिति मे हमे त्याग कर सयास अपनाने को कह रहे थे, तब आपने कहा था, धम एकतरफा नही होता। महाराज का स्वभाव यही है। जब किसी निराशा के प्रभाव म होत ह, अपने मे व्यस्त हो जाते हैं। यह भी नही सोचत कि हमारी उपेक्षा हो रही है। सगिनी, साथी या अर्धांगिनी की क्या यही स्थिति होनी चाहिए? उ ह ऐसी आत्म-पूणता की अवस्था म रहने देना, उनक

लिए अहितकर होगा—हमारे पक्ष से भी। माद्री कहकर चुप हो गई। कुन्ती विचारों में खो गई, माद्री का कहना सगत है, पर एसी मानसिक स्थिति में साधारण बात भी बुरी लग सकती है। इतर अथ भी लिया जा सकता है। वह यह भी सोच सकते है कि हमारी इच्छा शक्ति टूट गई।

मैं आपसे कह रही हूँ बडी रानी, आप मे मेरी अपेक्षा अधिक सयम है। आप उनसे पूछिये। मुझे उनका स्नेह, प्रेम, अवश्य प्राप्त है, लेकिन श्रद्धा वह आप पर ही रखते हैं।

कुन्ती को लगा समस्या अपने आप हल हो गई। वह नही चाहती थी कि माद्री उनसे पूछे। माद्री मे सराहनीय परिवतन आया है, पर मूलत वह आवेशमयी तथा भावुक है। असगत आरोपण मे कठोर व्यवहार अपना सकती है, तब दूसरे असतुलन का और सहना होगा।

मै प्रयास करूगी, माद्री। जिसे अपनी मानसिक स्थिति ही ग्रस्त किए हो, उस पर उपेक्षा करने का दोष लगाना अनुचित है। जब से ऋषिवृन्द का साथ छूटा है वह अधिक विचलित हुए हैं। तभी से स्वकेन्द्रित हुए है।

कदाचित उनके साथ जाने का आग्रह कर रहे थे। माद्री ने कहा।

हा। यही था।

हमारे लिए सम्भव होता ? हम बीच मे गल कर समाप्त हो जाते। जो जीवित समाधि बन जाती।

वह कभी भी बन सकती है। यहा क्या प्रकृति भयानक नही है ? हिम का अधड, बर्फ के जमाव का दरक कर फिसलना, कभी भी जीवन का अन्त कर सकता है। उसके लिए तयार होना ही चाहिए। कुन्ती ने शात भाव से कहा।

बडी रानी, आपके सान्निध्य ने मुझे प्रेरित किया। मैंने प्रयत्न किया है कि आप-सा सयम तथा धैर्य अपने मे विकसित कर सकू। आशिक रूप मे सफल हो पाई हू। परन्तु जीवन की जीवन्तता मेरी धमनियो मे इस तरह प्रवाहित रहती है कि मृत्यु की कल्पना ठहरती नही। अनिवार्य है, तो है। आयेगी तो उसे भी खेल की तरह स्वीकार कर लूगी। अनावश्यक चिंता क्यो करू ? पर सतर्क होकर स्वहनन से बचना ही चाहिए। माद्री गम्भीर थी, पर यथार्थ मे उसके मुख पर ताजी पत्तियो, परिपक्व फलो जसी चिकनाई थी। अन्दर धारा की कुलकुल कलकल।

कुन्ती ने उसे देर तक देखा। उसे अपने मे भी ताजगी फूटती अनुभव हुई। हम एक-दूसरे को प्रेरित करते रहे, यही सकट काटता रहेगा। मैं उनसे अवश्य पूछूगी इनकी चिंता का कारण। जानने पर तुम्हे बताऊगी।

वह तुम्हे बता देंगे। मुझे अभी भी इस योग्य नही समझते हैं, माद्री आश्वस्त हो गई।

दूसर दिन प्रात हिमपात निरन्तर होता रहा। पवत चोटिया श्वेत वस्त्र से आच्छादित होती रही। सूय का अवरुद्ध प्रकाश हिम के पर्दों को पार करता हुआ जसे यवनिका तक आते-आत क्षीण हो जाता था। एक धुध, एक घुटा हुआ अधकार, इस तरफ ठहरा हुआ था। सारी प्रकृति मौन साधे जस शीत की बाला का तमय नृत्य देख रही थी। अद्भुत सौन्दय का सन्नाटायुक्त विस्तार, जैसे किसी रहस्य के अदृश्य, अगोचर धागा से बुना जा रहा था। मारुत छोटे-छोटे कदमा स जसे हिम क्षेत्र मे दौड लगा रहा था—हल्की-हल्की सास भरता।

पाडु ध्यान म वठे पर्याप्त समय म साधना रत थे, पर समीप बैठी कुती देख रही थी, उनके मुख पर उभरने वाले भाव जो पल-पल उठत थे। तुरन्त विलीन हो जाते थे।

स्थिरता तथा एकाग्रता का प्रयास पर अत द्वद्व, जसे बार-बार केद्र से विचलित कर रहा हो।

वह भी दुविधा म ह। परन्तु माद्री को आश्वस्त किया है कि वह पति के एकात घूणन का कारण अवश्य जानेगी।

उसने और ध्यान से देखा—पाडु निश्चित रूप से स्वास्थ्य खोते जा रहे है। त्वचा का पीलापन बढता जा रहा है। काया इकहरी हो गई है। कदाचित वह अपनी क्षमता को भी एकाग्र कर रही थी कि माद्री के कहे अनुसार समानता की स्थिति का साहस वटोर सके। समानता, पति स।

पाडु ने हाथ जोडकर साधना समाप्त की। मुदी हुई आखें खुली। पाया कि कुन्ती स्वय आसन लिय एसी वठी है, जैसे आराधना की हो।

माद्री आई फल रखकर लौट गई—नित्य क्रम के अनुसार।

कुन्ती ने धारदार लोहे की पट्टी से फल तराश कर दिय।

तुम भी तो आराधना म थी। लो, सहभागी बनो। पाडु ने कहा।

आप सेवन करिए। मैं माद्री के साथ ले लूगी। पाडु ने टुकडा उठा लिया।

मौन ठहरा रहा।

तुम्हारे भाव स प्रतीत होता है किसी दुविधा म हो, पाडु ने कुती का देखते हुए कहा।

हा, हू महाराज। ऐसा लगता है जैसे आप से दूर हो गई हू। कुन्ती ने सम्भल कर उत्तर दिया।

दूर कहा हुई हो? बल्कि तुम और माद्री केद्र म आ गई हो। ध्यान अमूत स मूत बिम्ब प्रस्तुत करन लगा हैं। यह बाधा तत्व है साधना का।

हमारी भी तपस्या हस्तक्षेपित हो रही है। मन अशान्त रह रहा है। कुती ने प्रस्तावना साधी।

एसा क्यो?

क्षमा करे महाराज, हम एक दूसरे पर आलम्बित, अपनी-अपनी तरह से

आत्मिक स्तर पर आरोहण कर रहे हैं। एक यात्रा स्थानगत पर्वतारोहण के रूप मे हो रही है—दूसरी आतरिक। उसम अगर विघ्न पडे तो अशान्ति स्वाभाविक है। कुन्ती ने फल तराश कर हाथ मे दिया।

पाडु उस फाक का देखन लग जैसे।

तार फिर जसे छूट कर सिमटने लगा। कुती ने तुरन्त पकडा। मैं यही पूछना चाहती हू, महाराज, आप किस चिंता म है कि हम भी अजाने म उपेक्षित हो रहे है?

उपेक्षा नही कुती ऐसा कसे हो सकता है पर मैं साधना करते हुए भी, रुक-सा गया हू एक स्तर पर आकर। कामना की प्रबलता ने मुझे अव्यवस्थित कर दिया है।

पाडु गम्भीर थे, और गम्भीर हो गये।

देह के होते हुए मनुष्य कामना रिक्त कैसे हो सकता है, महाराज! मुक्ति की कामना भी तो कामना ही है। जस हमारी कामना, कि आप अपने लक्ष्य म सफल हो। कुन्ती ने मानो धीरे-से किसी पत पर नख फेरे। मानो हिम की तह को किसी पात्र से हटाया हो। फल की फाक पुन देनी चाही तो पाडु ने सकेत से मना कर दिया। एक दीघ सास अन्दर की तरफ सूती, फिर परास्तता म उम वाहर कर दिया। बोले—कुती, मैं तुम्हारे हाथ की फाक की तरह अधूरा रह गया। मुझे ऋषियो का व द छोडकर चला गया। मेरे साथ तुम और माद्री हो, मेरे सतान नही है, इसलिए मैं इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक के लिए अयोग्य हू। ऐसा ऋषि श्रेष्ठ कहकर, उच्च यात्रा को चले गये।

ब्रह्मचारियो मे और गृहस्थय जीवन को स्वीकारे लोगा के प्रयाजन तथा प्राप्ति म अन्तर रहेगा, महाराज। कुन्ती ने मधुरता से कहा।

मैंने तो उसकी सीमाआ का पार कर लिया था कुन्ती, पर मुझे पूवजा के ऋण का स्मरण कराया गया। सतान की कामना मुझम तीव्र हो उठी है। पर अभिशाप का कसे अतिक्रमण करू? दैहिक असमथता को समथता म कसे बदलू? उपाय है, लेकिन

कामना असगत है, महाराज। हम उस जीवन को छोडकर वानप्रस्थ स्वीकार कर चुके।

परन्तु यह मन द्वारा स्वीकार कहा हो पा रहा है। मेरी साधना म पुन-पुन ऐस बिम्ब उठत हैं जसे कोई कामधेनु बछडे को जन्म देसे के लिए रम्भा रही हो। कभी जेर की सुनहरी कोथली म शिशु घूमत, हाथ फलाते दीखत हैं। यह अत के किस पाताल के बिम्ब हैं? पाडु जसे सम्मोहन म बिखर गये।

कुन्ती अब लगभग चौंक चुकी थी। वह महाराज की दशा देखकर अबूझता म होती जा रही थी। उस अदृश्य भय-सा लगन लगा था। महाराज को क्षण-क्षण

मे क्या हो जाता है ?

महाराज ! महाराज !! उसने हस्तक्षेप किया।

हा, कुन्ती। अब सतान के बिना मुक्ति सम्भव नही। हम उत्तर कुरुक्षेत्र के धम को जानत हैं। यहा नारिया सगम के लिए स्वतन्त्र रहती है। तियग प्रजा मे क्या यह प्रथा तुमने नही देखी। शरदण्डायन की कन्या ने, पुसवन यज्ञ कर रास्ता चलते ब्राह्मण को आमन्त्रित किया। उससे दुजय उत्पन्न हुआ। सौदास की पत्नी, पति की आज्ञा से ऋषि वसिष्ठ के पास गई। उस मदयन्ती नामक स्त्री के अश्यक ऋषि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सतान प्राप्ति के लिए क्या मेरी विधवा मा, व आदरणीय अम्बिका बुआ महर्षि कृष्ण द्वपायन से गभवती नही हुई ? मैं पति की उपाधि मे युक्त तुम दोनो को नियुक्त करता हू कि

कुन्ती ने बीच मे टोका—रुकिये, महाराज ! आज्ञा देने से पूव यह सोच लीजिये कि अन्याय न हो जाय। आप मेरे इष्ट है। पर इष्ट क्या इतना एक पक्षीय होता है ? हम सहधर्मिणी है। ममत्व हममे है पर वह विस्तार पा चुका है। सतान का बधन कितना मोहपूण होता है क्या आप इससे अनभिज्ञ है ? जिस सयम को हमन—हम दोना न, मैंने और माद्री ने, तपस्या से अर्जित किया है—उसका छिटकना पुन नीचे गिरना होगा। किसी दूसरे पुरुष स सतान प्राप्ति मेरे धम की कल्पना म नही है। मैंने वियुपिताश्व राजा की पत्नी, कक्षिवान की कन्या भद्रा की कथा सुनी है। अपने मृतक पति के निकट शयन कर उसने अपनी कामना शक्ति से तीन शाल्व तथा चार मद्र सतान प्राप्त की। यदि सतान को जन्म देना अनिवाय कर दिया आपने तब भी मैं इस शरीर को किसी भी सिद्ध अथवा ऋषि से दूषित नही होने दूगी।

पाडु कुन्ती के निश्चय तथा आवेश को देखकर अचम्भे म हो गये। बल्कि, निराशाग्रस्त हो गये। अब उन्हे न तक सूझ रहा था, न नियुक्त होने की पति आज्ञा उनके मुह से निकल रही थी।

अगर तुम्हे नही रुचता तो रहने दो। नि सतान मरना भाग्य म लिखा है तब उसमे क्या कर सकती हो। हारा हुआ स्वर था। ऐसी दशा को कुन्ती अनेक बार देख चुकी थी। ऐसी अवस्था मे वह इतने निरीह और द्रवित करने वाले हो जात थे कि करुणा जाग्रत हो जाती थी। कुन्ती सोच रही थी, मैं इतनी आवेश मे हो गई तो माद्री तो सच मे धिक्कारने लगेगी महाराज को। स्थाई क्लेश ठहर जाएगा। महाराज अपन से और घिर जाएगे। माद्री, सतान की बात कतई नही स्वीकारेगी।

पल-भर म विचार झाके की तरह आए, उसे झकझोरा, उसन अपनी सपूण शक्ति एकत्रित करके अपने को सयमित किया। उसने देखा नि शक्त से महाराज वही लेट गये। वह उस पुरुष की तरह लग रह थे जिसने मन-ही-मन किसी

संजीवनी कल्पना को पोपित कर रखा हो, वह यथाथ से टकराकर खिर गई हो।

कुन्ती वतमान, अतीत और भविष्य के बीच मे जकड-सी गई। सतान की कामना, फिर ज म देना, उसके वाद पालना। मातृत्व की माया मे फसना। क्या धारा के उदगम की ओर बढते-बढत प्रवाह की तरफ चलना होगा?

पाडु सामने आखें मूदे लटे थे। वह उस सतान की स्मृति मे हो गई थी, जिसके मोह को त्यागकर उसे बहाना पडा था। वह तो सूय थे, देवता गिन जाने वाले, उ होंने क्वारी क या की अनुनय विनय को क्व माना। दुर्वासा के वरदान की सत्यता भर तो जाननी चाही थी उसने।

वही वरदान क्या फिर उपयोग म लाना होगा?

महाराज, मुझे क्षमा करें। मैंने आपको क्लश दिया। कुती ने धीरे से स्पश किया महाराज का सिर। वढे हुए केशा पर हाथ फिरने लगा। हाथ की गति के साथ ममता-सी जागत होने लगी।

पाडु की मुदी आखा से कदाचित उनके अनजाने म अश्रु वह रहे थे।

महाराज, आपकी कामना पूरी होगी। उसने अपक्षतया गहरे शब्दा म कहा। उठिये, मुझे क्षमा कर दीजिये। आपकी एसी हताश दशा नही देख सकती। उस ने आचल स अश्रु सोखे।

पाडु न उसी तरह लेटे रहन दने का सकेत किया। कदाचित एकाकीपन के आत्मसघष से उत्पन्न हुई रिक्तता को ममता की शक्ति से पूरित कर रह थे। ममता कुन्ती के स्पश से उनमे सचारित हो रही थी।

(४६)

घम, अथ, काम, मोक्ष—मनुष्य जीवन के पुरुषाथ। सत्त्व, रज, तम उसकी प्रकृति मे निहित त्रिगुण। क्व कौन-सा गुण अन्य दो को दवाकर प्रधान हो जाता है, स्वय मनुस्य को नात नही रहता। नात होता भी है तो वह प्रधान गुण इतना प्रवल होता है कि मनुष्य की नियत्रण शक्ति को शिथिल कर देता है।

पाडु मोक्ष की साधना की तरफ वढ रहे थे रजो गुणग्रस्त हो गय। सतान की उत्कट कामना न जसे उ हे आच्छादित कर लिया। तीव्र इच्छा जब अवरोध पाती है, तव मन प्रसादयुक्त हो जाता है—चचल अति का अशात, नि शक्त।

नारी म सहज सवेदना होती है सहज ममता, सहज करुणा।

पति के विक्षोभ का कारण जान माद्री भी आश्चय म हुई थी। यह क्या वडी वहिन! फिर वह भावावेश म हुई थी—पहले हममे सयम चाहा गया। हर प्रकार क एश्वय को त्यागकर हमने अपनी इच्छाआ के पर कतरकर पिंजडे म डाल दिया, अब चाहा जा रहा है कि हम फिर उ मुक्त हो। आशक्तिया क जगल म फस जाए।

कुन्ती प्रतिक्रिया का पूर्व अनुमान किये हुए थी। वह कई रात्रि औचक रही थी। उसने समाधान सोचना चाहा था। परन्तु इसी निष्कर्ष पर पहुची थी कि यदि पति को जीवित रखना है, तो उसे सतान देनी होगी। कामना का स्मरण, उसी मे रहना, उसी की चिन्ता से ग्रस्त रहना, अकल्याणकारी हो सकता है महाराज के लिए।

उसने माद्री को समझाया था—माद्री, महाराज विचलित हैं। उनकी साधना रुक गई है।

सहज थी कब बडी रानी। प्रतिक्रिया तथा निराशा से उठी वैराग्य भावना, फिर अपने केन्द्र पर लौट आई है।

तक, समस्या का हल नही है। कुन्ती न धीरज से कहा।

तब क्या हमे सतान के लिए नियुक्त होना होगा ? किसी ऋषि, किसी सिद्ध स ? नही, बडी रानी, मैंन उन्ही के माध्यम से तृप्ति पाई, उन्ही के मोह मे अपना सकल्प पूरा करने की ओर बढी। मैंने सयम पाया। अब क्या नही बडी बहन। मेरे लिए सम्भव नही हो सकेगा। माद्री लगभग पस्त हो गई थी।

कुन्ती न उसे इस तरह थपथपाया था जसे हिरणी को लाड कर रही हो। उसने मात्र इतना कहा था—तुम उद्विग्न मत होओ। मुझ पर छोडो।

कुन्ती ने पाडु को बताया था कि कन्या अवस्था मे उसने अपने पिता के यहा आए हुए दुर्वासा ऋषि की सेवा की थी। उसकी व्यवस्था तथा श्रद्धाभाव से प्रसन्न होकर ऋषि न मत्र दिया था। इस मन्त्र के द्वारा वह किसी भी देवता का आह्वान कर सकती है। वह देवता उसके वश म होगा। उसकी मनोकामना पूरी करेगा।

पाडु की प्रसन्नता का पारावार नहीं था। उसने कहा था—मैं जानता था, कुन्ती तुम ही मेरी कामना को पूरा कर मुक्ति का माग सिद्ध करोगी।

कुन्ती रहस्य मयता से मुस्कराई थी। मुस्कराहट क्या इसलिए थी कि उसने कन्या काल के पुत्र जन्म के तथ्य को छिपा लिया था ? या इसलिए रहस्ययुक्त थी कि वह जानती थी, यह कामना आसक्ति का बीज होगी।

कई दिनो की तपस्या के बाद कुन्ती ने हर प्रकार से पवित्र होकर तन्मयता व एकाग्रता के साथ मत्र को सिद्ध किया। प्रथम त धर्म का आवाहन किया।

धर्म से पहली सतान प्राप्त हुई—नामकरण हुआ युधिष्ठिर।

पाडु ने हर्षित हो कहा—मुझे दूसरा पुत्र चाहिए।

कुन्ती ने फिर अनुष्ठान साधा। मारुत का आवाहन किया।

वायु देव से द्वितीय सतान प्राप्त हुई। नाम भीम रखा गया।

पाडु के कामना कोष का मुह खुल गया था। कुन्ती मुझे तीसरी सतान चाहिए।

कुन्ती की वही रहस्यमय मुस्कान फिर प्रकट हुई थी। अधरा पर उसने फिर

मत्र का जाप किया। इन्द्र का आवाहन किया।

इन्द्र से तीसरी सतान प्राप्त हुई। नाम अर्जुन रखा गया।

पाडु जसे कामना क फलीभूत होने स बौरा गए थ। कुन्ती मुझे चौथी सतान चाहिए।

महाराज, चाह का अन्त कहीं है ? मुक्ति के लिए और पितर ऋण को चुकाने के लिए एक सतान पर्याप्त थी।

पर पाडु की आखो के सामने मरीचिका का विस्तार था। मरीचिका सत्य रूप हो रही थी।

कुन्ती, मुझे इतनी सतानें चाहिए

कुन्ती न हस्तक्षेप किया—बस, महाराज, किसी ऋषि के वरदान का दुरुपयोग होगा। तीन सतान के बाद भी यदि मैं कामना करूगी तो स्वरणी कहलाऊगी सतान के पालन का उत्तरदायित्व इतना सरल होता है क्या ?

पाडु को आघात-सा लगा। जसे तृष्णा की बहती नदी के सामने चट्टान ठहर गई।

परन्तु कुन्ती के साथ दूसरी भावना जाग्रत हुई। सताना का रूप देखत ही सुप्त मातत्व उमड पडा। वह उन्ही क मोह म खोने लगी। अवधि बीतती जा रही थी। तीनो बच्चा का सौदय, उनकी शिशुवत किलकारी, रुदन, आथम को चहका रहा था—मा को भी।

माद्री को आश्चय हो रहा था, कुन्ती मे इस परिवतन को पाकर। इतनी शात, पूव की कुन्ती ऐसी चचल हो गई थी, जसे पुनज म लिया हो, यह भी भूल गई कि उससे छोटी, अधिक सुन्दर, अभी भी अपने सयम तथा सकल्प पर स्थिर है।

लेकिन माद्री को जसे माद्री ही प्रश्नो क वत्त म होने लगी।

क्या सच म तू सयम म स्थिर है ?

हा। वह बैठे-बैठे अपने प्रतिरूप को उत्तर देती।

झूठ बोलती हो। तुम मे स्वय मे मा बनने की इच्छा जाग्रत है। तुम अपने को सरोवर के जल मे निहार कर अपन पर मोहित होने लगी हो। केशो को सवारन तथा आचल को झाकने लगी हो। तुम महाराज पाडु को भी ललचाई दृष्टि से देखने लगी हो। क्या उनकी सेवा किसी दूसरे लक्ष्य से बढाई है ? गाधारी और कुन्ती क सतान हो जाने से क्या तुम बाझत्व की हीनता से मुक्त नही होना चाहती ?

वह प्रतिरूप को डपटती। मैं क्या अनभिज्ञ हू उस यथाथ से कि पाडु महाराज असमथ हैं।

रहने दे, अपने मन क गहरे म उतर, तुझे वहा सदेह का कनखजूरा चिपका

मिलेगा। मत्र की शक्ति दिखावा थी। देवो का ध्यान छल प्रसारण था। अगर देवा का आशीर्वाद प्राप्त किया भी होगा तो महाराज का पुशत्व मागा होगा। ऐसा नही सोचती ?

महाराज का पुशत्व ! तब क्या मेरे साथ अयाय नही हो रहा है ? मैंने बडी रानी को मातवत, श्रेष्ठा भगिनी के समान माना, अपनी श्रद्धा दी, वह पुत्रो को पाकर अपने म विसर गइ। यही होता है न माया का रूप ! स्वाथ ! व्यक्ति का निजी स्वाय।

प्रतिरूप चुप होकर अतर्धान हो जाता।

माद्री न प्रयत्न कर के महाराज पाडु को भ्रमण करते समय एक दिवस एकात म पा लिया। शीत के कम होने के कारण धूप अब सुहानी लगने लगी थी। वन वृक्ष हरियाने लगे थे। प्रकृति निखर कर सौम्य तथा चचल मन प्रतीत होने लगी थी। पशु पुन दृष्टिगोचर होने लगे थे। पक्षी, जो हिमपात के कारण प्रवास करने मैदानी क्षेत्र म चले गये थे, पुन लौट आये थे। दूर-दूर छितरे हुए गह एव आश्रम मे पवतवासी तथा सन्यासी झलकने लग थे।

आज बहुत प्रसन्न लग रही हो माद्री। पाडु ने कहा।

हा, आप भी प्रसन्न है। आपके सुख से प्रेरित मेरा सुख रहता आया है। वह है।

देखो, प्रकृति कितनी शोभायुक्त हो चली है।

जसे सतानवती हो। माद्री ने उत्तर दिया।

हा, शीत की कडी यत्रणा सह कर प्रकृति प्रस्वा ही तो होती है।

आपकी माद्री तो वसी है। नि सतान होने के कलक को वहन करती हुई। आप जैसे मेरी ओर पूणत उत्तरदायित्व खो चुके। मुझसे मेरी जान मे तो कोई त्रुटि नही हुई।

पाडु मुस्कराए। वोले। तुम ने हम पर दोप थोप दिया।

सत्य नही हो तो क्षमा करें। माद्री व्यवहारकुशलता से अपने प्रयोजन तक आने का प्रयास कर रही थी।

पाडु ने अनुराग से देखा तो वह अत्यत आकषक तथा सम्मोहक लगी। उसके अग-अग से सौंदय फूटता-सा लगा।

माद्री अनुरक्तता की झलक महाराज की आखो म देखकर चौंक गई। यह क्या ! जैसे पवत पर चढती वह खुद रपट गई हो। सतक हुई।

महाराज, मैं आप से निवेदन करना चाह रही थी।

कहो ! पाडु उसी तरह सम्मोहित-से एकटक देख रहे थे।

आप अभिशप्त है महाराज। पर मैं भी सतान प्राप्ति कर आपको सुख पहुचाना चाहती हू। मेरा साहस नही होता बडी रानी से कहने का। आप उनसे

कहिए, वह मुझे उस मत्र को सिद्ध करने की विधि बताए, मैं भी सतानवती हो जाऊ । माद्री न बहुत ही नम्र होकर कहा ।

अभिशप्त होने का स्मरण होते ही महाराज की जाग्रत अनुरक्तता कच्ची डाल सी टूट कर नम गई । मुख पर उदासी उभर आई । उसको छिपाते हुए-से बोले—मैं अवश्य कहूगा । कुती निश्चय ही मेरा कहा मानेगी । वह तुम्हे भी अपनी तरह आनन्दित देखना चाहेगी ।

माद्री का उद्देश्य पूरा हो गया । पर उसने महाराज म जो अपने प्रति वासना की चलक देखी थी । उससे भयभीत हो गई थी ।

अवसर देखकर महाराज न कुन्ती स माद्री की इच्छा कही थी । कुन्ती तैयार हो गइ थी । एक क्षण को उसे अपने पर भी आश्चर्य हुआ था । वह ऐसी कसी तन्मय हो गई । शिशुओ मे, कि माद्री का ध्यान नही रहा । वह अपनी तरफ मे हुई माद्री की उपेक्षा से उपजी खेद भावना को अपन म ही दबा गई । उसम मुक्त होने का उपाय था, माद्री को मत्र बताना । उसकी सिद्धि के विधान से उसे अवगत कराना ।

माद्री ने कुती के निर्देश अनुसार अनुष्ठान को सम्पन्न किया । अश्विनी कुमारो का स्मरण किया । उनसे दो पुत्र प्राप्त हुए । नाम रखे गये—नकुल और सहदेव । जुडवा भाई ।

शतश्रृ ग पवत पर महाराज पाडु की पाचो सतानें, तीनो का वात्सल्य पाकर बढने लगी ।

पाडु पूर्ण गहस्थ्य हो गये, गौण साधक ।

(५०)

कुती पूछ रही थी—ऐसे कसे हुआ ? क्यो हुआ ? माद्री, क्या वासना इतनी अधी और विवेक शून्य हो सकती है कि अपने पति को निगल ले ?

माद्री सगम अवस्था म पाडु की देह के नीचे बिसूर रही थी । मेरा दोष नही है, रानी । प्रकृति का दोष है । ऋतु का दोष है । महाराज के चचल मन का दोष है, जो काम से ग्रस्त होकर अपना हता बन गया ।

काम म ग्रस्त महाराज हुए थे, तुम तो जानती थी कि उनकी मृत्यु इसी मिस, उन्ही क्षणो मे होनी थी । क्या प्रस्ताव माना ? क्या समपण किया ? कुन्ती आवेश मे थी । उसकी आखो से चिनगारिया चिटक रही थी ।

बडी रानी, मेरे आसू देखो ! मेरी विवशता अनुभव करो । आवेश त्यागो, कि मुझे भी बतान का अवसर दो । मैं परिग्रासी सिद्ध होन जा रही हू जबकि मैं निर्दोष हू । ग्रसी तो मैं गई । मेरा निवेदन, मेरा लाछन देना, मेरा वर्जित करना, सब अप्रभावी हो गये । महाराज की बुद्धि म जसे मद चढ गया था । वह याचना

भी कर रहे थे और पुरुष बल से मुझ पर काबू कर रहे थे। मैं क्या करती बडी रानी ? शक्ति म वह अजय वृषभ, विकट सिंह हो गये थे। माद्री हिल्कियां मे रोने लगी।

कुन्ती पर उन हिल्कियो का प्रभाव पडा। वह अल्प सयम म आई।

माद्री आग बोली—मैं दोषी हू तो उन्ही क्षणो की जब मैं विवश हो गई, और उत्तेजना म देह रह गई। तब मैंन भी उनका साथ दिया, जब वह अध-चेतनता मे बुदबुदा रहे थे—माद्री, मुझे तृप्ति दो ! मुझे पूणता दो ! वह स्वर मेरे कानो मे गुहार-से पड रहे थे। मैं यथाशक्ति आत्मा झेल रही थी कि अपनी देह के कण-कण, रोम-रोम से, लहर लहर से, उन्ह तृप्त कर सकू। मैं अपराधी हू उन पलो की। मै उन्ह तप्त नहीं कर पाई। वह अधूरे विसर्जित हो गये।

हिल्कियां नम बाधे रही। कुन्ती का आवेश शान्त हो गया।

होनी हो गई। शायद तुम्ही सुभागी हो, माद्री। कुन्ती क हृदय स हूक-सी निकली। अब छोड दो इस देह को। मैं इसको लेकर चिता पर चढूगी। तुमने उनके प्राण की अन्तिम लय तक साथ दिया, मैं आगे जाऊंगी उनके साथ।

कुन्ती माद्री तथा पाडु के शव के निकट होकर बठ गई। जाओ ! अय ऋषियो-मुनियो, पवतवासियो को समाचार दिलवा दो कि महाराज पाडु काल-कवलित हो गये।

कुछ क्षणो के लिए स्तब्धता छा गई। विषाद न भारी होकर जसे वातावरण को दबा लिया।

माद्री ने स्तब्धता को दरकाया।

बडी बहन, तुम सती नही होओगी। मैं होऊंगी। इसी अवस्था मे होऊंगी। हमारे पति पूणता की कामना मे, अपूण अवस्था मे अवसान को प्राप्त हुए है—मेरे साथ। मैं ही इनके साथ रहूगी कि राख और अस्थियां एक-सी होकर शेष रह जाए। और अगर कोई अनन्तर यात्रा है तो

कुन्ती विचलित हो गई। नही माद्री। तुम्हारा आग्रह बहुत भयानक है। असम्भव है। इस अवस्था मे

हां, इसी अवस्था मे। तुम ममतामयी हो ना ! मुझे भी ममता की छांव म रखो। मेरी सतानो के साथ तुम्ही निश्छल हो सकती हो। इतना भर अनुग्रह करना। मैं जीना चाहती भी नही। ऋतुराज की वभव श्री ने उद्दीपक बन महाराज को मन्मथ बनाया, मुझे रति रूपा। मैं प्रकृति के सम्पन्न वभव मे ही उनकी देह के साथ अग्नि को समर्पित होऊंगी। ममतामयी कुन्ती मा, क्या मुझे सूय की धूप, वन की हरियाली, फूलो की गध, शृगो के आशीर्वाद के बीच, अपना स्वाभाविक अत नही लेने दोगी ?

जन्म 15 अगस्त 1931 को फ़ैज़ाबाद (उ० प्र०) में।
शिक्षा एम० ए० पी एच० डी०
अध्यापन, पत्रकारिता, रंगकर्म, सृजन तथा आयाम संस्थान (नाट्य संस्था), से सम्बद्ध।
वातायन (मासिक) सप्ताहान्त में स्तम्भ लेखन।
उत्तरप्रदेश सरकार, राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत। राजस्थान संगीत नाटक अकादमी की कार्यकारिणी के सदस्य रहे।

प्रकाशित कृतियाँ
उपन्यास प्यासे प्राण, नीली झील लाल परछाइयाँ, यहाँ से कहाँ तक, रूप अरूप, घड़ी दो घड़ी, एक बार फिर (साहित्य अकादमी से पुरस्कृत), बिखर बिखरे मन।
कविता शायद तुम्हें पता नहीं
नाटक एकांकी संग्रह बहादुरशाह ज़फ़र और अन्य एकांकी, सदियों से सदियों तक, अश्वत्थामा, सपनों का महल, पिंजड़ा टूटेगा, जब तक साँस तब तक आस
कहानी संग्रह मम्मी ऐसी ना थी
आलोचना संवेदना के बिम्ब
अन्य गांधी दर्शन और शिक्षा, गांधी युग दशा दिशा (उ० प्र० सरकार से पुरस्कृत), गांधी और भारत।